पारस्करगृह्यसूत्रम्

डॉ० वेदपाल

मानवमात्र की सहज प्रवृत्ति है - सजना-संवरना। सामान्यतः यह साज-संवार बाह्य शरीर तक ही सीमित रहता है। बाहर से संवारा गया तन कितना भी परिष्कृत क्यों न प्रतीत होता हो, यदि उसका आभ्यन्तर पुरुष-आत्मा परिष्कृत नहीं है, तो यह ऊपरी परिष्कार अपूर्ण ही नहीं, व्यावहारिक दृष्टि से निरर्थक सिद्ध होता है। अतः मनीषियों ने बाह्य परिष्कार के साथ आन्तरिक परिष्कार हेतु संस्कारों का विधान किया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारों से संस्कृत को मेध्य तथा असंस्कृत को अमेध्य कहा है। महर्षि की दृष्टि में संस्कार का प्रवृत्तिनिमित्त शरीर और आत्मा का परिष्कार करना है। परिष्कार की विधि का साङ्गोपाङ्ग विश्लेषण ही पारस्करगृह्यसूत्रम् का प्रतिपाद्य है।

पारस्करगृह्यसूत्रम्

PĀRASKAR GRIHYA SUTRA

कर्कभाष्यसहित

आर्यभाषा व्याख्योपेतम्

व्याख्याकार एवं सम्पादक :

डॉ० वेदपाल

रीडर-अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

जनता वैदिक कालेज, बडौत (उ०प्र०)

सत्यार्थ प्रकाशन न्यास

कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

प्रकाशक : **सत्यार्थ प्रकाशन न्यास**
१४२५, सैक्टर-१३, अर्बन एस्टेट,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

परिवर्धित संस्करण : जुलाई, २००८ ई०, विक्रमी संवत् २०६५

लेजर टाईपसैटिंग : **राज कम्प्यूटर्स**, १६/९, सैक्टर ६, नई सड़क,
शास्त्रीनगर, मेरठ, दूरभाष : ९८९७०६९३९७
स्वस्ति कम्प्यूटर्स, दिल्ली, ९२५५९-३५२८९

मुद्रक : राधा प्रेस, कैलाश नगर, दिल्ली-110031 दूरभाष - 011-22083107
E-Mail - radha.press@yahoo.co.in

PĀRASKAR GRIHYA SUTRA
Editor : **Dr. Vedpal**
Satyarth Prakashan Nyas, Kurukshetra (Haryana)

पितरौ वन्दे

जिनकी महर्षि एवं वेदनिष्ठा
के कारण
वैदिक वाङ्मय के अध्ययन
का
सुयोग सुलभ हो सका
उन्हीं
पितृचरण श्री म० रघुवीर आर्य वानप्रस्थ
(संस्थापक सदस्य : गुरुकुल महाविद्यालय ततारपुर, हापुड़)
तथा
पूज्या माता श्रीमती मोहर कौर
के करकमलों में
सादर सश्रद्ध समर्पित

—वेदपाल

पारस्कर आदि गृह्यसूत्र सामान्यतः विवाह से आरम्भ कर समावर्तन पर्यन्त दैहिक तथा औध्वर्दैहिक रूप में उदककर्म/ अन्त्येष्टि संस्कार का विधान करते हैं। इसप्रकार जीवन का प्रत्येक भाग संस्कारों से व्यापृत है। संस्कृति के अभौतिक पक्ष की समृद्धि संस्कारों पर आश्रित है। गृह्यसूत्र वर्णित लाङ्गलयोजन, आग्रहायणी, शालाकर्म (वास्तुशान्ति) आदि संस्कृति के भौतिक पक्ष को पुष्ट करते हैं। अतः यह कहना अत्युक्ति न होगी कि संस्कार जीवन की आत्मवादी एवं भौतिक इन उभयविध धारणाओं के मध्य सेतु हैं।

पुरोवाक्

मानव मात्र की सहज प्रवृत्ति है—सजना-संवरना। किन्तु सामान्यतः यह साज-संवार बाह्य शरीर तक ही सीमित रहता है। बाहर से संवारा गया तन कितना भी परिष्कृत क्यों न प्रतीत होता हो, यदि उसका आभ्यन्तर पुरुष-आत्मा परिष्कृत नहीं है, तो यह ऊपरी परिष्कार अपूर्ण ही नहीं, अपितु व्यावहारिक दृष्टि से निरर्थक ही सिद्ध होता है। अतः मनीषियों ने बाह्य परिष्कार के साथ आन्तरिक परिष्कार हेतु संस्कारों का विधान किया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारों से संस्कृत को मेध्य तथा असंस्कृत को अमेध्य कहा है। महर्षि की दृष्टि में संस्कार का प्रवृत्तिनिमित्त शरीर और आत्मा का परिष्कार है।

सम्पूर्ण उत्तर भारत में सम्पाद्यमान अधिकांश कर्मकाण्ड का उपजीव्य पारस्करगृह्यसूत्र है। प्रकृत सूत्र पर संस्कृत में पांच प्रसिद्ध (कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ) भाष्य हैं। किन्तु महर्षि मन्तव्यों को दृष्टिगत कर किसी आर्य विद्वान् का आर्यभाषा-हिन्दी भाष्य सम्पूर्ण ग्रन्थ पर उपलब्ध नहीं है। यद्यपि अन्य विद्वानों ने इस ग्रन्थ पर श्रमपूर्ण कार्य किया है, किन्तु उन्हें ऋषि दृष्टि से पूर्णतः अनुकूल कहना सम्भव नहीं।

प्रस्तुत सूत्र के मधुपर्क, श्रवणा, अष्टका, उतूलपरिमेह, शूलगव तथा अवकीर्णि-प्रायश्चित्त आदि प्रकरण गम्भीर विवेचन की अपेक्षा रखते हैं। अतः समर्थ आर्यविद्वानों के भाष्य की अनुपलब्धता के कारण अपनी अल्पज्ञता का बोध होते हुए भी सूत्र व्याख्या का यह विनम्र प्रयास ऋषि भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है।

प्रत्येक कण्डिका के अन्त में कण्डिकास्थ विषयों के प्रति महर्षि मन्तव्य के साथ ही अन्य उपलब्ध गृह्यसूत्रों के तत्तद् विषयक उद्धरण भी प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रकृत व्याख्या में जिन विद्वानों के ग्रन्थ एवं लेख सहायक सिद्ध हुए हैं, उन सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ। विस्तृत भूमिका लेखन में 'वै०वा० इति०—कल्पसूत्र' तथा 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास'—वेदाङ्ग खण्ड से प्राप्त साहाय्य के लिए उक्त के लेखक एवं सम्पादक का भी आभारी हूँ।

योग एवं आयुर्वेद की परम्परा के वैज्ञानिक पोषक, अपार सांस्कृतिक ऊर्जा के प्रतीक-पुरुष योगर्षि स्वामी रामदेव जी महाराज एवं लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, तपस्वी संन्यासी स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती त्रिवेदतीर्थ ने प्रस्तुत कृति का अवलोकन कर आशीर्वचन प्रदान करने की कृपा की है। वीतरागभयक्रोध तुरीयाश्रमसेवी जनों की मुझ अकिञ्चन

पर यह अहैतुकी अनुकम्पा है। पदवाक्यप्रमाणज्ञ महामहोपाध्याय प्रोफेसर सत्यव्रत शास्त्री, जिनके उल्लेखनीय साहित्यिक अवदान के कारण संस्कृत के वर्तमान काल को 'सत्यव्रत-काल' के रूप में जाना जाएगा, ने तथा प्रख्यात लेखक, प्रखर वक्ता एवं आर्ष परम्परा के मुखर पोषक प्रोफेसर रामप्रकाश (सांसद, राज्यसभा) ने इस ग्रन्थ पर शुभाशंसा लिखकर मुझे जो स्वप्निल उत्साह दिया है उसके लिए मैं इन मनीषियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए शब्दों का चयन नहीं कर पा रहा हूँ।

अपने महाविद्यालय के आंग्लविभागाध्यक्ष प्रो० श्यौबीर सिंह प्रस्तुत कृति के वर्तमान स्वरूप ग्रहण करने में उत्प्रेरक रहे हैं, अतः प्रो० सिंह के प्रति आभारी हूँ।

व्याख्याकाल में सहधर्मिणी श्रीमती राजेश, पुत्री प्रतिभा एवं आयुष्मान् शरद आर्य द्वारा प्रदत्त सक्रिय सहयोग इनके द्वारा धर्मयज्ञ में समर्पित आहुति से अन्यून ही है।

पारस्कर का प्रस्तुत परिवर्द्धित संस्करण युवाविद्वान् डॉ० राजेन्द्र विद्यालङ्कार, कुरुक्षेत्र के सौजन्य से सत्यार्थ प्रकाशन न्यास, कुरुक्षेत्र द्वारा विद्वज्जनों की सेवा में समुपायनीकृत है। विद्वत्ता के साथ कर्मठता एवं विनम्रता का अद्भुत समन्वित रूप हैं डॉ० राजेन्द्र। गृह्यसूत्र परिवर्धन एवं संशोधन के साथ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में समायोज्यमान अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन के अवसर पर सुलभ हो सके एतदर्थ आपके अनथक प्रयास का फल है—प्रस्तुत ग्रन्थ। यह युवा अपने धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में यशस्वी बने—ऐसी मङ्गलकामना है। ग्रन्थ शीघ्र सुलभ कराने हेतु निरन्तर प्रेरक का दायित्व निर्वहण करने वाले मेरे स्नेही परम ऋषि भक्त श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य (मेरठ) भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में जिनसे प्रत्यक्ष वा परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ, उन सभी के प्रति पुनः कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। ग्रन्थ के अध्ययन से यदि किसी भी पाठक को किञ्चिन्मात्र भी ज्ञानवृद्धि व धर्मग्रन्थों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई तो हम अपने प्रयत्न को सार्थक समझेंगे। किम्बहुना—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

विद्वज्जनों के सुझाव एवं परामर्श समादरणीय हैं।

इदं नम ऋषिभ्यः

अनूचानानां विधेयः
वेदपाल

रामनवमी
सोमवार, १४ अप्रैल, २००८

आशीर्वचन

परम श्रद्धेय योगर्षि स्वामी रामदेव जी महाराज

सृष्टि का केन्द्र बिन्दु है--मानव। समग्र उपदेश और अति देश इसी मानव को लक्ष्यकर प्रवृत्त होते हैं। वेदादि शास्त्रों का प्रवृत्ति निमित्त भी मनुष्य का सन्मार्ग प्रदर्शन कर उसे सुख की उपलब्धि कराना है। एतदर्थ मानव का सन्तुलित विकास उपेक्षित है। शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए जहां साङ्गोपाङ्ग योग का उपदेश दिया गया है, वहीं आत्मिक (बौद्धिक/मानसिक भी) विकास की दृष्टि से गृह्यकर्मों की इतिकर्त्तव्यता उपदिष्ट है।

धार्मिक दृष्टि से क्रियमाण श्रौतयज्ञ (हविः एवं सोमसंस्थान्तर्गत) श्रौत सूत्रों में सविधि वर्णित हैं। गृह्याग्नि में सम्पाद्य संस्कार तथा गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध सीतायज्ञ, शूलगव आदि के साथ सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पञ्चमहायज्ञ गृह्यसूत्रों का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

गृह्यसूत्रों में निषेक (गर्भाधान) से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कारों का वर्णन उपलब्ध होता है। यद्यपि शाखाभेद के कारण गृह्यसूत्रों में वर्णित कर्मों की विधि भिन्नता लिये दिखाई देती है। इसी प्रकार संस्कारों की संख्या (आश्वलायन गृह्यसूत्र में ११, वैखानस में १८ तथा पारस्कर में १३) में भी भेद है। सम्प्रति सोलह संस्कार प्रचलित हैं। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन—ये तीन जन्म से पूर्व सम्पादित किये जाते हैं। जातकर्म से संन्यासाश्रम संस्कार तक शरीर धारण करने (जन्म लेने) के अनन्तर करणीय हैं। शरीर से आत्मा के वियुक्त होने पर (और्ध्वदेहिक) अन्त्येष्टि नामक अन्तिम संस्कार है। इन सभी का उद्देश्य शरीर एवं आत्मा की पवित्रता पूर्वक श्रेष्ठ सामाजिक मानव का निर्माण है।

मनुष्य का जीवन एकाकी न होकर सामाजिक दृष्टि से परस्पर समन्वित होना भी है। वैयाक्ति उत्थान के साथ सामाजिक अभ्युदय के हेतुभूत पञ्चमहायज्ञ भी गृह्यसूत्रों के प्रतिपाद्य है। यद्यपि प्रत्येक संस्कार भी यज्ञ के माध्यम से ही सम्पन्न होता है। पञ्चमहायज्ञों में प्रथम स्थानी ब्रह्मयज्ञ—सन्ध्या/स्वाध्याय ही वैयक्तिक कहा जा सकता है। अवशिष्ट- देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ निश्चयेन ही सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। संसार के लिए चिन्ता का विषय—बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण है। पर्यावरण प्रदूषण के नियन्त्रण के विविध उपाय यदा कदा सुनने में भी आते रहते हैं,

किन्तु भारतीय मनीषा ने इस समस्या के उत्पन्न होने से बहुत पूर्व ही अग्निहोत्र/देवयज्ञ के रूप में समाधान प्रस्तुत कर दिया था। यदि आज प्रत्येक मनुष्य तो छोड़ दे, प्रत्येक परिवार भी विधिपूर्वक अग्निहोत्र करे तब पर्यावरण प्रदूषण की समस्या किसी हद तक काफी कम हो सकती है। इसी प्रकार आज बढ़ते वृद्धाश्रम तथा महानगरों में एकाकी जीवनयापन करने वाले वरिष्ठ नागरिकों की हत्याएं आदि का समाधान पितृ-सेवा के प्रतीक पितृयज्ञ में निहित है।

गृह्यसूत्र त्रयी आश्वलायन, पारस्कर तथा गोभिल में पारस्कर की उपयोगिता तथा स्थान असन्दिग्ध रूप से महत्त्वपूर्ण है। सर्वाधिक संस्कृत व्याख्याएं इसी गृह्यसूत्र पर लिखी गई हैं। कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर और विश्वनाथ—इन पाँच भाष्यों (तथा हिन्दी के कुछ अनुवाद) के रहते हुए भी पारस्कर के कुछ स्थल अस्पष्ट तथा कुछ पूर्वापर विरोधी दिखाई देते हैं। गृह्यसूत्र की इन समस्याओं के समाधान की दृष्टि से डॉ० वेदपाल कृत यह हिन्दी व्याख्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

पारस्करगृह्यसूत्र के अर्थविधि के अन्तर्गत गौ का आलभन अवकीर्णि प्रायश्चित प्रसङ्ग में गर्दभेज्या तथा शूलगव ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थल हैं जहां यह व्याख्या पूर्ववर्ती व्याख्याओं से अलग हटकर ही नहीं, अपितु तर्क संगत भी है।

प्रस्तुत व्याख्या में अनेकत्र पाठान्तर (यथा—स्नातक नियमों में छाता ग्रहण के प्रसङ्ग के प्रसङ्ग में—'वर्षत्यप्रावृतः' को 'वर्षत्याप्रावृतः' तथा सोण्यन्ती कर्म में—'जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां' में 'कुमारस्य अछिन्नायाम्'—सभी भाष्यकारानुमत पदच्छेद के स्थान पर 'कुमारस्य आच्छिन्नायाम्') सुझाते हुए सङ्गति लगाई गई है। इससे अस्पष्ट स्थल हस्तामलक वत् सुस्पष्ट हो जाते हैं।

प्रकृत व्याख्या के व्याख्याकार डॉ० वेदपाल वैदिक वाङ्मय विशेषकर गृह्यसूत्रों के सूझवान अधिकारी विद्वान् हैं। भारतीय यज्ञविद्या और सोलह संस्कारों के विषय में शास्त्रीय वक्तव्यों के निहितार्थ को उन्होंने जिस सजगता से समझा है वह निश्चय ही स्तुत्य है। मैं इस महान् साहित्यिक प्रतिदान के लिए आचार्य डॉ० वेदपाल को भूरिशः बधाई देता हूँ। अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन कमे ४४ वें अधिवेशन (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आयोजित, २८-३० जुलाई २००८) के अवसर पर ग्रन्थ को विद्वज्जनों को सुलभ करानेवाले डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार भी साधुवाद के पात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि साहित्यिक जगत् में इस श्रम का प्रचूर स्वागत होगा।

—स्वामी रामदेव

आशीर्वचन

वैदिक कर्मकाण्ड के अधिकारी विद्वान्
धर्माचार्य स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती त्रिवेदतीर्थ,
संस्थापक, गुरुकुल महाविद्यालय ततारपुर (हापुड़)

ओ३म्

गृह्य साहित्य में आश्वलायनगृह्यसूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र तथा गोभिलगृह्यसूत्र ये तीन ग्रन्थ प्रमुख हैं। अतिदीर्घकाल से आर्यजाति संस्कार और अन्य अनेक धार्मिक परम्पराओं का निर्वाह प्राय: इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर करती कराती चली आ रही है। इन सूत्र ग्रन्थों की टीकाएँ भी संस्कृत में ही लिखी गई हैं। इस कारण अद्यावधि जनसाधारण इन ग्रन्थों के महत्त्व से अपरिचित ही चला आ रहा है। प्रसन्नता का विषय है कि इस सूत्र त्रयी में से पारस्कर गृह्यसूत्र की सुबोध टीका आर्य भाषा में प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० वेदपाल जी विद्याभास्कर ने की है। टीका में स्थान-स्थान पर टिप्पणियां देकर दुरूह विषयों को अति सरल कर दिया गया है। इस लोकोपकार्य के लिए प्रो० वेदपाल जी जनता की बधाई के पात्र हैं। प्रभु प्रिय वेदपाल जी को दीर्घायु और शोभन स्वास्थ्य प्रदान करने की कृपा करें, ताकि इनके द्वारा अधिक से अधिक जनसेवा के कार्य सम्पन्न हो सकें।

शुभचिन्तक
मुनीश्वरानन्द सरस्वती
त्रिवेदतीर्थ
दशहरा २०५५ विक्रमी

सम्मति

महामहोपाध्याय विद्यावाचस्पति विद्यामार्तण्ड
प्रोफेसर डॉ० सत्यव्रत शास्त्री

भागवत् पुराण में कहा गया है—**दुर्लभं मानुषं जन्म,** मनुष्य-जन्म बहुत कठिनाई से मिलता है। मनुष्य सब प्राणियों से श्रेष्ठ माना गया है—**न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्**—मनुष्य से बढ़कर और कोई नहीं है। मनुष्य की इस महत्ता के महत्त्वपूर्ण कारक हैं—संस्कार। केवल मात्र तन के परिष्कृत होने पर कोई व्यक्ति सभ्य नहीं कहला सकता, जब तक उसका आत्मा/मन परिष्कृत न हो। शरीर के साथ आत्मा के परिष्कारक कर्म को भारतीय मनीषा ने 'संस्कार' पद से अभिहित किया है। 'संस्कार' पद सम् पूर्वक कृ (डुकृञ् करणे) धातु से भूषित/अलंकृत करने के अर्थ में **सम्परिभ्यां करोतौभूषणे** (अ० ६.१.१३७) सुट् आगम होकर व्युत्पन्न होता है। एतदर्थ रचित विपुल वाङ्मय को 'कल्प' कहा गया है।

सायणाचार्य ने ऋग्भाष्य भूमिका में—**'कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र'** याग प्रयोगों का समर्थन या कल्पना होने के कारण उसे 'कल्प' कहा है। कर्मकाण्डीय विधि-विधान अथवा विधि प्रयोगानुष्ठान केवल वेद या ब्राह्मण वाङ्मय के द्वारा सम्पादित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन कर्मों के लिए जिस विधि/प्रक्रिया की अपेक्षा होती है, वह कल्प साहित्य में ही उपलब्ध है। कुमारिलभट्ट का यह कथन युक्तियुक्त ही है—

वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः।
न तु कल्पैर्विज्ञा केचिन्मन्त्रब्राह्मणमात्रकान्॥

कल्पसूत्रों में वर्णित यज्ञ संस्था (इसमें संस्कार भी सम्मिलित हैं) को श्रौत एवं स्मार्त दो भागों में विभक्त किया गया है। कल्प के प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण भाग श्रौतसूत्रों में वर्णित यज्ञ श्रौत कहलाते हैं। व्यक्ति के गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध सभी यज्ञ एवं संस्कार गृह्यसूत्रों का प्रमुख प्रतिपाद्य हैं। इन्हें स्मार्त नाम से जाना जाता है। कल्प साहित्य को श्रौत, गृह्य, धर्म एवं शुल्व इस क्रम से उल्लिखित किया जाता है, किन्तु उल्लेख का यह क्रम रचनाक्रम के रूप में स्वीकार करना सम्भव नहीं है। कोई भी यज्ञ भले ही वह श्रौत हो अथवा स्मार्त यज्ञ वेदि के निर्माण के बिना सम्पन्न नहीं किये जा

सकते। वेदि निर्माण की विधि शुल्व सूत्रों का विषय है। इनका उल्लेख तृतीय स्थान पर होते हुए भी इनकी सत्ता तृतीय स्थानी स्वीकार नहीं की जा सकती। इस प्रकार यह साहित्य विषय विभाजन की दृष्टि से चतुर्धा विभक्त है, कालक्रम की दृष्टि से नहीं।

गृह्यसूत्र संख्या में भले ही डेढ़ दर्जन के लगभग हैं, किन्तु आश्वलायन, पारस्कर एवं गोभिल इनमें सर्वाधिक प्रचलित हैं। प्रस्तुत कृति शुक्ल यजुर्वेदीय पारस्करगृह्यसूत्र की सर्वाधिक प्राचीन व्याख्या कर्क (११-१२ शती) को प्रस्तुत करने के साथ स्वतन्त्र रूप में वर्तमान युग की आवश्यकता को देखते हुए उसका हिन्दी में व्याख्यान करती है। यह कर्क का अनुवाद मात्र न होकर अनेक अन्य व्याख्याकारों के मतों की प्रस्तुति के कारण एक स्वतन्त्र व्याख्या ही है।

पारस्करगृह्यसूत्र पर कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर एवं विश्वनाथ के संस्कृत भाष्य प्रसिद्ध हैं। पांचों भाष्यों के साथ अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी भाषा में भी इस पर भाष्य उपलब्ध हैं। इन सबके रहते डॉ० वेदपाल कृत यह हिन्दी व्याख्या उन सबसे भिन्न है। इसका अपना एक वैशिष्टय है जिसके अनेक महत्त्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं—

१. प्रस्तुत व्याख्या में व्याख्याकार ने पारस्कर से मत वैभिन्न्य की दृष्टि से उपलब्ध १८ गृह्यसूत्रों के उद्धरण यथास्थान टिप्पणी में दिये हैं—

२. मध्यकाल में लुप्त प्रायः कर्मकाण्ड को पुनर्जीवन देनेवाले महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्य भी यथास्थान टिप्पणी के रूप में यहां उपलब्ध हैं।

३. प्रस्तुत व्याख्या में पूर्वापर प्रसङ्ग को दृष्टि में रखकर सूत्र व्याख्या की गई है, परन्तु परम्परागत रूप से चले आ रहे सूत्र क्रम को भङ्ग नहीं किया गया है। स्वाभीष्ट क्रम टिप्पणी में प्रदर्शित कर वहीं व्याख्या दी गई है। विशेषेण द्रष्टव्य— १.२.३-६ सूत्रों की अर्थसङ्गति। इसे पृष्ठ १० पर टिप्पणी सं० ३ में देखा जा सकता है।

४. डॉ० वेदपाल ने संस्कृत के पाँचों भाष्यकारों तथा हिन्दी भाष्यकारों से असहमति व्यक्त करते हुए कई स्थलों पर सूत्रों के प्रचलित पदच्छेद से हटकर पदच्छेद कर अपनी व्याख्या को तार्किक आधार प्रदान किया है। तद्यथा—सोष्यन्ती कर्म १.१६.३—'**जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति**' सूत्रस्थ **कुमारस्याच्छिन्नायां** का पदच्छेद कर्क आदि ने 'कुमारस्य अच्छिन्नायाम्' इस रूप में किया है, किन्तु प्रकृत व्याख्या में इसे 'कुमारस्य आच्छिन्नायाम्' इस रूप में किया गया है। वस्तुतः चिकित्सा विज्ञान (आयुर्वेद एवं आधुनिक) की

दृष्टि से पूर्ववर्ती व्याख्याकार अनेक स्थलों पर भूल करते दिखाई देते हैं।

५. **प्रासङ्गिकता**—गृह्यसूत्र २.७ में स्नातक के नियम वर्णित हैं। वहां—'वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत.......' ७ सूत्र भी व्याख्या 'वर्षति अप्रावृतः...' इस रूप में उपलब्ध है, किन्तु प्रस्तुत व्याख्या की पूर्वकण्डिका, जहां 'छत्रं प्रतिगृह्णाति' २.६.२९ आदि सूत्रों द्वारा स्नातक को छाता ग्रहण करने का विधान है, से २.७.७ का विरोध होने के साथ छाते की प्रासङ्गिकता ही समाप्त हो जाती है। अतः प्रकृत व्याख्या में 'वर्षत्यप्रावृतः' इस पाठ को पूर्वकण्डिका के साथ प्रासङ्गिक बनाए रखने की दृष्टि से 'वर्षत्याप्रावृतः' इस रूप में मानने का सुझाव दिया गया है।

इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग २.६.२९ तथा २.७.२९-३२ पर चिन्तन करने पर व्याख्याकार का सुझाया पाठ उचित प्रतीत होता है।

६. **वेदानुसारी व्याख्या**—पञ्चमहायज्ञ २.९ में अतिथि यज्ञ के अन्तर्गत भी भाष्यकारों की मूल सूत्रों के साथ की गई खींचातानी प्रदर्शित करते हुए अथर्ववेद के सम्बद्ध मन्त्र प्रस्तुत कर उचित पाठ प्रस्तुत किया गया है।

७. आलभेत/आलभते—अर्घविधि, विवाह आदि प्रसङ्गों में उपलब्ध आङ् पूर्व लभ धातु के अर्थ पर विस्तार पूर्वक चर्चा की गई हैं। इसी प्रकार शूलगव आदि प्रसङ्ग भी पूर्वव्याख्याकारों से पृथक् किन्तु बुद्धिसङ्गत रूप में व्याख्यात करने का प्रयास यहां परिलक्षित होता है।

प्रकृत व्याख्या का अवलोकन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि व्याख्याकार की दृष्टि प्रथम सूत्र की व्याख्या के समय अन्तिम सूत्र पर तथा अन्तिम सूत्र की व्याख्या के समय समग्र ग्रन्थ पर रही है।

इन सब दृष्टियों से प्रस्तुत व्याख्या की उपादेयता असन्दिग्ध है। इस हेतु व्याख्याकार साधुवाद के पात्र हैं।

नई दिल्ली

२२.६.२००८

सत्यव्रत शास्त्री

शुभाशंसा

प्रोफेसर डॉ० रामप्रकाश,

सांसद, राज्यसभा

विश्व के लिए भारतीय मनीषा की महत्त्वपूर्ण देन—नैतिक एवं आध्यात्मिक सन्देश है। अपने इसी नैतिक और आध्यात्मिक सन्देश के साथ अध्यात्मपरायण जीवन शैली के द्वारा भारत विश्व के मानवों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। भौतिकता में आकण्ठ निमग्न पश्चिमी जगत् के लिए यह आज भी आकर्षण बिन्दु है। योगर्षि स्वामी रामदेव जी के योग प्रचार तथा अन्यान्य भारतीय भक्ति-धाराओं के सन्दर्भ में पश्चिमी जगत् के इस आकर्षण को स्पष्टतया समझा जा सकता है।

प्राचीन मनीषियों ने मानव के सन्तुलित विकास पर बल दिया। एतदर्थ विपुल साहित्य का सृजन हुआ। गृह्यकर्मों—जिनमें सोलह संस्कार तथा पञ्चमहायज्ञ प्रमुख हैं, का विधि-विधान जिन ग्रन्थों में वर्णित है, उन्हें 'गृह्यसूत्र' के नाम से अभिहित किया गया है। यह समग्र वाङ्मय संस्कृत भाषा में है। इस पर कर्क आदि के भाष्य भी संस्कृत भाषा में हैं। इस कारण यह महत्त्वपूर्ण विधा जन सामान्य की समझ से दूर हो गई है। जन साधारण से दूर होने के कारण कई बार इन ग्रन्थों को लेकर मतिभ्रम भी देखा जाता है। इसका कारण स्यात् एक व्याख्याकार द्वारा की गई भूल का दूसरे व्याख्याकारों द्वारा अनुकरण करते हुए व्याख्यात करना भी है। जैसे—सोष्यन्ती कर्म में—'जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां' में 'कुमारस्य अच्छिन्नायाम्' यह पदच्छेद करके अर्थ करना। चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से यह पूर्णतः अव्यावहारिक है। इसी प्रकार स्नातक नियमों में छाता ग्रहण करने का प्रसङ्ग भी उल्लेख्य है।

प्रकृत व्याख्या इस दिशा में सार्थक प्रयास है। इस व्याख्या में व्याख्याकार की दृष्टि समग्र ग्रन्थ में एकवाक्यता पर रही है। इस कारण पूर्वापर विरोध वाले प्रसङ्ग भी उचित रूप में व्याख्यात किये गये हैं। प्राचीन वाङ्मय की इस प्रकार की व्याख्याएँ अपेक्षित हैं। ऐसी बुद्धिसंगत एवं पूर्वापर विरोध रहित व्याख्याएँ ही भारत के साहित्यिक गौरव में अभिवृद्धि कर सकती हैं।

विशाल संस्कृत साहित्य के अध्ययन की दो धाराएँ समानान्तर प्रचलित हैं—आर्ष और अनार्ष। आर्ष और अनार्ष का विचार साहित्य की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता

के साथ जुड़ा है। लोग सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दिशा-निर्देश प्रायः शास्त्रों से ही प्राप्त करते हैं, एतदर्थ भारत के अनेक तार्किक आचार्य साहित्य और शास्त्रों का मूल्यांकन आर्ष और अनार्ष की दृष्टि से करने का आह्वान करते रहे हैं। उनकी दृष्टि में समस्त सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विद्रुपताओं का अन्ततः एकमात्र कारण अनार्ष शास्त्रों की प्रतिष्ठा ही है। दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती एवं उनके युगप्रवर्त्तक शिष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती इस विचार के प्रतिनिधि आचार्य हैं। शास्त्रों के समक्ष एक दूसरी विडम्बना प्रक्षेपों को लेकर है। धर्मशास्त्रों के अनेक वक्तव्य और व्यवस्थाएँ समाज में जब-तब उत्तेजना का कारण बनती रही हैं। यदि आर्ष-अनार्ष एवं प्रक्षेपों के क्षेत्र में शोध की महत्त्वपूर्ण पहल पुराविद्याओं के अधिकारी विद्वान् कर सकें तो यह एक ऐतिहासिक पहल होगी। मैं आचार्य डॉ० वेदपाल की इस श्रमपूर्ण कृति को इसी सन्दर्भ में देखता हूँ। मैं समझता हूं कि इस रचना के बाद डॉ० वेदपाल 'आचार्य-ऋण' से उऋण हो गये हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आयोजित अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन के ४४ वें अधिवेशन के अवसर पर अभ्यागत विद्वानों को यह कृति निःशुल्क उपलब्ध करवाने वाले प्रिय राजेन्द्र विद्यालङ्कार को मेरा आशीष। मेरी कामना है कि भारत और समस्त विश्व पुराविद्याओं की आभा से आलोकित हो।

आभार

वैदिक साहित्य के तलस्पर्शी मर्मज्ञ विद्वान् आचार्य डॉ० वेदपाल जी द्वारा अनुवादित एवं सम्पादित 'पारस्करगृह्यसूत्र' का संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान द्वारा आयोजित 'अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन' के ४४ वें अधिवेशन के अवसर पर प्रस्तुत करते हुए सत्यार्थ प्रकाशन न्यास हर्ष और गौरव का अनुभव कर रहा है। आर्ष सिद्धान्तों एवं पुराविद्याओं पर आधारित अनुपलब्ध महत्त्वपूर्ण साहित्य का हजारों की संख्या में प्रकाशन कर उन्हें जिज्ञासु अध्येताओं तक निःशुल्क पहुँचाने की कई साथियों की सदिच्छा ही सत्यार्थ प्रकाशन का संकल्प है। निश्चय ही भारत का गौरव साहित्यिक समृद्धि में है।

वैदिक साहित्य अत्यन्त विशाल है, इस पर अनेक व्याख्याएँ और टीकाएँ समय-समय पर अनेक मर्मज्ञ विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं। समय के साथ-साथ पठन-पाठन के अभाव में ये ग्रन्थ दुरुह भी होते गये और अप्राप्य भी। पुराविद्याओं विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य पठन-पाठन की तर्कपूर्ण आर्ष पद्धति के अप्रचलन के साथ-साथ ही लुप्तप्राय: होते चले गये। आचार्य वेदपाल द्वारा प्रस्तुत की जा रही यह कृति पुराविद्या के क्षेत्र में आर्ष समझ को विकसित करने में निश्चय ही सफल रहेगी।

सत्यार्थ प्रकाशन न्यास निःशुल्क साहित्य प्रकाशन का यह अभियान अपने अनेक उदारमना सहयोगियों के साहाय्य से चला रहा है। वैदिक साहित्य के प्रचार-प्रसार में गहरी आस्था और रुचि रखने वाले हमारे अनेक आदरणीय बन्धुओं एवं संस्थाओं ने इस यज्ञ में अपनी मूल्यवान आर्थिक आहुति दी है। अभी तक सत्यार्थ प्रकाशन ने २० से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं, इन सभी का अधिकारी अध्येताओं के मध्य निःशुल्क वितरण ही किया गया है।

सत्यार्थ प्रकाशन के साहित्यिक उपक्रम की जिज्ञासु अध्येताओं के साथ अनेक प्रतिष्ठित महानुभावों ने प्रशंसा और स्वागत किया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु योगर्षि स्वामी रामदेव महाराज, प्रोफेसर डॉ० रामप्रकाश जी एवं महामहोपाध्याय प्रोफेसर सत्यव्रत शास्त्री ने सत्यार्थ प्रकाशन का जिन शब्दों में उत्साह वर्धन किया है, वह हमारे लिए पाथेय है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें एतादृश विभूतियों के आशीर्वाद का पात्र बनाए रखे। सत्यार्थ प्रकाशन अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य से अपने संकल्प को सिद्ध करने में निरत रहेगा।

हमें प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थ को अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन के ४४ वें अधिवेशन के अवसर पर विद्वानों तक पहुँचाने के लिए कोलकाता के श्री सुरेश अग्रवाल एवं श्रीमती सुषमा अग्रवाल, कीरतपुर (बिजनौर) के श्री दीपचन्द आर्य जी एवं देहरादून की आर्यसमाज धामावाला ने सहयोग का हाथ आगे बढ़ाया है।

कोलकाता निवासी श्रीमती सुषमा अग्रवाल एवं श्री सुरेश अग्रवाल आर्ष परम्परा के निष्ठावान् सहयोगी अनुयायी हैं। सौभाग्य की बात यह है कि श्रीमती सुषमा एवं श्री सुरेश जी के सुपुत्र भाई श्री अश्विनी जी एवं पुत्रवधू श्रीमती मोनिका आर्ष परम्परा के प्रति अपने माता-पिता से भी द्विगुणित उत्साही एवं अनुरागी हैं। आर्ष गुरुकुलों के लिए यह परिवार प्राणभूत है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में दूसरा उल्लेखनीय सहयोग कीरतपुर (बिजनौर) निवासी आर्यश्रेष्ठी श्री दीपचन्द आर्य का प्राप्त हुआ है। ८१ वाँ वसन्त देख रहे श्री दीपचन्द आर्य का व्यक्तित्व निःस्पृह, निर्मम और निरहंकारः का मूर्तिमान रूप है। श्री दीपचन्द आर्य जी अपने पुत्र श्री विजय जी, श्री सुरेन्द्र जी एवं श्री महेश जी को वैदिक मूल्यों के प्रति सर्वात्मना समर्पित देखकर निश्चय ही आत्मतोष और गौरव का अनुभव करते होंगे।

इस ग्रन्थ की अन्य प्रकाशन सहयोगी आर्यसमाज धामावाला, देहरादून है। यह आर्यसमाज प्राचीनतम ऐतिहासिक आर्यसमाज है। इस संस्था ने आर्यसमाज के अनेक आन्दोलनों एवं कार्यक्रमों में श्लाघनीय भूमिका का निर्वहन किया है। आर्यसमाज धामवाला के अनेक सदस्यों ने प्रान्तीय व केन्द्रीय स्तर पर आर्यसमाज के संगठन में महत्त्वपूर्ण भागीदारी की है। वैदिक प्रचार एवं वैदिक साहित्य के प्रकाशन में इस आर्यसमाज के सभी पदाधिकारियों एवं सदस्यों का उत्साह देखते ही बनता है।

सत्यार्थ प्रकाशन न्यास समस्त पाठक वर्ग की ओर से कोलकाता निवासी श्रीमती सुषमा अग्रवाल एवं श्री सुरेश अग्रवाल, कीरतपुर निवासी श्री दीपचन्द आर्य जी एवं देहरादून की आर्यसमाज धामावाला के इस उदारतापूर्ण सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता है। प्रभु से प्रार्थना है कि इस अनुष्ठान के प्रति न हमारा संकल्प कमजोर पड़े न हमारे सहयोगियों का।

राजेन्द्र विद्यालङ्कार (डॉक्टर)

विषय-सूची

प्रथमकाण्डम्

द्वितीयकाण्डम्

तृतीयकाण्डम्

संकेताक्षर

ऋ.	=	ऋग्वेद
यजु.	=	यजुर्वेद-वाज.मा.
का.स./काण्व	=	काण्व संहिता-यजुर्वेद
तै. सं.	=	तैत्तिरीय संहिता
मै.सं.	=	मैत्रायणी संहिता
म.ब्रा.	=	मन्त्र ब्राह्मण
साम वि.ब्रा.	=	सामविधान ब्राह्मण
अष्टा.	=	अष्टाध्यायी
आप.गृ.	=	आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
आश्व. गृ.	=	आश्वलायन गृह्यसूत्र
कर्म प्र.	=	कर्म प्रदीप
काठक	=	काठक गृह्यसूत्र
कात्या. श्रौ.	=	कात्यायन श्रौतसूत्र
कौषी. गृ.	=	कौषीतक गृह्यसूत्र
खादिर	=	खादिर गृह्यसूत्र
गोभिल	=	गोभिल गृह्यसूत्र
गृ.स.	=	गृह्य संग्रह
बौ./बौधा.	=	बौधायन गृह्यसूत्र
बौ.पि.	=	बौधायन पितृमेधसूत्र
भारद्वाज	=	भारद्वाज गृह्यसूत्र
मनु.	=	मनुस्मृति
मानव गृ.	=	मानव गृह्यसूत्र
मै.मा.गृ.	=	मैत्रायणीय मानव गृह्यसूत्र
याज्ञ.	=	याज्ञवल्क्य स्मृति
लघ्वाश्वलायन	=	लघ्वाश्वलायन स्मृति
वशिष्ठ	=	वशिष्ठ स्मृति
व्याघ्रपाद	=	व्याघ्रपाद स्मृति
वाज. प्रा.	=	वाजसनेयि प्रातिशाख्य
हि.गृ.सू.	=	हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र

भूमिका

वेद के प्रति आर्यों की आदिकाल से अवचिल श्रद्धा रही है। समय के साथ जनसाधारण के लिए वेद को समझना दुरुह होता चला गया। कृपालु ऋषियों ने वेदज्ञान में उपकारक जिन ग्रन्थों की रचना की वह वेदाङ्ग नाम से अभिहित किए गए। **अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि**—वस्तु के स्वरूप ज्ञान का साधन अङ्ग कहलाता है। अत: वेद के रहस्यों को उद्घाटित/स्पष्ट करने वाला वाङ्मय **वेदाङ्ग** है।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष इन छ: प्रकार के ग्रन्थों का परिगणन वेदाङ्ग के अन्तर्गत होता है। वेदाङ्ग साहित्य में 'कल्प' का द्वितीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाणिनीय शिक्षा में कल्प को वेदपुरुष के हस्ततुल्य कहा गया है। तद्यथा—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।४१-४२

आचार्य सायण ने—**कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र** (ऋग्भाष्य भूमिका) यज्ञ के प्रयोगों का समर्थन या कल्पना होने के कारण **कल्प** कहा है।

ऋक् प्रातिशाख्य के वर्गद्वयवृत्तिकार विष्णुमित्र ने—**कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्**—वेदविहित कर्मों की क्रमपूर्वक व्यवस्था करने वाले शास्त्र को **कल्प** कहा है।

सूक्ष्मेक्षिकया देखने से स्पष्ट है कि—कल्पसूत्रों का अभीष्ट है—कर्मकाण्डीय बहुविध विधि-विधान, विधि प्रयोगानुष्ठान तथा सामाजिक प्रथा-परम्पराओं का स्पष्ट एवं संक्षिप्त रूप से प्रस्तुतीकरण। कुमारिल भट्ट का कथन है कि—

वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः।
न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्रब्राह्मणमात्रकात्।।

वेद की सहायता/अध्ययन के बिना भी कल्पसूत्रों के आधार पर यज्ञ कर्म सम्पन्न किये जा सकते हैं, किन्तु कल्पसूत्रों के बिना मात्र मन्त्र (संहिता)/ब्राह्मण के आधार पर यज्ञ सम्पादन सम्भव नहीं।

वैदिक साहित्य को परवर्ती संस्कृत साहित्य से जोड़ने वाली शृंखला-सूत्र साहित्य है। अत्यल्प शब्दों में भावाभिव्यक्ति सूत्र का प्रमुख गुण है। सूत्र लक्षणविषयक सुप्रसिद्ध श्लोक निम्न है—

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

शब्दाल्पता के कारण अध्येता को सूत्र स्मरण में सुविधा रहती है, किन्तु बाहर से दिखाई पड़ने वाली शैलीगत सरलता प्रायशः विषय की दुरुहता में लुप्त हो जाती है।

सूत्र साहित्य के विषय में **विण्टरनित्स** का निम्न कथन द्रष्टव्य है—**विश्व के सम्पूर्ण साहित्य में इन सूत्रों की तरह की कोई रचना नहीं, इस प्रकार की रचनाओं में यथासम्भव थोड़े से शब्दों में सिद्धान्त को व्यक्त करना ही रचयिता का उद्देश्य होता है, भले ही स्पष्टता और बोधगम्यता का बलिदान करना पड़े**—(हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर१/२३५)। प्रो० मैक्समूलर ने तो इन्हें नीरस तक कहा है।

सूत्र शैली विषयक आलोचनाओं के होते हुए भी निस्संकोच कहा जा सकता हैं कि—शताब्दियों के चिन्तन, मनन के परिणामस्वरूप संगृहीत ज्ञान राशि ही अत्यल्पाक्षर निबद्ध सूत्र रूप में संग्रथित हुई है। मौखिक उपदेश के समय इनकी संक्षिप्त शैली आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी थी। स्यात् इसी कारण यह साहित्य सुरक्षित भी रह सका है।

वर्गीकरण—कल्पसूत्र साहित्य का वर्गीकरण निम्नवत् है—

(i) श्रौतसूत्र (ii) गृह्यसूत्र (iii) धर्मसूत्र (iv) शुल्व सूत्र

यहाँ यह स्मरणीय है कि—यह अनुक्रम रचनाक्रम नहीं है। यतः श्रौत (श्रौतसूत्र विहित) अथवा स्मार्त (गृह्यसूत्र विहित) यज्ञों के सम्पादनार्थ वेदि निर्माण का परिज्ञान शुल्व सूत्रों से ही सम्भव है। तब इनका पौर्वापर्य निर्धारण किस प्रकार

सम्भव है? वस्तुत: यह प्रतिपाद्य विषय को दृष्टिगत कर किया गया विभाजन/वर्गीकरण मात्र है।

श्रौतसूत्र—यज्ञ वैदिक संस्कृति का केन्द्र बिन्दु कहा जा सकता है। श्रौत एवं स्मार्त रूप से यज्ञों का दो रूपों में विभाजन किया गया है। सामान्यत: अग्नित्रयसाध्य यज्ञ श्रौत एवं आवसथ्य अथवा गृह्याग्निसाध्य यज्ञ स्मार्त कहलाते हैं। श्रौतसूत्रों का प्रतिपाद्य है—श्रौतयज्ञों का विधि-विधान। अपने अवान्तर भेदों सहित सप्तविध सोम—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम एवं राजसूय। सप्तविध हविर्यज्ञों अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रायणेष्टि, निरूढशुबन्ध, सौत्रामणि का वर्णन अवान्तर भेदों के साथ श्रौतसूत्रों में हुआ है। वेद की प्रत्येक शाखा का स्व-स्व श्रौतसूत्र है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' कहकर ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ कही हैं, किन्तु शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, माण्डूकायन—इन पांच का ही नामत: उल्लेख मिलता है। उपलब्ध एवं प्रकाशित केवल एक शाकल की संहिता है। यद्यपि अलवर के राजकीय संग्रहालय में शांखायन संहिता का हस्तलेख उपलब्ध है। वर्तमान संहिता (शाकल) जहाँ अष्टक एवं मण्डल इस द्विविध विभाजन युक्त है, वहीं शांखायन केवल अष्टक क्रम में ही है। प्रथम अष्टक का उपलब्ध संहिता से हमने अक्षरश: मिलान किया है, कहीं कोई अन्तर नहीं है। अस्तु,

ऋग्वेद से सम्बद्ध आश्वलायन एवं शांखायन ये दो श्रौतसूत्र उपलब्ध होते हैं।

आश्वलायन श्रौतसूत्र

आश्वलायन श्रौतसूत्र 'अथैतस्य समाम्नायस्य विताने योगापत्तिंवक्ष्याम:'।१/१/१ के भाष्यकार नारायणगार्ग्य के अनुसार "........एतस्येतिशब्दो निवित्प्रैषपुरोरुक्-कुन्तापवालखिल्यमहानाम्न्यैतरेब्राह्मणसहितस्य शाकलस्य वाष्कलस्य चाम्नायद्वयस्यै-तदाश्वालयनसूत्रं नाम प्रयोगशास्त्रम्" कुन्तापसूक्त, वालखिल्यसूक्त महानाम्नी ऋचाओं, ऐतरेयब्राह्मण तथा शाकल एवं वाष्कल से आश्वलायन श्रौतसूत्र का सम्बन्ध है।

आश्वलायन श्रौतसूत्र में बारह (पूर्वषट्क + उत्तरषट्क) अध्याय हैं। गृह्य सूत्र में चार अध्याय हैं। आश्वलायन के सर्वप्राचीन भाष्यकार देवस्वामी गृह्यसूत्र भाष्य में—"पूर्वे द्वादशाध्यायाः शौनकस्य कृतिः अमी चत्वार आश्वलायनस्य कृतिः" (आश्व० गृ०, अड्यार संस्करण पृ० २) कहकर श्रौतसूत्र को शौनक की कृति तथा गृह्यसूत्र को आश्वलायन की कृति कह रहे हैं। देवस्वामी का यह कथन विद्वत्समाज में समादृत नहीं हो सका है। श्रौतसूत्र के अन्त में ग्रन्थकार के द्वारा—

नमो ब्राह्मणे नमो ब्राह्मणे नम आचार्येभ्यो नम
आचार्येभ्यो नमः शौनकाय नमः शौनकाय॥ २/६/१५

ईश्वर एवं आचार्यों के अनन्तर शौनक को नमस्कार किया जाना ही देवस्वामी के मत का उपरोधक है। कोई शिष्ट जन स्वयं को नमस्कार नहीं कर सकता है। देवस्वामी ने श्रौतसूत्र का भी भाष्य किया था। ऐसा नारायण गार्ग्य की वृत्ति की प्रस्तावना से स्पष्ट है, किन्तु वह उपलब्ध नहीं है। यदि वह उपलब्ध होता, तब देवस्वामी के मन्तव्य का आधार खोजना सरल हो सकता था।

स्वयं श्रौतकार ने तीन स्थलों (१/१/२, १/१/३, २/१/१) पर कौत्स, दो स्थलों (१/१/३, २/१/१) पर गौतम के मत का उल्लेख किया है। इसी प्रकार ग्रन्थान्त में नमस्कार के अतिरिक्त दो स्थलों (२/६/८, २/६/१०) पर शौनक के मत को उद्धृत किया है। गाणगारि (२/१/१) तथा तौल्वलि आदि के मत भी वहाँ उद्धृत हैं। इससे स्पष्ट है कि शौनक भी कौत्स एवं गौतम के सदृश ही आश्वलायन से पूर्ववर्ती हैं। श्रौतसूत्र आश्वलायन की ही कृति है।

प्रतिपाद्य

प्रथम अध्याय —दर्शपूर्णमास

द्वितीय अध्याय —अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, पिण्डपितृयज्ञ, अन्वारम्भणीयेष्टि, आग्रयणेष्टि,आयुष्कामेष्टि, पुत्रकामेष्टि, वैमृध्यौ, मित्रविन्दा आदि काम्य इष्टियाँ, चातुर्मास्य।

तृतीय अध्याय —निरुढपशुबन्ध, सौत्रामणि, प्रायश्चित्त।

चतुर्थ—षष्ठ अध्याय — ज्योतिष्टोम।

सप्तम-अष्टम अध्याय — अग्निष्टोम आदि सत्र।

नवम अध्याय —एकाह।

दशम अध्याय —अहीन।

एकादश अध्याय —अतिरात्र आदि रात्रिसत्र, गवामयन।

द्वादश अध्याय —अन्य सत्र।

आश्वलायन का विभाजन अध्याय तथा तदन्तर्गत खण्ड रूप में है। आनन्दाश्रम पूना से नारायण वृत्ति के साथ १९१७ ई० में प्रकाशितसंस्करण में खण्ड को विषय की दृष्टि से वाक्यात्मक रूप में पृथक् कर दिया गया है। प्रथम छ: अध्याय पूर्वषट्क तथा सात से बारह तक के अध्याय उत्तरषट्क नाम से जाने जाते हैं।

शांखायन श्रौतसूत्र

शांखायन गृह्य (४.५.९) में वाष्कलशाखा की अन्तिम ऋचा 'तच्छंयोरा-वृणीमहे' के उद्धृरण को आधार मानकर इसका सम्बन्ध वाष्कल शाखा से माना जाता है। चरणव्यूह में शांखायन शाखा का नामोल्लेख है। अत: प्रो० कुन्दनलाल श्रौत को स्वशाखा (शांखायन) से सम्बद्ध मानते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि ऋग्वेद की वर्तमान संहिता (शाकल) तथा शांखायन के नाम से अलवर संग्रहालय में उपलब्ध हस्तलेख में कोई अन्तर ही नहीं है। अत: कर्मकाण्डीय पद्धति भेद की दृष्टि से भिन्न हुई शाखाएँ महर्षि दयानन्द द्वारा स्वीकृत उपलब्ध संहिता से ही सम्बद्ध माननी चाहिएं। रही बात परशाखा के मन्त्र ग्रहण की वह सभी सूत्र ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। गोभिल गृह्य संग्रह (परिशिष्ट) का निम्न वचन इस विषय में निदर्शन है—

आत्मतन्त्रेषु यन्नोक्तं तत् कुर्यात् पारतन्त्रिकम्।
विशेष: खलु सामान्या ये चोक्ता वेदवादिभि:॥

प्रतिपाद्य–

प्रथम अध्याय —परिभाषा प्रकरण, दर्शपूर्णमास

द्वितीय अध्याय —अग्न्याधेय, पुनराधेय, अग्निहोत्र

तृतीय अध्याय —वैमृधीय, मित्रविन्दा, आग्रयण, चातुर्मास्य आदि इष्टियाँ तथा प्रायश्चित्त

चतुर्थ अध्याय	—पिण्डपितृयज्ञ, शूलगव
पञ्चम-अष्टम अध्याय	—सोमयाग, निरूढपशुबन्ध, अग्निष्टोम आदि
नवम अध्याय	—एकाह-उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र
दशम अध्याय	—द्वादशाह
एकादश अध्याय	—अहीन
द्वादश अध्याय	—होतृकर्म
त्रयोदश अध्याय	—महाव्रत, गवामयन
चतुर्दश अध्याय	—हविर्यज्ञ-अग्न्याधेय, पुनराधेय, दर्शपूर्णमास, अनेकविधसव तथा स्तोम
पञ्चदश अध्याय	—वाजपेय, बृहस्पति सव, आप्तोर्याम आदि (शुनःशेप आख्यान)
षोडश अध्याय	—अश्वेमध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि अहीन
सप्तदश-अष्टादश	—महाव्रत

शांखायन श्रौत का आनर्तीय वरदत्तसुत भाष्य से युक्त संस्करण एल्फ्रेड हिलेब्राण्ट द्वारा सम्पादित १८८८ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। ऋग्वेद से सम्बद्ध ये दो ही श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं।

कात्यायन श्रौतसूत्र

कर्मकाण्डीय दृष्टि से संहिताचतुष्टय में यजुर्वेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यजुर्वेद को शुक्ल एवं कृष्ण इन दो भागों में विभक्त किया जाता है। यद्यपि कृष्ण यजुर्वेद नाम की कोई स्वतन्त्र संहिता नहीं है, अपितु तैत्तिरीय संहिता को ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कृष्ण यजुर्वेद से इसका ही बोध होता है।

शुक्ल यजुर्वेद के नाम से वाजसनेयि माध्यन्दिन संहिता का ग्रहण किया जाता है। शुक्लयजुर्वेद की काण्वसंहिता भी है। इन दोनों का महत्त्वपूर्ण उपलब्ध श्रौतसूत्र कात्यायन है। कैलेण्ड के मतानुसार कात्यायन श्रौतसूत्र माध्यन्दिन शाखीय शतपथ ब्राह्मण की अपेक्षा काण्वशाखीय शतपथ के निकटस्थ है (द्र० कैलेण्ड श० ब्रा० का०, पृ० ९१)। इसके (२२—२४) तीन अध्याय के विषय सामवेदीय ताण्ड्य (पञ्चविंश) आदि ब्राह्मणों से गृहीत हैं। कात्यायन के भाष्यकार कर्क के अनुसार

यह पन्द्रह शाखाओं से सम्बद्ध है। तद्यथा—"स्मरन्ति हि पञ्चदश शाखोपनिबन्धनं कृतमाचार्येणेति। तस्मान्नास्ति प्रत्यक्षकृतो विशेषः। उच्यते। शाखाद्वयमधिकृत्य तात्पर्येणानुप्रवृत्त आचार्यः"—का० श्रौ० २/१/३ पर कर्कभाष्य। यहाँ यह स्मरणीय है कि वाजसनेयि प्रातिशाख्य भी पन्द्रहशाखाओं के लिये प्रमाण माना जाता है।

प्रतिपाद्य

प्रथम अध्याय —परिभाषा
द्वितीय-तृतीय अध्याय —दर्शपूर्णमास
चतुर्थ अध्याय —पिण्डपितृयज्ञ, दाक्षायण, अन्वारम्भणीयेष्टि, आग्रयणेष्टि, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र
पञ्चम अध्याय —चातुर्मास्य
षष्ठ अध्याय —निरूढपशुबन्ध
सप्तम-एकादश अध्याय —अग्निष्टोम
द्वादश अध्याय —द्वादशाह
त्रयोदश अध्याय —गवामयन
चतुर्दश अध्याय —वाजपेय
पञ्चदश अध्याय —राजसूय
षोडश-अष्टादश अध्याय —अग्निचयन
एकोनविंश अध्याय —सौत्रामणि
विंश अध्याय —अश्वमेध
एकविंश अध्याय —पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध
द्वाविंश अध्याय —एकाह
त्रयोविंश-चतुर्विंश अध्याय —अहीन
पञ्चविंश अध्याय —प्रायश्चित्त
षड्विंश अध्याय —प्रवर्ग्य

श्रौतसूत्र के अध्याय का अवान्तरविभाग कण्डिका है। कण्डिकान्तर्गत सूत्र हैं। इसमें जातूकर्ण्य, वात्स्य तथा बादरि के अतिरिक्त अन्य आचार्यों का नामोल्लेख

नहीं हुआ है। सूत्रकार ने मतान्तर का उल्लेख 'इत्येके', 'इत्येकेषाम्' शब्दों द्वारा किया है।

मीमांसा का प्रभाव

कात्यायन श्रौतसूत्र पर जैमिनीय मीमांसा का प्रभाव भाव साम्य ही नहीं, अपितु सूत्रों के शाब्दिक ऐक्य से भी परिलक्षित है। तद्यथा—

कात्यायन श्रौतसूत्र	जैमिनीय सूत्र
रथकारस्याधाने १/१/८	वचनाद्रथकारस्य ६/१/४४
विष्णुर्वाऽमावास्यायां हौत्राम्नानात् ३/३/२४	विष्णुर्वा स्याद्धौत्राम्नानात् १०/८/५३
परार्थेष्वेक: कृतत्वात् १२/१/१४	परार्थेष्वेक: १२/४/३२
अर्थद्रव्यविरोधेऽर्थसामान्यं तत्परत्वात् १/३/१६	अर्थद्रव्यविरोधेऽर्थ: १/३/३९
चैत्र्यानन्तर्यात् १३/१/५	आनन्तर्यात् तु चैत्री स्यात् ६/५/३१
माघी वा क्रयश्रुते: १३/१/५	माघी वैकाष्टकाश्रुते: ६/५/३२
छागं मन्त्राम्नानात् ६/३/१८	छागो वा मन्त्रवर्णात् ६/८/३१
सोमाच्चाभृथे ४/३/५	तथाऽवभृथ: सोमात् ७/३/१२
विषये लौकिकमयुक्तत्वात् ४/३/७	विषये लौकिक: स्यात् ७/३/३०
दध्न: सङ्घातात् ४/३/१२	दध्न: सङ्घातसामान्यात् ८/२/२४
द्वादशाह: सत्रमहीनश्च १२/१/४	सत्रमहीनश्च द्वादशाह: ८/२/२४
श्रुति: क्रमादानुमानिकत्वात् १/५/६	श्रुतिलक्षणमानुपूर्व्यं तत्प्रधानत्वात् ५/१/१
कालातिक्रमे नियतक्रिया प्राप्तकालत्वात् ७/१/२२	नियतानामनुत्कर्ष: प्राप्तकालत्वात् ६/५/३८
नित्यानुवादोऽनुयाजप्रतिषेध: ७/४/२६	नित्यानुवादो वा कर्मण: स्यात् १०/७/३

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी अनेक स्थल हैं, जहाँ मीमांसा का प्रभाव किंवा अनुकरण स्पष्ट परिलक्षित होता है। तद्यथा—द्विदेवत्य ग्रहों के शेष के भक्षण क्रम में मीमांसा (३/५/३६—३९) की युक्तियों को भी कात्यायनश्रौत(९/११/११—१५) में यथावत् ग्रहण कर लिया गया है। कात्यायन ही ऐसा सूत्र ग्रन्थ है, जिसमें

शेष-शेषिभाव के सिद्धान्त का वर्णन उपलब्ध है। साथ ही पूर्वमीमांसा के श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या इन छह (प्रमाणों) का उल्लेख है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूर्व मीमांसा तथा श्रौतसूत्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

संवत्सरसाध्य-आदित्यानामयन, अङ्गिरसामयन, दृतिवातवतोरयन, कुण्डपायिनामयन, सर्पाणामयन तथा त्रिसंवत्सरसाध्य—तापसश्चित, त्रिसंवत्सर तथा पञ्चसंवत्सरसाध्य—महातापश्चित, क्षुल्लकतापश्चित तथ अग्निसत्र वहाँ वर्णित हैं।

प्राजापत्य (द्वादशवर्ष में सम्पन्न होने वाला), शाक्त्यानामयन (छत्तीस संवत्सर में सम्पाद्य), साध्यानामयन (शत संवत्सर में सम्पाद्य) के साथ ही विश्वसृजामयन (सहस्रसंवत्सर सम्पाद्य)—इन चार महासत्रों का भी वर्णन वहाँ उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त सारस्वत सत्र आदि भी वहाँ विवेचित हैं।

विषय वैविध्य के साथ ही प्रक्रिया की स्पष्टता आदि गुणों के कारण अन्य श्रौतसूत्रों की अपेक्षा कात्यायन का प्रचार अधिक हुआ है। यद्यपि कात्यायन के अनेक प्रसंग अप्रासंगिक भी कहे जा सकते हैं, जिनका विवेचन हम पृथक्शः करेंगे।

कृष्णयजुर्वेदीय श्रौतसूत्र

संख्यात्मक दृष्टि से कृष्णयजुर्वेद समृद्धतम है। बौधायन, वाधूल, मानव, भारद्वाज, आपस्तम्ब, काठक, सत्याषाढ, वाराह, वैखानस कृष्णयजुर्वेदीय श्रौतसूत्र हैं। सभी के प्रतिपाद्य यज्ञ समान हैं, किन्तु यज्ञों के क्रम का पौर्वापर्य है। सत्याषाढ़ (हिरण्यकेशीयशाखा) में उन्तीस प्रश्न हैं, जिसमें पच्चीसवां प्रश्न शुल्व, २६—२७वें धर्म तथा २८—२९ भारद्वाज पितृमेध सूत्र हैं। जबकि शुल्व एवं धर्म सूत्र अन्य श्रौतसूत्र के भाग न होकर पृथक् हैं।

सामवेदीय श्रौतसूत्र

आर्षेय कल्प यह मशक गार्ग्य रचित होने से मशक कल्प भी कहा जाता है। जैमिनीय, लाट्यायन, द्राह्यायण प्रमुख श्रौतसूत्र हैं। इनके अतिरिक्त निदान सूत्र (कौथुमशाखीय) है। इसे श्रौत के साथ अनुक्रमणी भी कहा जाता है। इसमें यज्ञीय विधि विधान के साथ यज्ञ में प्रयोज्य सामों का भी वर्णन हुआ है।

अथर्ववेदीय श्रौतसूत्र

अथर्ववेद से सम्बद्ध एक मात्र श्रौतसूत्र वैतान है।

गृह्यसूत्र

कल्पसूत्र में द्वितीय स्थानी हैं—गृह्यसूत्र। गृह्यसूत्रकारों ने–

उक्तानि वैतानिकानि गृह्याणि वक्ष्यामः।—आश्वलायन १/१/१

अथाऽतो गृह्याकर्माण्युपदेक्ष्यामः–गोभिल१/१/१

अथातो गृह्याकर्माणि—खादिरगृ० १/१/१ कहकर गृह्यसूत्र प्रतिपाद्य कर्मों को गृह्यकर्म कहा है।गृह्य शब्द के अर्थ हैं—

(i) गृह्य = अग्नि—जिस अग्नि में पाणिग्रहण (विवाह संस्कार) होता है वह अग्नि गृह्यपद वाच्य है। तद्यथा–**यस्मिन्नग्नौ पाणिं गृह्णीयात् स गृह्यः**– खादिर गृ० १/५/१

(ii) गृह्य = गृहस्थ का भौतिक/सार्वभौतिक व्रत—सामवेद परिशिष्ट-ब्राह्मणसूत्र श्रावणविध्यन्तर्गत (अ० ८६–८८) उपनयन आदि आठ व्रत वर्णित हैं। इनमें आठवां गृहस्थ का भौतिक व्रत है। इसे ही गृह्य कहा गया है।

(iii) गृह्या = पत्नी—गृहे साध्वी कुशला योग्या हिता वेति—गृह कार्यों में निपुणा, कुशला स्त्री गृह्या है, उसके साथ मिलकर सम्पाद्य कर्म—गृह्य।

(iv) गृह्य = परिवार—गृह शब्द पत्नी एवं शाला-घर दोनों का वाचक है। तद्यथा—'सगृहो गृहमागत:'—विस्तरेण द्रष्टव्य—आश्व० गृ० १/१/१ पर गार्ग्य नारायणीवृत्ति।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि—गृह्य अथवा आवसथ्याग्नि साध्य कर्मों (जिनमें गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त किए जाने वाले संस्कार प्रमुख हैं), एवं पञ्चमहायज्ञों का प्रतिपादन गृह्यसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य है। यद्यपि इन ग्रन्थों में इस्तत: तत्कालीन लोक-प्रथाएं एवं सामाजिक परम्पराएं तद्यथा—**अथाचारिकाणि** तथा **ग्रामवचनं च कुर्यः** आदि सूत्र—भी वहाँ उपलब्ध हैं।

गृह्यसूत्रों का उद्भव एवं विकास

मनुष्य चाहे आस्तिक हो अथवा नास्तिक उसके जीवन के साथ अनिवार्य रूप से कुछ कृत्य इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि उनके बिना जीवन निर्वाह की कल्पना सम्भव नहीं प्रतीत होतीहै। इन कृत्यों में प्रमुख हैं—**(i) व्यक्ति का नामकरण**, भले ही यह किसी विधि विशेष के साथ हो अथवा वैसे ही रख दिया जाये। बिना किसी विशिष्ट नाम के रखे लोक व्यवहार सम्भव नहीं।

(ii) **विवाह**—किन्हीं भी दो स्त्री एवं पुरुष का कतिपय प्रावधानों/पारस्परिक संविदा आदि के माध्यम से एक दूसरे के साथ रहना, जिससे वह अपनी वंश परम्परा को आगे बढ़ा सकें विवाह है। चाहे यह देश काल की परम्परागत रीति रिवाज के आधार पर किया जाए अथवा कोर्ट के माध्यम से अथवा किन्हीं विशिष्ट विधियों/क्रियाओं को सम्पादित करते हुए किया जाए। यह सब विशेष सम्बन्ध का वाहक होने के कारण विवाह ही कहलायेगा।

(iii) **अन्त्येष्टि**—इस जीवन की लीला समाप्ति पर उसका और्ध्वदेहिक कृत्य। यह कृत्य दाह के रूप में हो, अथवा इस्लाम के अनुयायिओं की तरह भूखात करना हो अथवा पारसियों की तरह खुले आकाश में पक्षियों के भक्षणार्थ रख देना। अथवा अधुनातन विद्युत् दाह के माध्यम से किया जाए। इसमें किसी भी शास्त्रीय विधि को न किया जाए तब भी होगी अन्त्येष्टि ही।

यह सभी कृत्य प्रत्येक देश में किसी न किसी विशिष्ट प्रकार से सम्पादित किए जाते हैं। पूर्व में भी यह विशिष्ट प्रकार से ही सम्पन्न होते रहे हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। उक्त तथा उक्त सदृश अनेक कृत्यसम्पादन ही कर्मकाण्ड कहा जाता है। इन कृत्यों के सम्पादनार्थ रचा जाने वाला साहित्य कर्मकाण्डीय साहित्य है। प्रत्येक देश व जाति में यह पृथक्ता लिए है। भारतीय परम्परा में व्यक्ति के धार्मिक दैनिक जीवन से सम्बद्ध कृत्यों को यज्ञ/संस्कार के माध्यम से करने की व्यवस्था अतिपुरातन काल से रही है। गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध इन कृत्यों का सम्पादन जिस अग्नि में किया जाता है उसे गृह्य अग्नि कहा गया है। गृह्य अग्नि में सम्पाद्य कर्मों का विधि विधान जिन ग्रन्थों में किया गया है, उन्हें गृह्यसूत्र कहा जाता है।

ऐतरेय आदि ब्राह्मणग्रन्थों में गृह्यकर्मों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावलि का प्रयोग उपलब्ध होता है। तद्यथा—"इडामुपह्वयत इडाविधा वै **पाकयज्ञा** इडामेवानु ये के च पाकयज्ञास्ते सर्वेऽग्निष्टोममपियन्ति, इति"—ऐ० ब्रा० १४/२ (१११)। शतपथब्राह्मण में पञ्चमहायज्ञ, उपनयन, गर्भाधान, सोष्यन्तीकर्म, आयुष्यकर्म, मेधाजनन, नामकरण प्रभृति गृह्यकर्मों का उल्लेख उपलब्ध होता है। (द्र० श० प० ११/५/६/१; ११/५/४/१; १४/९/४/१७)।

हिलेब्राण्ट का मत है कि श्रौतकर्मप्रतिपादक ब्राह्मण ग्रन्थों के सदृश ही गृह्यकर्म-प्रधान ब्राह्मण भी कभी रहे होंगे, जिनसे गृह्यसूत्रों ने प्रेरणा प्राप्त की (रिच्वल् लिट्, पृ० २३)। किन्तु ओल्डेनबर्ग का विचार है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में इतस्ततः प्राप्त उल्लेखों के आधार पर गृह्यकर्मप्रतिपादक ब्राह्मणों की सत्ता को सिद्ध नहीं किया जा सकता (एस०बी०ई० ३०, भूमिका, पृ० १७—१८)। ओल्डेनबर्ग के विपरीत डॉ० हाग हिलेब्राण्ट का समर्थन करते हैं।

गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित कर्म प्रायः समन्त्रक हैं। एकाध स्थल पर अमन्त्रक विधियाँ भी विहित की गयी हैं। तद्यथा—

अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च, तान् विवाहे प्रतीयात्। यत्तु समानं तद् वक्ष्यामः-आश्व० गृ० १/५/१-२

आश्वलायन का मत है कि विवाह के विषय में जनपद तथा ग्राम की प्रचलित परम्परा का भी निर्वाह करना चाहिए। यहाँ गृह्यसूत्र में तो सर्वत्र प्रचलित समान धर्मों/कृत्यों का ही कथन करेंगे। इसी प्रकार 'अथाचारिकाणि'—काठक गृ०, आपस्तम्ब आदि में भी अमन्त्रक लौकिक रीति-रिवाज स्वीकार किये गये हैं। इस विषय में पारस्कर १/८/११—१३ भी विशेषण द्रष्टव्य है। किन्तु अधिकांश कृत्य समन्त्रक ही हैं।

ऋक् १०/८५ में विवाह विषयक कृत्यों का उल्लेख है, गृह्यकर्मों में उक्त मन्त्रों का विनियोग भी उपलब्ध होता है। इसी प्रकार अन्त्येष्टि विषयक सन्दर्भ ऋक् १०/१४—१६ तथा यजुर्वेद अध्याय ३९ में प्राप्त है। उपनयन सम्बन्धी सन्दर्भों का मूल अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त में स्पष्ट दिखाई देता है। ओल्डेनबर्ग का विचार है कि 'गृह्यकर्मों में वैदिक ऋचाओं का प्रयोग नहीं होता था। ये कर्म अत्यन्त सादे ढंग से सम्भवतः छोटे-छोटे गद्यात्मक मन्त्रों के द्वारा सम्पन्न कर लिए जाते थे (सी०बी०ई०,३०, भूमिका, पृ०९-१०)। यद्यपि वेदमन्त्रों का सृजन/उपदेश तत्तत् कर्मों में विनियोग के लिए भले ही न हुआ हो, किन्तु मनीषियों ने मन्त्रान्तर्गत भावों को लेकर और कहीं केवल शब्द साम्य को लेकर उनका उक्त लौकिक कर्मों में विनियोग (जैसे—'दधिक्राव्णो अकारिषम्' मन्त्रस्थ दधि शब्द का दधिभक्षण में विनियोग किया जाना) कर दिया गया है। इस परम्परा का मूल वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध है।

विकास—वेद के अध्ययन की दृष्टि से जिस प्रकार शाखा विस्तार हुआ, उसी प्रकार प्रत्येक शाखा का अपना कल्प (श्रौत, गृह्य, धर्म, शुल्व) साहित्य भी विस्तार को प्राप्त करता रहा। श्रौतसूत्रों में जिस प्रकार स्वशाखीय मन्त्र विनियोग के साथ ही परशाखीय मन्त्र भी विनियुक्त हुए हैं। उसी प्रकार गृह्यसूत्रों में भी स्वशाखीय मन्त्र विनियोग के साथ ही परशाखीय मन्त्रों को भी ग्रहण किया गया है। शाखा बाहुल्य के साथ-साथ गृह्य सूत्र भी बहुलता को प्राप्त होते रहे।

गृह्यसूत्रों में प्रयुक्त परिस्तरण, पर्युक्षण, पर्यग्निकरण, आघारौ, आज्यभागौ, चातुष्प्राश्यपचन आदि पारिभाषिक शब्द ब्राह्मणग्रन्थों में पूर्व ही प्रयुक्त हैं। आग्रयणेष्टि, दर्शपूर्णमास आदि तो गृह्यसूत्रकारों ने सीधे ब्राह्मण ग्रन्थों से लिए हैं। यद्यपि अनेकत्र अनुष्ठान की प्रक्रिया भी ब्राह्मण ग्रन्थों से ग्रहण की गयी है। इस ब्राह्मणोक्त कर्मकाण्ड का सरलीकरण गृह्यसूत्रों की अपनी विशेषता है। इसे दर्शपूर्णमास की श्रौत एवं ब्राह्मण वर्णित विधि की गृह्यसूत्रीय विधि के साथ तुलना करके देखा जा सकता है। इसी प्रकार श्रौत आग्रयणेष्टि तथा गृह्य आग्रयणेष्टि की तुलना से स्पष्ट है कि गृह्यविधि सरलतर है। श्रौतकर्मों में जहाँ आहिताग्नि का अधिकार है, वहीं गृह्यकर्मों में आहिताग्नि एवं अनाहिताग्नि दोनों ही अधिकारी हैं।

प्रत्येक वेद के गृह्य सूत्र भी पृथक्-पृथक् हैं। अत: शाखा भेद के कारण एक ही कर्म की एक सूत्र वर्णित विधि इतरसूत्रवर्णित विधि से भिन्नता लिए हुए हैं।

मानव के जन्म से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त सभी संस्कारों आदि का वर्णन होने के कारण गृह्यसूत्रों का क्षेत्र श्रौतसूत्रों की अपेक्षा व्यापक है। साथ ही श्रौतसूत्रों में जहाँ प्राय: काम्ययज्ञ वर्णित हैं, वहीं गृह्यसूत्रों में संस्कारों के साथ-साथ नित्यकर्म भी वर्णित हुए हैं। उपलब्ध गृह्यसूत्रों का अतिसंक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

ऋग्वेदीय गृह्यसूत्र

(i) आश्वलायन—इसके रचयिता शौनक के शिष्य आश्वलायन हैं। इसकी गणना प्राचीनतम सूत्रग्रन्थों में होती है। इसके प्राचीनतम भाष्यकार देवस्वामी द्वारा भाष्यारम्भ में प्रदत्त जानकारी—**पूर्वे द्वादशाध्याया: शौनकस्य कृति: अमी चत्वार आश्वलायनस्य कृति:**—से प्रतीत होता है कि पूर्व के द्वादश अध्याय (श्रौतसूत्र) मूलत: शौनक की कृति हैं तथा ये चार अध्याय (गृह्यसूत्र) आश्वलायन विरचित

हैं। शौनक प्रणीत होते हुए भी आश्वलायन प्रणीत मानने का कारण स्यात् आश्वलायन द्वारा इनका (द्वादशाध्याय) परिष्करण हो। यत: आयुर्वेदीय ग्रन्थ चरक भी मूलत: अग्निवेश की रचना है तथा चरक उसका परिष्कर्त्ता है। जैसाकि प्रसिद्ध भी है—

अग्निवेश कृते तन्त्रे चरक प्रतिसंस्कृते:। इसी प्रकार द्वादशाध्याय भी शौनक प्रणीत होते हुए भी आश्वलायन द्वारा परिष्कृत होने के कारण आश्वलायन के नाम से ही प्रसिद्ध हो गए हैं।

इसमें चार अध्याय हैं, जिनका विषय-विभाजन निम्न प्रकार है—

प्रथम अध्याय—पाकयज्ञ, सायं-प्रात: सिद्ध हविष्यहोम, विवाह, पार्वण-स्थलीपाक, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चौलकर्म, गोदान, उपनयन, ब्रह्मचर्यव्रत तथा मधुपर्क।

द्वितीय अध्याय—श्रवणा, आश्वयुजी, अष्टका, वास्तुनिर्माण-गृहप्रवेश।

तृतीय अध्याय—पञ्चमहायज्ञ, ऋषि-तर्पण, वेदाध्ययन, उपाकर्म, समावर्तन, राजसन्नाहन।

चतुर्थ अध्याय—दाहकर्म, श्राद्ध, शूलगव।

नारायण के अनुसार बालखिल्य 'प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्य' को आश्व० गृ० ३/१२/१४ पर खिल सूक्त न कहकर सौपर्ण संज्ञा से अभिहित किया गया है। 'आयुष्यं वर्चस्यम्' खिल २७/१ को आश्व० गृ० ३/८/१६ पर सूक्त ही कहा गया है। इसी प्रकार 'नेजमेष परा पत' खिल ३४/१ को सीमन्तोन्नयन में विनियुक्त करते हुए (आश्व० गृ० १/१४/३) ऋक् संज्ञा से अभिहित किया है। इससे स्पष्ट है कि सूत्रकार के समक्ष खिल अथवा परिशिष्ट का कोई विचार नहीं था। वैसे सम्पूर्ण गृह्यसूत्र में ऋग्वेद के १२५ मन्त्र उद्धृत हैं। शालाकर्म में आथर्वण मन्त्र विनियुक्त हैं।

आश्वलायन गृह्य ४/७/१४ तथा श्रौत ६/८, ६/१०, ६/१५ दोनों सूत्रों में शौनक के विचारों का उल्लेख हुआ है। साथ ही शौनकीय बृहद्देवता ४/१३९ में 'अस्माकमुत्तमं (ऋ० ४/३१/१५) सूर्यं स्तौतीत्याहाश्वलायन:' आश्वलायन (गृ० २/६/१२) का मत भी उद्धृत है। बृहद्देवता के इसी उल्लेख के आधार पर प्रो० कुन्दनलाल शर्मा ने आश्वलायन को पाणिनि से पूर्ववर्ती स्वीकार किया है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के सन्दर्भ में यह विशेष ध्यातव्य है कि—

(i) इसके विवाह संस्कार में केवल २१ मन्त्र विनियुक्त हैं।

(ii) इसमें केवल ११ संस्कार वर्णित हैं।

(iii) यह सूत्र मृतक पुरुष के साथ उसकी पत्नी के जल मरने के विरुद्ध है।

(iv) इसमें कई मन्त्र ऐसे हैं, जो किसी संहिता में प्राप्त नहीं होते हैं। जैसे उपर्युद्धृत 'प्र धारयन्तु मधुनो घृतस्य'।

(v) विवाह संस्कार के सदृश ही पुंसवन एवं जातकर्म भी अन्य सूत्र ग्रन्थों की अपेक्षा सरल है।

(vi) अन्त्येष्टि के लिए शव को श्मशान ले जाते समय उसके पीछे गौ अथवा कृष्णवर्णा/एकवर्णा अजा के अगले बायें पैर में रस्सी बांधकर चलाने ओर उसके पीछे मृतक के सगे-सम्बन्धियों के चलने का विधान अन्य सूत्र ग्रन्थों में नहीं है।

(vii) राजसन्नाहन कर्म भी आश्वलायन की अपनी विशेषता है। इन सबके बावजूद कतिपय सूत्र अप्रासंगिक भी प्रतीत होते हैं।

व्याख्या

देवस्वामी—आश्वलायन गृह्यसूत्र के प्राचीन व्याख्याकार देवस्वामी (१००० ई० के लगभग) हैं। देवस्वामी ने आश्वलायन श्रौत पर भी भाष्य किया था, जिसका अनुसरण नारायण गार्ग्य ने अपनी श्रौतसूत्र की वृत्ति में किया है।

नारायण—आश्व० गृ० पर 'विवरण' वृत्तिकार दिवाकर सूनु नारायण है। इनके द्वारा उद्धृत कई श्लोक आश्व० श्रौ० सू० वृत्ति के कई श्लोकों की छाया मात्र हैं। आश्व० श्रौ० सू० वृत्ति के रचयिता नारायण नृसिंह सूनु तथा गार्ग्य गोत्रीय हैं, जबकि विवरणकार का गोत्र नैध्रुव है। दोनों ही देवस्वामी का अनुकरण करते हैं। रेणु दीक्षित (११८८ शाके-पारस्कर गृह्यसूत्र कारिका)ने नारायण को उद्धृत किया है। अत: नारायण १२६६ ई० से पूर्वकालिक हैं।

हरदत्तमिश्र—प्रसिद्ध वैयाकरण पदमञ्जरी (काशिका वृत्ति) के रचयिता हरदत्त मिश्र (११०० ई० के लगभग) की आश्व० गृ० पर अनाविला टीका अतिप्रसिद्ध है।

आश्व० गृ० पर कुमारिलकृत कारिकाएँ भी हैं।

(ii) **शांखायन**—षट् अध्यायात्मक यह ग्रन्थ सुयज्ञ विरचित है। इसे ऋग्वेद की वाष्कल शाखा से सम्बद्ध माना जाता है, किन्तु अभी (अगस्त ९८) अलवर (राजस्थान) से 'शांखायन संहिता' नाम से एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है। स्यात्-हस्तलेख के विवेचन के पश्चात् गृह्यसूत्र के शांखायन से सम्बद्ध होने पर कुछ प्रकाश पड़े।

शांखायन गृह्य का विषय विभाजन—

प्रथम अध्याय—पाकयज्ञ, दर्शपूर्णमास, ब्रह्मयज्ञ, विवाह, चतुर्थी कर्म, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, मेधाजनन, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म।

द्वितीय अध्याय—उपनयन, वेदाध्ययन, शुक्रिय, शाक्वर, व्रातिक, औपनिषद् व्रत, वैश्वदेवबलि, मधुपर्क।

तृतीय अध्याय—समावर्तन, वास्तोष्पति के लिए होम, आग्रयणेष्टि, वृषोत्सर्ग, अष्टका।

चतुर्थ अध्याय—श्राद्ध-पार्वण, एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण, उपाकरण, उत्सर्ग, तर्पण, स्नातक का शिष्टाचार, क्षेत्रकर्षण, श्रावण होम, आश्वयुजी आदि।

पञ्चम अध्याय—यजमान के शरीर में अग्नि समारोहण-अग्निहोत्र से छुट्टी, तडागादि की प्रतिष्ठा, दर्शपूर्णमास न करने का प्रायश्चित्त, कपोत-उलूक, दुःस्वप्न आदि के प्रायश्चित्त।

षष्ठ अध्याय—आरण्यक भाग के अध्ययनार्थ नियम, महाव्रत, उपनिषद् तथा संहिता भाग के अध्ययन के नियम।

शांखायन के वृत्तिकार नारायण ने पञ्चम अध्याय को परिशिष्ट नाम दिया है। षष्ठ अध्याय का गृह्यसूत्रीय विषय वस्तु से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। प्रथम चार अध्याय भी प्रक्षेप से रहित नहीं हैं।

शांखायन ४/५/१७ पर मनु ३/११९ को उद्धृत किया गया है। इसी आधार पर टी० आर० चिन्तामणि ने इसे मनुस्मृति से अर्वाचीन कहा है। डॉ० बूहलर इससे सहमत नहीं हैं।

शांखायनगृह्य एवं पारस्कर गृह्यसूत्र में अनेक सूत्र समान हैं। तद्यथा—

शां०गृ०सू०	पा०गृ०सू०
१/५/१—५	१/४/१—५

१/१४/१३—१६	१/८/१५—१८
१/२२/१०—१२	१/१५/६—७

उक्त के अतिरिक्त शां० गृ० ३/११, पा० गृ० ३/९ तथा काठक गृ० ५/९ सभी में वृषोत्सर्ग समान रूप से वर्णित है। ओल्डेनबर्ग के अनुसार इन सभी स्थलों पर शांखायन गृह्यसूत्र ही मूलग्रन्थ प्रतीत होता है। यत: वृषाभिमन्त्रण में विनियुक्त मन्त्र ऋग्वेद (१०/१६९) का है। यह वाजसनेयि संहिता में उपलब्ध नहीं है। इसलिए इसे पारस्करगृह्यसूत्र से प्राचीनतर स्वीकार किया गया है।

ओल्डेन वर्ग ने आश्व० गृ० तथा कौ० गृ० में वर्णित वंशावलियों के आधार पर शांखायन गृह्यसूत्र को आश्वलायन से प्राचीनतर माना है (द्र०—एस० बी० ई० ३०,. प्रस्तावना, पृ० ३८), किन्तु प्रो० कुन्दनलाल शर्मा ने आश्वलायन को प्राचीनतर माना है।

अन्त्येष्टि या पितृमेध तथा शूलगव गृह्यसूत्र का विषय है, किन्तु यह शांखायन श्रौतसूत्र पर क्रमश: ४/१४—१६ तथा १७ पर विहित हैं और शांखायन गृह्य में इनका उल्लेख नहीं है।

(iii) **कौषीतकि**—शाम्बव्य विरचित होने के कारण इसे शाम्बव्य गृह्यसूत्र भी कहा जाता है।

भवत्रात विरचित वृत्ति सहित पञ्च अध्यायात्मक गृह्यसूत्र का सम्पादन टी० आर० चिन्तामणि ने किया है। प्रतिपाद्य विषय निम्नवत् है—

प्रथम अध्याय—पाकयज्ञ, शालाग्नि, विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूड़ाकर्म।

द्वितीय अध्याय—उपनयन, सावित्र्युपदेश, तर्पण आदि।

तृतीय अध्याय—समावर्तन, वास्तुकरण, आग्रयण, गवानुमन्त्रण, वृषोत्सर्ग, वैश्वदेव, कृषिकर्म, अष्टका आदि।

चतुर्थ अध्याय—शान्तिकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजी, आग्रहायणी, और्ध्वदेहिकम्, श्राद्धकर्म आदि।

उक्त के अतिरिक्त—शौनक, शाकल्य, पैङ्गि तथा ऐतरेय आदि अनुपलब्ध गृह्यसूत्र हैं, जिनके उल्लेख इतस्तत: उपलब्ध हैं।

कृष्णयजुर्वेदीय गृह्यसूत्र

कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध गृह्यसूत्र सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध हैं। सत्याषाढ़ श्रौत के व्याख्याकार महादेव के अनुसार तैत्तिरीय शाखा के कल्पसूत्रों का रचनाक्रम निम्न प्रकार है—बौधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि, वाधूल, वैखानस (सत्या०श्रौ०सू० भाग–१, पृ० १–२)। यह क्रम सभी को स्वीकार है। बूहलर (एस०बी०ई० २, भूमिका, पृ० १८) के अनुसार बौधायन और आपस्तम्ब में दशकों का नहीं शताब्दियों का अन्तर होना चाहिए। तद्यथा—

(i) **बौधायन**—यह तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध है। इसके प्रकाशित संस्करण में चार प्रश्न हैं। कतिपय हस्तलेखानुसार प्रश्न संख्या दस है। कलेवर की दृष्टि से यह अन्य गृह्यसूत्र से विशाल है।

बौधायन में यज्ञ एवं संस्कार का वर्गीकरण हुत, प्रहुत तथा आहुत के अन्तर्गत किया गया है। तद्यथा—

प्रथमप्रश्न (**हुत**)—विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, बलिहरण।

द्वितीयप्रश्न (**प्रहुत**)–जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म

(**आहुत**)—उपनयन, समावर्तन, शूलगव, बलिहरण–वैश्वदेव, पञ्चमहायज्ञ, प्रत्यवरोहण, अष्टका।

तृतीयप्रश्न (**आहुत**)–हुतानुकृतिरुपाकर्म—उपनिषद् वृत्तचर्या, गोदान आदि,

प्रहुतानुकृति—वास्तुशमन, अद्भुतशान्ति, आहुतानुकृतिरायुष्यचरुअष्टमीव्रत, बलिहरणानुकृतिरुपाकर्मोत्सर्ग—सर्पबलि, अष्टकानुकृति।

चतुर्थप्रश्न (**आहुत**)—अष्टकानुकृते—प्रायश्चित्त।

गृह्यसूत्र के साथ ही गृह्यपरिभाषासूत्र दो प्रश्न, गृह्यशेषसूत्र पांच प्रश्न तथा पितृमेधसूत्र तीन प्रश्न हैं। यह सम्पूर्ण बौधायन कल्प कहलाता है।

प्रो० कुन्दनलाल शर्मा के अनुसार इसका समय ९०० ई०पू० है–द्र० कल्प सूत्र पृ० २६५।

(ii) **भारद्वाज**—इसमें तीन प्रश्न एवं ८१ (२८ + ३२ + २१) कण्डिकाएँ हैं। इस गृह्यसूत्र में विनियुक्त अनेक मन्त्रों का मूल अनुपलब्ध है।

इसका रचनाक्रम तर्कसंगत नहीं है। यह इसके विषय प्रतिपादनक्रम से स्पष्ट है। तद्यथा—

प्रथमप्रश्न—उपनयन (मेधाजनन, गोदान), विवाह, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, क्षिप्रसुवन, विजातारक्षण, जातकर्म, नामकरण, विप्रोष्यकर्म, अन्नप्राशन, चौड़ (गोदान)।

द्वितीयप्रश्न—श्रवणाकर्म, आग्रहायणी, हेमन्त प्रत्यवरोहण, शालाकर्म, आगारप्रवेश (वास्तुशमन), श्वग्रहप्रायश्चित्त, शूलगव, मासिश्राद्ध, अष्टका, स्नान, अर्घ्य, संवादजयन, सुभृत्यगुप्ति, भार्यागुप्ति, रथारोहण, हस्त्यारोहण, प्रायश्चित्त, अद्‌भुत प्रायश्चित्त।

तृतीय प्रश्न—औपासनकल्प, व्रतादेशविसर्जन, अवान्तरदीक्षा, उपाकरण, विसर्जन, वैश्वदेव, नान्दी श्राद्ध, सपिण्डीकरण गृह्यप्रायश्चित्त।

'शास्त्रसम्भवादिति भारद्वाज:'—(का० श्रौ० १/६/२१) इस कात्यायन वचन से स्पष्ट है कि भारद्वाज कात्यायन से पूर्ववर्ती है। सीमन्तोन्नयन प्रकरण में— "विवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण यमुने तवेति। तीरेणासौ तवेति वा यस्यास्तीरे वसति।" —(भा० गृ० सू० १/२१) मन्त्र के विनियोग के लिए 'यमुने तव' के स्थान पर उस नदी का नाम लेना चाहिए, जिसके तीर/तट पर प्रयोक्ता वास करता हो। टीकाकार ने—'तीरेण वेगवति तव, तीरेण कावेरि तव' उदाहरण दिया है। इससे प्रतीत होता है कि सूत्रकार तो यमुना तटवासी था, किन्तु टीकाकार कावेरि तटवर्ती दाक्षिणात्य। आश्वलायन १२/६ में 'यमुनायां कार पचवेऽवभृथमुपेयु:' प्रयोग से आश्वलायन और भारद्वाज दोनों का कुरु पांचाल क्षेत्रवासी होना सिद्ध होता है तथा भारद्वाज का आपस्तम्ब से पूर्ववर्ती होने के कारण इनका समय ८०० ई० पू० से अर्वाचीन नहीं हो सकता है।

(iii) आपस्तम्ब—आपस्तम्ब कल्पसूत्र का २७वाँ प्रश्न गृह्यसूत्र है। चरण व्यूह के अनुसार—तैत्तिरीय शाखा की उपशाखा है—खाण्डिकीय। इसी की पाँच शाखाओं में से एक आपस्तम्ब है। इसमें आठ पटल एवं तेईस खंड हैं।

प्रतिपाद्य-

प्रथमपटल—परिभाषा, पाकयज्ञ, विवाह—गोदान, गौ का आलभन, मधुपर्क।

द्वितीयपटल—पाणिग्रहण विधि, प्रदक्षिणा, अश्मारोहण आदि।

तृतीय पटल—स्थालीपाक विधि-देवता आदि, अपशकुन, अभिचार।

चतुर्थ पटल—उपनयन, सावित्र्युपदेश आदि।

पञ्चम पटल—समावर्तन, मधुपर्क, गौ के आलभन का निषेध।

षष्ठ पटल—सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चौलकर्म।

सप्तम पटल—वास्तु, अभिचार, सर्पबलि, आग्रयण कर्म आदि।

अष्टम पटल—मासिक श्राद्धकर्म, अष्टका, अभिचार आदि।

आपस्तब गृह्यसूत्र में कर्म का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। गृह्यकर्मों में विनियोज्य मन्त्रों का संग्रह 'मन्त्रपाठ' आपस्तम्ब कल्प के प्रश्न २५—२६ में किया गया है। आपस्तम्ब को बौधायन से अर्वाचीन माना जाता है। डॉ० पी० वी० काणे ने आपस्तम्ब को ६००—३०० ई० पू० मानने का सुझाव दिया है।

आपस्तम्बगृह्यसूत्र पर हरदत्तमिश्र (११०० ई०) कृत 'अनाकुला' तथा सुदर्शनाचार्य (१३००—१५०० के मध्य) कृत 'तात्पर्य दर्शन' ये दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

(iv) **मानव**—कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा से सम्बन्द्ध है। इसे ही मैत्रायणीय मानवगृह्यसूत्र भी कहा जाता है। इसमें प्रतीक रूप में उद्धृत मन्त्र मैत्रायणी संहिता से गृहीत हैं। पं० भगवद्दत्त के अनुसार—मानव एवं मैत्रायणी दो पृथक्-पृथक् गृह्यसूत्र थे, किन्तु अत्यधिक साम्य के कारण दोनों को एक स्वीकार कर लिया गया—द्र० वै० वा० इति० प्रथम भाग पृ० २९८।

मानव गृह्यसूत्र का आन्तरिक विभाजन अन्य गृह्यसूत्रों की तरह काण्ड, प्रश्न अथवा पटल में नहीं है। इसके आन्तरिक भेद की संज्ञा पुरुष है। पुरुष खण्ड में विभक्त हैं। इसमें कुल दो पुरुष हैं। प्रथम पुरुष में २३ तथा द्वितीय में १८ खण्ड हैं। इस पर अष्टावक्र की व्याख्या है। मानवगृह्यसूत्र ब्राह्म तथा शौल्क इन दो प्रकार के विवाह का वर्णन करता है।

डॉ० सूर्यकान्त (कौथुम गृ० सू० पृ० ५१) के अनुसार मानवगृह्यसूत्र का काल आश्वलायन गृह्यसूत्र से पश्चवर्ती होने की सम्भावना करते हैं। प्रो० कुन्दनलाल शर्मा गार्बे को उद्धृत करते हुए मानव गृह्यसूत्र को आपस्तम्ब गृह्यसूत्र से प्राचीन मानकर इसके रचनाकाल की अवरसीमा ८०० ई० पू० (वै० वा० का० इति० कल्पसूत्र पृ० २६९) मानते हैं।

(v) **हिरण्यकेशि**—इसे सत्याषाढ़ गृह्यसूत्र भी कहते हैं। हिरण्यकेशिकल्प के दो (१९—२०) प्रश्न गृह्यसूत्र हैं। प्रत्येक प्रश्न में आठ-आठ पटल हैं। कल्प के

व्याख्याकार महादेव ने हिरण्यकेशि सम्प्रदाय को आपस्तम्ब सम्प्रदाय से अर्वाचीन माना है। प्रो० हिल्लेब्राण्ट (रिच्वल् लिट्० पृ० ३०) हिरण्यकेशिगृह्य सूत्र को आपस्तम्बगृह्यसूत्र की टीकामात्र स्वीकार करते हैं, किन्तु प्रो० कुन्दनलालशर्मा (वै०वा०का० इति० कल्पसूत्र, पृ० २९५) इससे सहमत नहीं है। पी०वी० काणे (धर्मशास्त्र का इतिहास भाग० १, पृ० ४६) हिरण्यकेशि का उपजीव्य भारद्वाज गृह्यसूत्र को मानते हैं।

प्रतिपाद्य—

प्रथम प्रश्न—उपनयन, समावर्तन, अर्घ्य, प्रायश्चित्त, विवाह, शालाकर्म आदि।

द्वितीय प्रश्न—सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, मेधाजनन, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, श्वग्रह प्रायश्चित्त, शूलगव, मासिक श्राद्ध, अष्टका, श्रवणाकर्म, आग्रहायणी, उपाकरण, उत्सर्जन।

(vi) **वैखानस**—यह भी तैत्तिरीय शाखीय है। यह सात प्रश्न तथा एक सौ बीस खण्ड में विभक्त है। प्रमुख प्रतिपाद्य—

इसमें १८ संस्कारों का वर्णन है, जिन्हें शरीर की संज्ञा दी गयी है। ये हैं— निषेक-गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, विष्णुबलि, जातकर्म, उत्थान, नामकरण, अन्न प्राशन, प्रवासागमन, पिंडवर्धन, चौडक, उपनयन, पारायण, व्रतबन्धविसर्ग, उपाकर्म, समावर्तन, पाणिग्रहण।

पञ्चमहायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ। इसमें पञ्चमहायज्ञों को भी संस्कार ही कहा गया है।

स्थालीपाक, आग्रयण, अष्टका, पिण्डपितृयज्ञ, मासिश्राद्ध, चैत्री तथा आश्वयुजी—इन पाकयज्ञों के साथ ही हवि! तथा सोमयज्ञ भी वहाँ वर्णित हैं।

(vii) **अग्निवेश्य**—तैत्तिरीयान्तर्गत वाधूल शाखा की उपशाखा अग्निवेश से सम्बद्ध है। इसमें बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ़, कौषीतकि तथा काठक का उल्लेख उपलब्ध है। साथ ही पुष्कर आदि तथा कुशहारीत के मत का भी उल्लेख किया गया है। इसे उक्त ग्रन्थों का पश्चात्कालिक स्वीकार किया जाता है। इसमें उपनयन, विवाह आदि संस्कारों के साथ कूष्माण्ड होम, तटाककल्प, रविकल्प, नारायण बलि, वायसबलि सदृश कर्म वर्णित है। यह पौराणिक विचारधारा से प्रभावित है।

इस गृह्यसूत्र की कतिपय विशेषताएँ भी हैं। तद्यथा—यह पुनरुपनयन (जाति बहिष्कृत व्यक्ति के लिए) का विधान करता है। इसमें गर्भिणी स्त्री की अन्त्येष्टि क्रिया (३/१०/२) से पूर्व शल्यक्रिया द्वारा गर्भ को निकालकर अन्त्येष्टि क्रिया करने का विधान है। इसमें मूर्तिपूजा का भी वर्णन उपलब्ध होता है।

(viii) **वाराह**—मैत्रायणीयों की उपशाखा वाराह से सम्बद्ध है। यह सत्रह खण्डों में विभक्त है। मैत्रायणी संहिता के मन्त्रों की प्रतीक ही दी गयी हैं, किन्तु ऋग्वेदादि अन्य संहिताओं के मन्त्र समग्र रूप में उद्धृत किये गये हैं। मैत्रायणी संहिता की शाखा से सम्बद्ध मानव एवं वाराहगृह्य से इसका पर्याप्तसाम्य है। यद्यपि इसमें मौलिकता का अभाव कहा जाता है, किन्तु इसकी अपनी विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(i) आहिताग्नि को दक्षिणाग्नि में यज्ञ करने का आदेश (१/६) है।

(ii) नवजात शिशु को (इसे बारहवर्ष की आयु तक कभी भी) स्वर्ण घिसकर (२/८) पिलाने का विधान।

(iii) भिन्न जातीय ब्रह्मचारियों के लिए भिन्न-भिन्न आकार के कमण्डलु (५/२८)।

(iv) दन्तोद्गमन संस्कार।

(v) प्रवदन कर्म-विवाह समय बाजे बजाने का वर्णन आदि।

(ix) **काठक**—कृष्णयजुर्वेद की कठ या काठक शाखा से सम्बद्ध है। इसका दूसरा नाम लौगाक्षि गृह्यसूत्र भी हैं। इसमें पांच खण्ड या अध्याय तथा ७३ कण्डिकाएँ हैं।

शाण्डिल्य, माविल एवं कपिष्ठल कठ के विषय में संकेतमात्र उपलब्ध हैं।

शुक्लयजुर्वेदीय गृह्यसूत्र

(i) **पारस्कर**—शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन एवं काण्व दो शाखाएं हैं। दोनों शाखाओं का उपलब्ध एकमात्र गृह्यसूत्र पारस्कर है। एतद्विषयक विवरण अनुपद ही अन्य गृह्यसूत्रों के परिचयानन्तर प्रस्तुत किया जा रहा है।

सामवेदीय गृह्यसूत्र

(i) **गोभिल**—सामवेद की कौथुम शाखा से सम्बद्ध है। इसमें चार प्रपाठक एवं ३९ (९ + १० + १० + १०) खण्ड हैं। इसकी रचना अत्यन्त व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध है। इसमें विनियुक्त मन्त्र, मन्त्रब्राह्मण से संगृहीत हैं।

(ii) **खादिर**—राणायनीय शाखा से सम्बद्ध चार पटल उन्नीस (५ + ५ + ५ + ४ = १९) खण्ड हैं। इसे गोभिल का लघुसंस्करण माना जाता है।

(iii) **द्राह्यायण**—खादिर से पूर्णतः साम्य है।

(iv) **कौथुम**—२९ कण्डिकाओं में वाक्यात्मक निर्देश हैं। इसमें सूत्र नहीं हैं।

(v) **जैमिनीय**—जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध है। पूर्व एवं उत्तर—दो भागों में विभक्त है। दोनों में तैंतीस (२४ + ९) खण्ड हैं।

उक्त के अतिरिक्त गौतम एवं छान्दोग्य के संकेत मात्र उपलब्ध हैं। कर्मप्रदीप, गृह्यसंग्रहपरिशिष्ट, गोभिलगृह्यकर्मप्रकाशिका तथा द्राह्यायण गृह्यपरिशिष्ट भी विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।

अथर्ववेदीय गृह्यसूत्र

(i) **कौशिक**—शौनकीय शाखा से सम्बद्ध एवं एकमात्र उपलब्ध गृह्यसूत्र। गृह्यकर्मों के साथ अभिचार कर्म भी वर्णित हैं। इसमें चौदह अध्याय हैं।

पारस्कर

पारस्कर गृह्यसूत्र उपलब्ध सभी गृह्यसूत्रों में शीर्षस्थानीय स्वीकार किया जाता है। उत्तर भारत में इसी का सर्वाधिक प्रचार है। परम्परानुसार इसके प्रणेता महर्षि पारस्कर हैं। **पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्**—अष्टा० ६/१/१५७ सूत्र पर काशिका एवं महाभाष्य में 'पारस्करो देशः' कहकर पारस्कर को देशवाची प्रतिपादित किया है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, हिन्दी सं० पृ० ६६) ने सिन्ध प्रान्त के 'थर-पारकर' नामक मण्डल को पारस्कर देश माना है। तत्त्वबोधिनी टीकाकार ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने पारस्कर का विग्रह—**पारे करोति** किया है। इससे प्रतीत होता है कि जिस महर्षि ने मनुष्य को भवसागर से पार ले जाने के उपाय-यज्ञ आदि/संस्कार का सविधि प्रतिपादन किया—वह पारस्कर कहलाया।

माध्यन्दिन एवं काण्व दोनों शाखाओं का एक ही श्रौतसूत्र है—कात्यायन प्रोक्त—कात्यायन श्रौतसूत्र। उभयशाखीय गृह्यसूत्र पारस्कर ही सुप्रसिद्ध है। यद्यपि पं० युधिष्ठिर मीमांसक के सम्पादकत्व में सन् १९८३ में राम लाल कपूर ट्रस्ट से

'कात्यायन गृह्यसूत्र' नामक एक अन्य सूत्र ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। अतः कात्यायन एवं पारस्कर के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करना प्रासंगिक ही है।

अभिन्नता—प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेक कात्यायन वर्णित हैं। तद्यथा—ऋक् सर्वानुक्रमणी, वाजसनेय प्रातिशाख्य एवं श्रौतसूत्रकार कात्यायन। वार्तिककार वररुचि कात्यायन। छान्दोगपरिशिष्ट वा कर्मप्रदीप का रचयिता गोभिल पुत्र कात्यायन। आयुर्वेदीय शालाक्य तन्त्र का प्रवक्ता कात्यायन। इनके अतिरिक्त पालि—व्याकरण कच्चायन का प्रणेता बौद्ध आचार्य कात्यायन। उक्त सभी कात्यायन निश्चय ही समकालिक नहीं हैं। पुनः कातीय कल्प का प्रवक्ता कौन-सा कात्यायन है?

भारतीय परम्परानुसार—सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन ही कातीय कल्प का प्रवक्ता है। मैक्डानल प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों का भी यही अभिमत है—द्र०—बृहद्देवता भूमिका पृ० २२, ऋक्० सर्वानुक्रमणी भूमिका पृ० ८; कीथ—तैत्तिरीय संहिता, आंग्लानुवाद भूमिका पृ० १६७।

महर्षि याज्ञवल्क्य, कृष्णद्वैपायन शिष्य वैशम्पायन के शिष्य हैं। याज्ञवल्क्य ही माध्यन्दिन एवं काण्वशाखीय ब्राह्मण शतपथ के प्रवचनकर्त्ता हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार 'कात्यायन सुतं प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम्'—(नागर खण्ड अ० १३० श्लोक ७१) याज्ञवल्क्य पुत्र कात्यायन वेदसूत्र के प्रवक्ता हैं। पुराणकार ने कात्यायनाभिधं च यज्ञविद्याविचक्षणम्—नागर खं १३१/४८) कहकर कात्यायन का यज्ञविद्याविचक्षणत्व प्रतिपादित किया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि याज्ञवल्क्य के मैत्रेयी एवं कात्यायनी ये दो पत्नियाँ थीं। शतपथान्तर्गत यज्ञों के विस्तृत एवं बहुविध विवेचन को देखते हुए याज्ञवल्क्य पुत्र कात्यायन का यज्ञविद्यावैचक्षण्य अस्वाभाविक नहीं है।

वास्तविक प्रश्न यहाँ उत्पन्न होता है कि—श्रौतसूत्रकार के कात्यायन नाम से एक होते हुए भी गृह्यसूत्र पारस्कर के नाम से ही कैसे प्रसिद्ध हुआ? यद्यपि इतस्ततः उसे कात्यायनोक्त भी कहा जाता रहा है। तद्यथा—

(i) पारस्कर के प्रमुख भाष्यकार जयराम द्वारा भाष्यारम्भ में—तत्पादद्वयक-स्पृशा कृतमिदं कातीयगृहस्य सद्भाष्यं.......श्लोक ३ तथा ग्रन्थान्त में—इतिश्री-मत्कातीय गृह्यसूत्रभाष्ये......समाप्तम्—कातीय गृह्यसूत्र कथन करना।

(ii) देवणभट्टोपाध्याय विरचित **स्मृति चन्द्रिका** के वैश्वदेवविधि प्रसंग में—गृह्यकात्यायनोऽपि कहकर—**वैश्वदेवाद........ मतये इति** तथा बलिहरण प्रसंग में पुनः गृह्य **कात्यायनोऽपि** कहकर **मणिके.........निनयेत् यत्क्षेम..........जनम् इति**—पृ० ५७२—५७७ पर्यन्त कात्यायन गृह्यसूत्र नाम से उद्धृत अंश शब्दशः पारस्कर गृह्यसूत्र में २/९/२ तथा २/९/३—१० तक अविकल रूप में प्राप्त है।

(iii) चतुर्वर्गचिन्तामणि में भी—'ते च कात्यायनादि वचनेषु' (श्राद्ध-कल्प-भाग ३, खं० २, पृ० १४५२) कहकर सूत्रकार का स्मरण कात्यायन नाम से किया गया है।

किन्तु ओल्डेनबर्ग (S.B.E.Vol. Intropp. xxxi-xxxii) प्रभृति पाश्चात्य विद्वान् गृह्यसूत्र को पारस्कर की ही कृति मानते हैं। इनके अनुसार—श्रौतसूत्रकार कात्यायन एवं गृह्यसूत्रकार पारस्कर दो पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक सम्पादित कात्यायन गृह्यसूत्र एवं पारस्कर गृह्यसूत्र की तुलना करने पर निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं—

१. दोनों सूत्रग्रन्थों का विभाजन—काण्ड, कण्डिका तथा तदन्तर्गत सूत्रों में है।

२. दोनों सूत्रग्रन्थों में तीन-तीन काण्ड हैं।

३. पारस्कर नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ के प्रथम काण्ड में १९ कण्डिकाएं हैं। कात्यायन में 24 कण्डिकाएं हैं।

(i) प्रथम १२ कण्डिकाएं दोनों में यथावत् हैं। बारहवीं कण्डिका में पक्षादि कर्म वर्णित हैं। तदनन्तर कात्यायन में—**जायाधिगमनम्** एवं **गर्भाधानम्** (क० १३—१४) ये दो कण्डिकाएं अधिक है। पुनः दोनों ग्रन्थों में क्रमशः १३वीं एवं १५वीं कण्डिका का विषय—**गर्भधारणाय नस्तविधिः** है।

(ii) पारस्कर की १६वीं एवं कात्यायन की १८वीं कण्डिकास्थ 'जातकर्म' के पश्चात् कात्यायन में ३कण्डिकाएँ १९--२१ **'यमलजनने प्रायश्चित्तम् मारुत-यमलचरुविधानम्** एवं **मूलविधि:** अधिक हैं।

इस प्रकार कात्यायन प्रथम काण्ड में पारस्कर प्रथम काण्ड की अपेक्षा ५ कण्डिकाएं अधिक हैं, किन्तु विषय की दृष्टि से **जायाधिगमन**—गर्भाधान (१३—१४) दोनों गर्भधारणाय नस्तविधि की पूर्व पीठिका एवं पूरक ही हैं। जातकर्म के अनन्तर आने वाली तीन कण्डिकाओं में से प्रथम दो (१९—२०) जुड़वां सन्तान होने का प्रायश्चित्त तथा तृतीय (२१वीं) में मूलनक्षत्रोत्पन्न जातकों का मूलविधान वर्णित है। विषय की दृष्टि से ये तीनों कण्डिकाएँ जातकर्म की पूरक ही कही जाएंगी।

४. पारस्कर द्वितीय काण्ड में १७ तथा कात्यायन में २० कण्डिकाएं हैं—

(i) पारस्कर में चूडाकर्म (क० १) के अनन्तर उपनयन (क० २—५) वर्णित है। कात्यायन में दोनों के मध्य कर्णवेध का विधान है। संस्कार की दृष्टि से कर्णवेध का उपनयन से पूर्व होना ही सर्वशास्त्र सम्मत है।

(ii) पारस्कर में उपनयन (क० २—५) के अनन्तर समावर्त्तन (क० ६) है। किन्तु कात्यायन में दोनों के मध्य वेदव्रतानि (क० ७) है। वस्तुत: प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से यह कण्डिका उपनयनानन्तर क्रियमाण कर्मों का ही संकेत करती है।

(iii) पारस्कर (क० ९), कात्यायन (क० ११) 'पञ्चमहायज्ञा:' के अनन्तर 'उपाकर्म; के पूर्व कात्यायन में 'धर्मजिज्ञासा' (क० १२) है। धर्मजिज्ञासा नाम होते हुए भी वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह कण्डिका पूर्व वर्णित वैश्वदेव का ही विस्तार मात्र है।

५. पारस्कर तृतीयकाण्ड में १५ तथा कात्यायन में १६ कण्डिकाएं हैं। शलाकर्म (क० ४) के अनन्तर मणिकावधान से पूर्व कात्यायन में ५ वीं कण्डिका के रूप में 'वापीकूपतडागारामादीनां प्रतिष्ठापनम्' है। पारस्कर में यह परिशिष्टान्तर्गत है।

अत: पारस्कर में —वाप्यादिप्रतिष्ठापनम्, शौच, स्नान, श्राद्ध, भोजन ये पांच परिशिष्ट हैं, किन्तु कात्यायन में चार ही परिशिष्ट हैं।

पं० अनन्तराम डोगरा सम्पादित मूलमात्र पारस्कर (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, सन् १९३९ ई०) में उक्त नौ (५ + ३ + १) कण्डिकाएँ कात्यायन के क्रमानुसार ही मुद्रित हैं। परिशिष्ट भी चार हैं डोगरा ने पारस्कर की किस मातृका का उपयोग किया है, इसका संकेत वहाँ उपलब्ध नहीं है। यद्यपि कर्क आदि प्रसिद्ध भाष्यकारों ने उक्त नौ कण्डिकाओं से रहित तथा पांच परिशिष्टों से युक्त ग्रन्थ का ही पारस्कर नाम से व्याख्यान किया है।

उपर्युक्त सामग्री का विश्लेषण करने पर निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि—पारस्कर एवं कात्यायन दोनों सूत्रग्रन्थ एक ही लेखक की रचना हैं। कात्यायन उसकी व्यक्तिवचाक संज्ञा और पारस्कर उसका उपनाम/देशवाची नाम हैं। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने कात्यायन को मातृसम्बन्धी तथा पारस्कर को व्यावहारिक नाम स्वीकार किया है। कात्यायन को भले ही कौशिक गौत्रीय स्वीकार करें और चाहे मातृसम्बन्धी नाम से याज्ञवल्क्यपुत्र, किन्तु यह उसकी व्यक्तिवाचक संज्ञा है।

काल प्रवाह के कारण भले ही पारस्कर देश का निर्णय नहीं हुआ पुनरपि भाष्यकार द्वारा स्वीकृत पारस्कर को देशवाची स्वीकार करना युक्तियुक्त है।

यहाँ यह सम्भव है कि सूत्रकार का देशवाची नाम पारस्कर प्रसिद्ध होने के कारण किसी मातृकाकार (प्रतिलिपि कर्त्ता के उसी जनपद का होने पर यह सम्भावना और भी प्रबल हो जाती है।) ने मुख्य नाम का उल्लेख न करके मात्र देशवाची नाम का प्रयोग मुख्य नाम की तरह किया हो। ऐसा आज भी देखने में आता है कि—**बादल, तोहडा, तलवण्डी, बरनाला, लोंगोवाल** आदि ग्राम (देश) वाची नाम (उपनाम) मुख्य नाम के सदृश व्यहृत होते हैं। यद्यपि इनके मुख्य नाम—प्रकाश सिंह, गुरचरणसिंह, जगदेव सिंह, सुरजीत सिंह, हरचन्द सिंह

हैं। भविष्य में उस हस्तलेख से जितनी भी प्रतियाँ तैयार हुईं, उन सभी में वही नाम चलता रहा, तथा मुख्य नाम विस्मृत हो गया।

प्राचीन साहित्य में एक ही ग्रन्थ के लघु व वृद्ध/दीर्घ दो भिन्न-भिन्न संस्करणों की परम्परा उपलब्ध है। तद्यथा—

(i) **लघुहारीत** एवं **वृद्धहारीत** स्मृति, (ii) **पराशर—बृहत् पराशर** स्मृति

(iii) **गौतम-वृद्धगौतम** स्मृति, (iv) **पाणिनीय** शिक्षा के **लघु** एवं **वृद्ध** पाठ

(v) **निरुक्त** के **लघुतर** एवं **दीर्घतर** पाठ आदि-आदि।

अत: कहा जा सकता है कि—गृह्यसूत्र का पारस्कर-लघुतर एवं कात्यायन दीर्घतर वा वृद्ध संस्करण है। दोनों का प्रवक्ता याज्ञवल्क्यपुत्र कात्यायन/पारस्कर अभिन्न है।

गृह्यसूत्र पर श्रौतसूत्र का प्रभाव तथा श्रौत एवं गृह्य के अनेक सूत्रों के साम्य आदि पर विचार विस्तारभय के कारण नहीं किया जा रहा है।

रचनाकाल

गृह्यसूत्र के रचनाकाल पर विचार करते समय सर्वप्रथम प्रश्न उपस्थित होता है कि—कात्यायन अथवा पारस्कर का समय क्या है? ऊपर कात्यायन—पारस्कर की अभिन्नता प्रतिपादित की गयी है। अत: कात्यायन का समय ही प्रस्तुत गृह्यसूत्र का रचनाकाल कहा जा सका है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने (कृष्णद्वैपायन शिष्य वैशम्पायन—शिष्य—याज्ञवल्क्य के पुत्र) कात्यायन का समय विक्रम संवत् से लगभग ३००० वर्ष पूर्व माना है।

प्रो० मैक्समूलर ने ६०० ई० पू० से २०० ई० पू० के मध्यकाल को सूत्र युग प्रतिपादित किया है। इसी मध्य सम्पूर्ण सूत्र वाङ्मय (कल्पसूत्र) लिखा गया।

म० म० काणे ने (धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १४) मैक्समूलर का अनुसरण करते हुए पारस्कर का रचनाकाल ६०० ई० पू० से ३०० ई० पू० के मध्य स्वीकार किया है।

प्रो० कुन्दनलाल शर्मा (कल्पसूत्र पृ० ३०८) ने पारस्कर का काल ५५०–४५० ई० पू० के मध्य स्वीकार किया है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि पाश्चात्य एवं तदनुगामी विद्वान् कात्यायन एवं पारस्कर को पृथक्-पृथक् मानकर काल निर्धारण करते हैं।

भाष्यकार

पारस्कर पर पांच संस्कृत भाष्य प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त भर्तृयज्ञ, वासुदेव, गर्ग एवं रेणुदीक्षित का उल्लेख भाष्यों में उपलब्ध है। मेधातिथि (नवम शती मध्य) द्वारा 'व्याख्यानान्तराणि भर्तृयज्ञेनैव सम्यक्कृतानीति तत एवावगन्तव्यानि' —मनु० ८.३ उल्लेख किए जाने से स्पष्ट है कि—भर्तृयज्ञ अष्टम शती या इससे पूर्व हुए हैं। उपलब्ध प्रमुख भाष्यकार निम्न हैं—

१. कर्क—शुक्ल यजुर्वेद के श्रौत एवं गृह्य दोनों सूत्रों पर इनका भाष्य है। उपलब्ध भाष्यकारों में यह सर्वाधिक प्राचीन है। हेमाद्रि (१२५० ई०) ने श्राद्ध, निर्णय में कर्क के मत का खण्डन किया है। त्रिकाण्ड मण्डन (११५० ई०) ने आपस्तम्बध्वनितार्थकारिका १/४१ में कर्क का उल्लेख किया है। अत: कर्क का काल ११वीं शती का अन्त अथवा १२वीं शती का प्रारम्भ हो सकता है। तृतीय काण्ड की अन्तिम दो (१४–१५) कण्डिकाओं का कर्क भाष्य नहीं है। तेरहवीं कण्डिका के अन्त में—"इति श्री कर्कोपध्याय कृतौ गृह्यसूत्रभाष्ये तृतीय काण्डविवरणं सम्पूर्णम्" लेख उपलब्ध है। कर्क व्याख्या संक्षिप्त किन्तु स्पष्टता के कारण विख्यात है।

२. जयराम—१२००–१४०० ई० के मध्य। मेवावासी दामोदर भारद्वाज के पौत्र तथा बलभद्र के पुत्र थे। इनके भाष्य का नाम 'सज्जन बल्लभ' है। जयराम ने सूत्र अथवा पद्धति की व्याख्या की अपेक्षा मन्त्र व्याख्यान पर विशेष बल दिया है।

३. हरिहर—"प्रयोग पद्धतिं कुर्वे वासुदेवादि संमिताम्" कहते हुए स्वयं हरिहर ने अपनी व्याख्या को प्रयोग पद्धति कहा है। इसमें कर्मकाण्ड की विशद व्याख्या है। हरिहर ने मनु, याज्ञवल्क्य, यम, अंगिरा, सुमन्तु, लौगाक्षि आदि

स्मृतिकारों के मत उद्धृत किए हैं। हरिहर ने विज्ञानेश्वर (११५० ई० मिताक्षराकार) का मत भी उद्धृत किया है। किन्तु हेमाद्रि द्वारा हरिहर का उल्लेख किए जाने के आधार पर इनका काल हेमाद्रि से पूर्व और विज्ञानेश्वर के पश्चात् १२०० ई० के आस-पास माना जाता है।

४. **गदाधर**—इनके पिता का नाम वामन दीक्षित था। गदाधर भाष्य में पारस्कर के अनुपलब्ध भाष्यकारों के उद्धरण नामोल्लेखपूर्वक उपलब्ध हैं। इनके भाष्य में मनु, हारीत, याज्ञवल्क्य, पाराशर, वृद्धशातातप तथा हेमाद्रि आदि का भी उल्लेख है। इनके भाष्य पर भर्तृयज्ञ एवं जयराम का प्रभाव स्पष्ट है। साथ ही ज्योतिष सम्बन्धी विषयों की विशद व्याख्या इनकी विशेषता है। गदाधर भाष्य केवल प्रथम दो काण्डों पर ही उपलब्ध है। इनका समय १४वीं शती है।

५. **विश्वनाथ**—गृह्यसूत्र प्रकाशिका टीका भी पारस्कर की विशद व्याख्या है। ग्रन्थान्त में दी गयी कारिका से स्पष्ट है कि तृतीय काण्ड की अन्तिम पांच खण्डों की व्याख्या इनके पितृव्य के प्रपौत्र लक्ष्मीधर ने की है। लक्ष्मीधर का काल १६३५ ई० है। अत: विश्वनाथ का समय १६वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

पं० भगवद्दत्त ने (वैदिक वाङ्मय का इतिहास—ब्राह्मण भाग, पृ० २२७) पारस्कर के भाष्यकर्त्ता के रूप में 'गुणविष्णु' का उल्लेख किया है। यद्यपि पारस्कर के उक्त पाँच भाष्यकारों ने कहीं गुणविष्णु का स्मरण किया हो—ऐसा हमारी दृष्टि में नहीं आया है।

संस्कृत भाष्यों के अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने हिन्दी में भी व्याख्यान किया है। तद्यथा—

(i) राजाराम कृत एवं लाहौर से १९०६ में प्रकाशित भाष्य का उल्लेख दृष्टिगोचर हुआ, किन्तु यह भाष्य ग्रन्थ के किस अंश अथवा समग्र पर है यह ज्ञात नहीं हो सका है।

(ii) आवरण पृष्ठ से रहित एक खण्डित प्रति दृष्टिगत हुई। इसमें प्रथम दो काण्ड का हिन्दी अनुवाद है। मन्त्र व्याख्यान के विषय में 'संस्कार चन्द्रिका' के उल्लेख से प्रतीत होता है। कि—स्यात् यह पं० आत्माराम अमृतसरी कृत हो।

(iii) डॉ० सत्यव्रत राजेश—कृत प्रथम काण्ड, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

उक्त आंशिक अनुवादों के अतिरिक्त डॉ० हरिदत्त शास्त्री एवं डॉ० ओम्प्रकाश पाण्डेय ने भी पारस्कर का हिन्दी व्याख्यान किया है।

वर्ण्य विषय

पारस्कर गृह्यसूत्र का फलक बहुत व्यापक है। इसमें जीवन से सम्बद्ध संस्कार, नित्यकर्त्तव्य-दैनन्दिन होम, पूर्णिमा आदि पर्वों पर सम्पाद्यमान कर्म के साथ ही भौतिक सुख के साधन शाला-निर्माण (शालाकर्म) सविस्तार वर्णित हैं। उतूलपरिमेह एवं श्रवणा कर्म आदि आभिचारिक कृत्य भी यहाँ उपलब्ध हैं। काण्डानुसार वर्ण्य विषय निम्न प्रकार हैं—

प्रथम काण्ड में होम के साधारण धर्म, आवसथ्य-शालाग्नि की आधानविधि, अर्घ, विवाह, औपासन होम, वधू के प्रथम बार पतिगृह गमन समय के प्रायश्चित्त, चतुर्थी कर्म, पक्षादि कर्म, पर्वनिर्णय, आवृत्तियोग्य कर्म, गर्भधारणार्थ नस्तविधि, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, सोष्यन्तीकर्म, जातकर्म, रक्षाविधि, नामकरण, निष्क्रमण, सूर्याविक्षण, प्रोष्यागत कर्म तथा अन्नप्राशन।

द्वितीय काण्ड में चूड़ाकरण, केशान्त, उपनयन, समिदाधान, भिक्षाचरण आदि ब्रह्मचारी के व्रत, समावर्तन, उपनयन की अन्तिम सीमा, पतितसावित्रीक, स्नातक व्रत, पञ्च महायज्ञविधि, उपाकर्म विधि, अनध्याय, उत्सर्गोत्तर जप, उत्सर्ग विधि, लाङ्गलयोजन, श्रवणाकर्म, इन्द्रयज्ञ, आश्वयुजी कर्म तथा सीतायज्ञ!

तृतीय काण्ड में नवान्नप्राशन आग्रहायणी कर्म, अष्टका, शालाकर्म, मणिकावधान, शिरोरोगभेषज, उतूलपरिमेह, शूलगव, वृषोत्सर्ग, रथारोहण विधि, हस्त्यादिरोहण विधि, वन, पर्वत शमशान, आदि के अभिमन्त्रण की विधि के साथ अन्य भी अभिमन्त्रण विधियां वर्णित हैं।

समाज में जिन्हें संस्कार कहा जाता है, उन्हें गृह्यसूत्रों में गृह्ययज्ञ कहा गया है। गृह्यसूत्र वर्णित यज्ञों को पाकयज्ञ भी कहा जाता है। इनका वर्गीकरण—(i) हुत,

(ii) अहुत, (iii) प्रहुत तथा (iv) प्राशित के रूप में भी हुआ है। बौधायन आदि गृह्यसूत्र में विवाह से सीमन्तोन्नयन पर्यन्त हुत के अन्तर्गत परिगणित हैं। जातकर्म से चूडाकर्म पर्यन्त प्रहुत हैं। उपनयन एवं समावर्तन अहुत के अन्तर्गत हैं।

पारस्कर में केवल निम्न १३ संस्कार निरूपित हैं—१. विवाह, २. गर्भाधान, ३. पुंसवन, ४. सीमन्तोन्नयन, ५. जातकर्म, ६. नामकरण, ७. निष्क्रमण, ८. अन्नप्राशन, ९. चूड़ाकरण, १०. उपनयन, ११. केशान्त, १२. समावर्तन, १३. अन्त्येष्टि।

आश्वलायन में ११ तथा वैखानस में १८ संस्कार वर्णित हैं। पारस्कर की संख्या बौधायन से साम्य रखती है।

गृह्यसूत्र के अन्त में वाप्यादि प्रतिष्ठा से भोजनान्त पांच परिशिष्ट भी प्राप्त होते हैं।

पारस्करगृह्य एवं कात्यायन श्रौतसूत्र

पारस्कर गृह्यसूत्र के कतिपय सूत्रों का कात्यायन श्रौत के सूत्रों से अक्षरशः साम्य है। तद्यथा—

(i) पारस्कर गृह्यसूत्र के चूडाकरण संस्कार में केशवपन से पूर्व सिंही के कांटे को बालों में लगाने का विधान है। कात्यायन श्रौतसूत्र के चातुर्मास्य यज्ञविधान में केशवपन प्रसङ्ग है। वहाँ केशवपन से पूर्व सिंही के कांटे को लगाने का विधान है। दोनों ग्रन्थों का सूत्र समान है—'**त्र्येण्या शलल्या विनीय त्रीणि कुशतरुणान्यन्तर्दधात्योषध इति**'—पा०गृ० २.१.१०; का०श्रौ० ५.२.१५

(ii) पारस्कर गृह्य (२.१५) में इन्द्रयज्ञ विहित है। इसमें द्रव्यत्यागार्थ-'**शुक्रज्योतिरिति प्रतिमन्त्रम्**'-५ से द्रव्यत्याग तथा सूत्र ९ '**इन्द्रं दैवीरिति जपति**'-इन्द्रं दैवी० के जप का विधान है। कात्यायन श्रौत के चयन प्रसङ्ग (१८.४) में यह दोनों (२३, २५) सूत्र पारस्कर के सदृश द्रव्यत्याग एवं जप में विहित हैं।

(iii) पारस्कर के अवकीर्णि प्रायश्चित्त(३.१२) में पठित-'**अप्स्ववदानहोमः**' (४) तथा '**भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम्**' (५) दोनों सूत्र कात्यायन श्रौत के

अवकीर्णि प्रायश्चित्त (१.१.१६, १५) में ज्यो के त्यों उपलब्ध हैं। यद्यपि कात्यायन श्रौत का यह प्रसङ्ग अनवसर-(परिभाषा प्रकरण के मध्य में होने से प्रक्षिप्त मानना चाहिए) है। इसे प्रायश्चित्त प्रकरणान्तर्गत होना चाहिए था।

एतदतिरिक्त पारस्कर के कुछ सूत्र कात्यायन श्रौत की ओर सङ्केत करते करते प्रतीत होते हैं। तद्यथा—

(iv) पारस्कर (१.१८.१) प्रोष्यागत कर्म कात्यायन श्रौत (४.१२.२०-२२) के उपस्थान निरुपण की ओर संङ्केत करता है।

(v) पारस्कर (२.१३) के लाङ्गलयोजन प्रसङ्ग में कर्षण अथवा हल का स्पर्श करने में विनियुक्त, शुनां सुफाला इति कृषेत् फालं वाऽऽलभेत' (४) कात्यायन श्रौत (१७.२) के चयन प्रकरण में यज्ञ स्थल के पास भूमिकर्षण अथवा 'आत्मनि कृषत्यनुपरिश्रिच्छुनं सुफाला इति प्रत्यृचम्'-११ आत्मकर्षण में विनियुक्त है।

इसी प्रकार पारस्कर प्रोक्त शाखापशुविधि (३.११.२), कात्यायन श्रौत के पशुबन्ध (६.३.१३) की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। वस्तुतः एक ही शाखा के प्रतिपादक ग्रन्थों में इस प्रकार का साम्य एक साधारण बात है। स्वशाखा के अतिरिक्त अन्य शाखीय ग्रन्थों में भी इस प्रकार का साम्य दृष्टिगोचर होता है।

पारस्कर की समाजशास्त्रीय दृष्टि

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है- अरस्तू का यह कथन सर्वविद्वज्जनानुमोदित है, किन्तु मनुष्य सामाजिकता को समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से अधिगत करता है। अमेरिकी समाजशास्त्री आगबर्न (Ogburn) ने मानवीकरण की प्रक्रिया को समाजीकरण कहा है। यह कथन उचित ही है, क्योंकि इस प्रक्रिया के अभाव में मनुष्यमात्र जैविक प्राणी से अधिक कुछ भी नहीं होता हैं। भेडिये की मांद अथवा मुर्गी के बाडे में (फिजी की घटना) मिलने वाले बच्चे इसके पुष्ट प्रमाण हैं।

पारस्कर गृह्यसूत्र का प्रयोजन मानव को संस्कृत/संस्कारवान् बनाना है। संस्कारवान् व्यक्ति ही संस्कृति का वाहक (एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को

हस्तान्तरित करने में सक्षम) होता है। आधुनिक समाजशास्त्रियों (Ogburn-`A Handbook of Sociology') द्वारा मूर्त एवं अमूर्त (प्रसिद्ध मानवशास्त्री क्रोबर इसे Ethos and Idos Aspect of Culture अर्थात् ईथॉस-अमूर्त तथा ईडॉस-संमूर्तता कहते हैं।) इस द्विविध पक्ष युक्त संस्कृति के अध्ययन के लिए पारस्कर का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि स्थूल दृष्टि से पारस्कर का विषय संस्कारों एवं तत्सम्बद्ध गृह्य कर्मों की विधि का वर्णन है, किन्तु प्रत्येक विधि के अङ्गभूत रूप में पढे जाने वाले मन्त्र अथवा की जाने वाली क्रियाएँ जहाँ समाजीकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, वहीं संस्कृति के निर्माण में भी उसकी महत्ता अक्षुण्ण है। यहाँ स्थालीपुलाक न्याय से सङ्केत मात्र किया जा रहा है।

पारस्कर के वर्ण्य विषय समाजशास्त्रीय दृष्टि से निम्न प्रकार विभक्त किये जा सकते हैं—

(i) सामाजिक शिष्टाचार

(ii) परिवार संस्था-समृद्धिकर्म

(iii) स्वास्थ्य/चिकित्सा

(iv) शिक्षण सम्बन्धी विधि

(v) अपराध परिमार्जन

(vi) पर्यावरण शोधक कर्म आदि।

(i) सामाजिक शिष्टचार के निदर्शक रूप में अर्घविधि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि आजकल इसका उद्देश्य संकुचित होकर मात्र विवाह संस्कार में वर को मधुपर्क प्रदान करना मात्र रह गया है, किन्तु पारस्कर के निम्न 'षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति' १/३/१ वचन तथा सम्पूर्ण कण्डिका में विनियुक्त मन्त्र एवं विधियाँ शिष्टाचार की निदर्शक हैं। इसी प्रकार 'सभाप्रवेशनम्' ३/१३ भी विवेच्य है।

(ii) समाज की आधारभूत इकाई परिवार संस्था की गतिशीलता तथा समृद्धि विषयक संकेत-'आवसथ्याधानविधिः' १/२; विवाहविधिः १/४-८ परिवार के आधार स्तम्भ पति-पत्नी के पारस्परिक व्यवहार से लेकर सप्तपदी में विनियुक्त

मन्त्रों के माध्यम से विवाह के प्रयोजन-अन्न, बल, धन-धान्य, सन्तति आदि की प्राप्ति के साथ मैत्री भाव का सन्देश, निहित है।

परिवार के निवास की दृष्टि से भवन अपरिहार्य है। तत्सम्बन्धी संकेत शालाकर्म, ३/४ में उपलब्ध हैं।

(iii) स्वास्थ्य की दृष्टि से 'अर्घ्य पदार्थ' १/२ 'शीर्षरोगभेषजम्' ३/६ तथा 'अन्न-प्राशनम्' १/१९ महत्त्वपूर्ण हैं। सोष्यन्तीकर्म १/१६/१-२ तथा 'मेधाजनना-युष्ये' भी स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से गम्भीर विवेचन की अपेक्षा रखते हैं।

(iv) मनुष्य को जैविक प्राणी (Biological Being) से सामाजिक प्राणी (Social Being) बनाने में शिक्षा की भूमिका सर्वोपरि है। पारस्कर के 'उपनयनम्' २/२-३.... 'समावर्तनम्' २/६ के अन्तर्गत शिक्षण सम्बन्धी उल्लेख अतिमहत्त्वपूर्ण हैं। आचार्य द्वारा शिष्य के हृदयस्पर्शपूर्वक' 'मम व्रते---मह्यमिति' तथा शिष्य द्वारा समिदाधान करते हुए-'अग्नये समिधमहार्षं----भूयासं स्वाहेति' आदि मन्त्र ज्ञानपिपासा को जागृत करने के साथ-साथ संस्कृति के हस्तान्तरण विषय में प्रबल प्रमाण हैं।

इसी प्रकार अपराध परिमार्जन रूप में अवकीर्णि प्रायश्चित्त तथा उभयविध पर्यावरण-प्राकृतिक एवं सामाजिक के शोधक कर्म के रूप में पञ्चमहायज्ञ विस्तारपूर्वक विवेचन की अपेक्षा रखते हैं। भूमिका में संकेत मात्र ही सम्भव है।

इस प्रकार प्राचीन समाजशास्त्रीय सन्दर्भ (Sociological Perspective) की दृष्टि से पारस्कर का अध्ययन अपेक्षित ही नहीं, अपितु अपरिहार्य भी है।

प्रस्तुत व्याख्या का वैशिष्ट्य-

पारस्कर की महत्ता एवं उपयोगिता इस पर उपलब्ध अनेक संस्कृत एवं हिन्दी व्याख्याओं से स्पष्ट है। पुनः यह नवीन व्याख्या क्यों की गयी? इस विषय में इतना निवेदन उचित होगा कि गृह्यसूत्रों के ऋषिकृत होते हुए भी यह ग्रन्थ उस काल की रचना हैं, जब वैदिक मन्तव्य अनेकशः पौराणिकता से आच्छादित हो चुके थे। साथ ही इन सूत्र ग्रन्थों में अनेक प्रक्षेप भी हुए हैं। वर्तमान स्वरूप में उपलब्ध स्यात् कोई गृह्यसूत्र हो, जिसे प्रक्षेप से मुक्त कहा जा सके। पारस्कर भी इसका अपवाद नहीं है। अपनी सीमाओं को जानते हुए भी विनम्रतापूर्वक यह कहने

में संकोच नहीं है कि—यदि एक भाष्यकार ने भूल की है, तब अनुवर्ती भाष्यकार उसका अनुवर्तन ही करते रहे हैं। इस विषय में कतिपय बिन्दु विवेचन की अपेक्षा रखते हैं—तद्यथा—

१. भाष्यकारों से भेद-

(i) गृह्यसूत्र की प्रथम कण्डिका में होम के साधारण धर्मों का कथन किया गया है। अन्तिम सूत्र है—'एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः' १.१.५।

प्रस्तुत सूत्र को सबसे प्राचीन भाष्यकार कर्क ने—'एष विधिरेव न मन्त्राः समाम्नायाभावात्' इस रूप में व्याख्यात किया है। जयराम, हरिहर एवं गदाधर भी कर्क का अनुसरण करते-हैं।

प्रथमसूत्र परिभाषा एवं अधिकार तथा द्वितीय से चतुर्थ सूत्र तक विधिभाग पर निरपेक्ष दृष्टि से विचार करने पर भाष्यकारों की खींचातानी स्पष्ट दिखाई देती है। ग्रन्थकार का तात्पर्य—परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, उद्धरण, अभ्युक्षण इन पाँच कर्मों को अग्निस्थापन से पूर्व अवश्य किये जाने पर बल देना है, जबकि भाष्यकारों ने अनावश्यक रूप से एव को विधि के साथ अन्वित (विधिरेव) कर 'मन्त्र नहीं होंगे'—इसे महत्त्वपूर्ण बना दिया है। जबकि अग्नि स्थापन से पूर्व परिसमूहन आदि पाँच कर्म अपेक्षित होने से महत्त्वपूर्ण होने चाहिएं, न कि यह विवाद कि-'न मन्त्राः'।

(ii) नालच्छेदन—सोष्यन्ती कर्म (१.१६) में मेधाजनन और आयुष्य ये दो अवान्तर कर्म होते हैं। सूत्र है—"जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति"-३।

कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर और विश्वनाथ—यह पाँचों भाष्यकार तथा इनके अनुकर्त्ता हिन्दी भाष्यकार (द्र०-डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय पा०गृ० सरला हिन्दी व्याख्या-पृ० ८०) भी **'अच्छिन्ने नाले'** अर्थ करते हैं। अर्थात् ये दोनों कर्म नाल छेदन से पूर्व कर्त्तव्य हैं। इस अर्थ का मूल-**'कुमारस्याच्छिन्नायाम्'** का पदच्छेद **'कुमारस्य अच्छिन्नायाम्'** किया जाना है। इस स्थिति में नवजात शिशु

जन्म के समय लगी अपवित्र जरायु तथा तदन्तर्गत (दूषित) जलीयांश से युक्त होगा और उसे मधु-घृत/घृत का प्राशन कराकर उसके कान में मन्त्रजप करना होगा। चिकित्सकीय दृष्टि से भी जन्म के पश्चात् शिशु के शरीर को गीले कपड़े से साफ कर, उसके मुख की सफाई किया जाना अनिवार्य होता है। इससे पूर्व कोई खाद्य/पेय पदार्थ देना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। यदि सूत्र का पदच्छेद **'कुमारस्य आच्छिन्नायाम्** किया जाये, तब नवजात शिशु के शरीर से जरायु आदि को अच्छी प्रकार साफ कर नाल छेदन करने के अनन्तर मधु-घृत प्राशन कर मन्त्र जप कर्त्तव्य कर्म होगा।

प्रकृतव्याख्या में सभी भाष्यकारों से विनम्र असहमति रखते हुए हमने सूत्र का पदच्छेद **'कुमारस्य आच्छिन्नायाम्'** करते हुए व्याख्या की है।

(iii) न कल्पमात्रे—समावर्तन (२.६) प्रकरण में छठा सूत्र है—'षडङ्गमेके' अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष सहित वेदाध्ययन कर स्नान (प्रथम सूत्र से 'समाप्य स्नायात्' की अनुवृत्ति आ रही है।) करना (समावर्तन होना) चाहिए। अगला सूत्र है—'न कल्पमात्रे' कर्क आदि भाष्यकार 'कल्पशब्देन च ग्रन्थमात्रमभिधीयते' कहकर कल्प पद से मात्र ग्रन्थ (अर्थ प्रयोग रहित) ग्रहण करते हैं। छठे सूत्र में षडङ्ग (जिनमें कल्प भी एक है) की चर्चा है। साथ ही प्रकृत ग्रन्थ कल्प का भाग है। अतः सूत्रकार का अभिप्राय है कि-केवल कल्प साहित्य (श्रौत, गृह्य, धर्म एवं शुल्व) को पढकर ही वेदाध्ययन की समाप्ति नहीं करनी चाहिए। अपितु समग्र वैदिक वाङ्मय (सूत्र ५-६) का अध्ययन करके ही समावर्तन होना चाहिए। और यदि कोई व्यक्ति आधुनिक पुरोहितों की तरह केवल कर्मकाण्डीय क्रियाओं को सम्पन्न कराने लगे और वह ब्राह्मण ग्रन्थ, न्यायमीमांसा आदि के ज्ञान से शून्य हो, तब वह इनके गूढार्थ से अपरिचित रहेगा ही। ऐसी स्थिति से बचने के लिए सूत्रकार ने 'न कल्पमात्रे' कहा है। अतः कल्प का तात्पर्य कल्प साहित्य किया जाना उचित है।

(iv) वर्षत्यप्रावृतः—स्नातक के नियमों का वर्णन (२.७) करते हुए—स्नातक वर्षा होने पर किस प्रकार चले? इसका निर्देशक सूत्र है—

वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत् .... सूत्रार्थ है—'देवे वर्षति अप्रावृतः अनाच्छादितः व्रजेत् गच्छेत्०.......हरिहरः तथा—'जब वर्षा हो रही हो तो बिना छाता लगाये ही चले, मन्त्र पढे—'अयं मे वज्रः........।''—डॉ० ओम् प्रकाश पाण्डेय-पृ० १३४।

उक्त या उक्त सदृश अर्थ '**वर्षत्यप्रावृतः**'=**वर्षति अप्रावृतः**' इस शब्दानुरोध पर आधृत हैं, किन्तु इस कण्डिका (स्नातकयमाः) से पूर्व छठी कण्डिका है—समावर्तनम्। इसमें वेदाध्ययन समाप्त कर स्नान करने (वह विशिष्ट स्नान जिसके पश्चात् विद्यार्थी स्नातक कहलाता है) अर्थात् समावर्तन संस्कार का वर्णन किया गया है। कण्डिका में ३२ सूत्र हैं। (यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि विद्यार्थी के लिए जूता, छाता, दर्पण, गन्ध आदि निषिद्ध हैं। स्नातक होने पर यह सब अनुमन्य होते हैं।) २९वां सूत्र है—''**छत्रं प्रतिगृह्णाति**। बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मा मन्तर्धेहि तेजसो यशसो मान्तर्धेहीति।'' अर्थात् 'बृहस्पतेश्छदिरसि०' मन्त्रपूर्वक छाता ग्रहण करें। एतदनन्तर ३० वें सूत्र में जूता, इकतीसवें सूत्र में बेंत तथा ३२ वें सूत्र में नये वस्त्र, छाता और जूता (जब भी नये धारण करे) धारण करते समय मन्त्र पाठ का आदेश है।

यहाँ यही प्रश्न है कि यदि स्नातक को वर्षा होने पर बिना छाता ही चलना है, तब स्नातक होते समय छाता दिया ही क्यों जाता है? छाते की उपयोगिता ही धूप और वर्षा के समय है। भाष्यकार जयराम ने ग्रीष्म ऋतु की वर्षा के समय छाते के निषेध की बात कही है।

प्रकृत सूत्र पर थोडा सा विचार करें, तब स्पष्ट होता है कि सूत्र-'**वर्षत्याप्रावृतो व्रजेत्०**' होना चाहिए। तब पूर्व कण्डिका के साथ इसकी सङ्गति लगती है। साथ ही किसी मन्तव्य के साथ विरोध भी नहीं होता।

(v) गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुतेः—पञ्चमहायज्ञ (२.९) के अन्तर्गत अतिथियज्ञ में घर के बालक एवं वृद्धों को प्रथम भोजन कराकर गृहपति और पत्नी भोजन करें। (१३-१४)। तदनु सूत्र है—''पूर्वो वा गृहपतिः। तस्मादु

स्वादिष्टं गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुते।'' १५-यह सूत्र अस्पष्ट है। इसीलिए इसके अर्थ में खींचातानी हुई है।

अथर्ववेद के नवमकाण्ड के छठे सूक्त में छः पर्याय हैं। इसमें अतिथि यज्ञ की देव यज्ञ से तुलना/साम्य वर्णित है। इसके तृतीय पर्याय में अतिथि से पूर्व भोजन करने पर 'इष्टापूर्त, प्रजा, कीर्ति, श्री सभी के नष्ट होने का वर्णन है। सप्तम मन्त्र है—''एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्।।'' अष्टम मन्त्र—''अशितावत्यतिथावश्नीयाद्यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ।''

यहाँ स्पष्टतः अतिथि से पूर्व भोजन का निषेध कर उसके पश्चात् भोजन का विधान है। अतः सूत्र होना चाहिए—''**गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्यो नाश्नीयादिति श्रुतेः**''।

२. विवेच्य बिन्दु

प्रक्षेप—धर्मशास्त्रीय गन्थ मनु स्मृति आदि की तरह गृह्यसूत्र भी प्रक्षेप से नहीं बच सके हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र भी इसका अपवाद नहीं है। तद्यथा—

(i) मधुपर्क—यह पूजा/सत्कार की विधि है। इसका द्रव्य दधि-मधु-घृत है.......''मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं कांस्ये कांस्येन'' (पा०गृ०१.३.५)। आश्वलायन ने दधि-मधु अथवा मधु के अभाव में घृत-'दधनि मध्वानीय सर्पिर्वा मध्वलाभे (१.२१.५) को द्रव्यत्वेन स्वीकार किया है। हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र में मधुपर्क के त्रिवृतत्व के साथ ही पांक्तत्व का भी वर्णन है—'कुर्वन्त्यस्मैत्रिवृतं पांक्तं वा दधिमधुघृतमिति त्रिवृत। दधिमधुघृतमापः सक्तव इति पांक्तः—(१.१२.१०-१२)। कर्म का नाम भी मधुपर्क है। २५वें सूत्र में मधुपर्क भक्षण के पश्चात् आचमन तथा अङ्गस्पर्श का विधान है। इस प्रकार १.३.२५ तक यह विधि सम्पन्न हो जाती है, किन्तु इसके तुरन्त पश्चात् सूत्र २६ से २८ तक गौ के आलभन, उत्सर्जन का वर्णन करके सूत्र २९ में—''न त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्'' अमांस अर्घ (मधुपर्क) का निषेध कर सूत्र ३० में यज्ञ एवं विवाह में आलभन का विधान किया है।

यहाँ विवेच्य यही है कि कर्म का नाम मधुपर्क तथा पदार्थ दधिमधुघृत (गौ से प्राप्त द्रव्य) हैं। जिन मन्त्रों (यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यम् आदि) का विनियोग हुआ है वह भी मधु-औषध आदि के वर्णन से युक्त हैं, कही भी मांस शब्द तक प्रयुक्त नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में कर्म सम्पन्नता सूचक आचमन तथा अङ्गस्पर्श हो जाने के बाद आलभन प्रसङ्ग खड़ाकर (२७) दबी जुबान से उत्सर्जन की बात (अथ **यद्युत्सिसृक्षेन्मम** चामुष्य च पाप्मा हत **ओमुत्सृजत** तृणान्यत्त्विति ब्रूयात्-२८) करते हुए (**न त्वेवामाꣳसोऽर्घः स्यात्,** अधियज्ञमधिविवाहं **कुरुतेत्येव** ब्रूयात्-२९-३०) तत्क्षण ही मांस रहित को अर्घ स्वीकार न करना-किस मानसिकता के द्योतक हैं? यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

समग्र प्रसङ्ग पर पूर्वापर दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट दिखाई देता है कि तृतीय कण्डिका का विषय अर्घ है। सूत्रकार ने प्रसङ्ग प्राप्त सर्वप्रथम अर्घार्ह पुरुषों का वर्णन कर-आसन, पाद प्रक्षालनार्थ जल, आचमन का वर्णन किया है। वस्तुतः यह सब अर्घ का प्रथम भाग है। द्वितीय एवं मुख्यभाग मधुपर्क है। मधुपर्क के पदार्थ-दधि, मधु, घृत नाम्ना वर्णित हैं। तीनों पदार्थ स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्युत्तम हैं। इनका मूल गौ है। ये पदार्थ गौ की रक्षा करके ही प्राप्त किए जा सकते हैं, उसे मारकर नहीं। अतः उक्त २६ से ३० तक पाँचों सूत्र अप्रासङ्गिक होने से प्रक्षिप्त हैं।

(ii) अन्नप्राशन—अन्नप्राशन संस्कार में—'षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम्'—१.१९.१ इस अधिकार सूत्र के अनन्तर सूत्र २ से ६ तक विधि वर्णित है। तदनु सूत्र ७ से १२ तक छः सूत्रों में विभिन्न पक्षियों के मांस का वर्णन है। (कौषीतकि गृह्यसूत्र में तो 'षष्ठेमास्यन्नप्राशनम्' १.१९.१ इस अधिकार सूत्र के अनन्तर तीन सूत्र २-४ मांसविधायक देकर तदनु घृतौदन आदि वर्णित हैं।)

यहाँ संस्कार का नाम 'अन्नप्राशन' है। यदि सूत्रकार को मांसप्राशन अभीष्ट होता, तब संस्कार का नाम 'मांसप्राशन' दिया होता अथवा 'प्राशन' मात्र रखने से कुछ भी विधान किया जा सकता था, किन्तु किसी भी गृह्यसूत्र ने कोई अन्य नाम

न देकर केवल 'अन्नप्राशन' ही कहा है। साथ ही मानव गृ० (१.२०.१-६), काठक गृ०(३.१५.१-२), बौधायन गृ०(२.३.१-६), हिरण्यकेशि गृ० (२.५.१.३) तथा भारद्वाज गृ० (१.२७) आदि के अन्नप्राशन प्रसङ्ग में मांस शब्द भी नहीं है।

अतः प्रकृत विषय अन्नप्राशन के अतिरिक्त अन्य विषय (मांस) के विधायक सूत्र प्रक्षिप्त स्वीकार किये जाने चाहिएं।

३. आलभेत/आलभते

पारस्कर गृह्यसूत्र में आङ्पूर्वक लभ धातु से निष्पन्न आलभेत (विधिलिङ्) तथा आलभते (लट्लकार) का प्रयोग क्रमशः तीन तथा चार बार अर्थात् कुल सात बार हुआ है।

(i) विधिलिङ् के रूप 'आलभेत' का एक प्रयोग लाङ्गलयोजन में—**'इतिकृषेत्फालं वाऽऽलभेत'** २.१३.४ है।

(ii) आलभते-इस प्रकार लट्लकार का प्रयोग तीन स्थलों सप्तपदी (१.८.८), उपनयन (२.२.१६) तथा चतुर्थी कर्म में—**'दक्षिणांसमधिहृदयमालभते'** इस प्रकार हुआ है।

(iii) मधुपर्क (१.३.२७) तथा शूलगव (३.८.३) में आलभेत का प्रयोग है। अवकीर्णि प्रायश्चित्त (३.१२.२) में **'आलभते'** पद प्रयुक्त है।

यहाँ विवेच्य है कि हल के फाल तथा हृदय के साथ प्रयुक्त होने पर इनका अर्थ सभी भाष्यकार स्पर्श तथा पशु (गौ, गर्दभ) के साथ होने पर वध परक करते हैं। ऐसा करने का औचित्य किसी भी भाष्यकार ने नहीं दिया है। यही नहीं अन्यत्र श्रौतसूत्रों में (यथा कात्यायन में ब्रह्मा की 'प्रक्षाल्यपात्रं नाभिमालभते' आदि) भी जब पुरुष के अवयव के साथ **आलभेत** अथवा **आलभते** का प्रयोग मिलता है तब वहाँ भी स्पर्शार्थक और पशु के साथ मिलते ही यह वधार्थक हो जाता है। क्यों? क्या ब्रह्मा की नाभि, विद्यार्थी तथा स्त्री का हृदय अखाद्य हैं और पशु खाद्य? ऐसा कौन सा हेतु है जो पशु को देखते ही लभ के अर्थ को वध में नियन्त्रित कर देता है? किसी भी भाष्यकार ने इस पर टिप्पणी नहीं की है।

वस्तुतः जिस प्रकार मनुष्य के अङ्गों के साथ प्रयुक्त आलभेत/आलभते पद स्पर्शार्थक हैं उसी प्रकार पशु के साथ भी स्पर्शार्थक ही है, किन्तु मध्यकाल में मांसभक्षण जैसी कुरीतियों के चलते ऐसे स्थलों को खोज-खोजकर भाष्यकारों ने मांस परक व्याख्यात ही नहीं किया, अपितु 'नामांसो मधुपर्कः स्यात्' जैसे सूत्र भी प्रक्षिप्त कर दिये गये हैं। यथा—मधुपर्क तथा अन्नप्राशन में।

४. शूलगव—शूलगव (३.८) प्रसङ्ग में द्वितीय सूत्र में शूलगव का प्रयोजन है—'स्वर्ग्यः पशव्यः पुत्र्यो धन्यो यशस्य आयुष्यः' (२)। किन्तु भाष्यकारों द्वारा वर्णित वपाश्रपण आदि प्रकार मूल सूत्रस्थ **पशव्यः**—'पशुभ्यो हितः-हितसाधकः' के पूर्णतः प्रतिकूल है। एतद्विषयक टिप्पणी प्रकृतस्थल पर द्रष्टव्य है।

प्रकृत व्याख्या में उक्त तथा उक्त सदृश ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ पर भाष्यकारों के साथ असहमति है। ऐसे सभी स्थलों पर विनम्रतापूर्वक असहमति व्यक्त करते हुए बुद्धिसंगत व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। जिन स्थलों को प्रक्षेप योग्य माना है, उन्हें भी छापा गया है, जिससे विद्वज्जन विचारकर यथार्थ अर्थ-निर्धारण में सचेष्ट हो सकें।

पारिभाषिक शब्द

अरणि—वह लकड़ी जिसे रगड़कर यज्ञार्थ अग्नि प्रज्वलित करते हैं। यह दो होती हैं। इन्हें ऊपर, नीचे रखकर अग्नि-मन्थन होता है। ऊपर की अरणि—उत्तरारणि तथा नीचे की अरणि-अधरारणि कहलाती है।

अरत्नि—चौबीस अङ्गुल लम्बाई।

आमिक्षा—फटे दूध का गाढ़ा भाग = पनीर

आवाप—अन्यत्र विहित होम/जप आदि का कर्मान्तर में प्रक्षेप।

उपयमन कुश—अनेक कुश एक साथ मिलकर उपयमन कुश कहलाते हैं। प्राय: सात कुश एक साथ प्रयुक्त होते हैं।

चरु—चावल की घी अथवा दूध में पकी हुई हवि।

धाना—भुने हुए जौ।

पर्यग्निकरण—जलते तिनके या अङ्गार को किसी वस्तु के चारों ओर घुमाना।

पुरोडाश—जौ/धान की बनी विशेष हवि। यह स्वरूप और बनाने की विधि में बहुत कुछ मालपुए अथवा उत्तरी भारत में वर्षाऋतु में बिना तवे/कढाही के सीधे अग्नि पर तैयार की जाने वाली रोटी (अंगाखड़ी) से मिलती है। वैदिक इण्डेक्स में इसे यज्ञीय चपाती या रोटी कहा है।

प्रणीता-प्रोक्षणी—यज्ञानुष्ठान में उपयोगी जलपात्र।

प्रादेश—बारह अङ्गुल लम्बाई।

पृषातक—घृतमिश्रित दुग्ध अथवा घृतमिश्रित दधि

पयो यदाज्यसंयुक्तं तत् पृषातकमुच्यते। दध्येके तदुपासाद्य कर्त्तव्य: पायसश्चरु:।। कर्मप्रदीप ३/७/१२

फलीकरण—चावल की सफेदी को ढकने वाले सूक्ष्म छिलकों को दूर करने के लिए धान को पुन: कूटना 'फलीकरण' है। इन निकले हुए छिलकों को भी फलीकरण कहते हैं।

वाजिन्—फटे दूध का पतला भाग।

सतानूनप्त्र—सोमयागान्तर्गत तानूनप्त्र—घृताभिघारण नामक कर्म विशेष में एक साथ दीक्षित व्यक्ति सतानूनप्त्र कहलाते हैं—'सह तानूनप्त्रं येन स्पष्टं स सतानूप्त्री'।

संस्त्रव—होम के बाद बचा हुआ पिघला घी।

स्थालीपाक—गृह्य/आवसथ्य अग्नि में पकाकर तैयार चरु-पुरोडाश का बोधक है।

स्फ्य—खदिर काष्ठ से निर्मित। आकार में खड्ग के सदृश। इसकी लम्बाई एक अरत्नि = २४ अङ्गुल तथा चौड़ाई चार अङ्गुल।

स्रुक्—जुहू, उपभृत्, स्रुवा तथा ध्रुवा नामक चार प्रकार की काष्ठ निर्मित चम्मच।

(i) **जुहू**—हूयतेऽनयेति जुहू—जिससे आहुति दी जाए वह है—जुहू। पलाश काष्ठ से निर्मित बारह अथवा चौबीस अङ्गुल लम्बी।

(ii) **उपभृत्**—पीपल के काष्ठ से निर्मित। आकार में जुहू के सदृश। जुहू के समीप रखने के कारण उपभृत्—'जुह्वा समीपे धारणात् उपभृदिति भण्यते' —द्र० श्रौतपदार्थनिर्वचनम्—पृ० ८।

(iii) **स्रुवा**—खदिर काष्ठ निर्मित। लम्बाई एक अरत्नि तथा अग्रभाग अङ्गुष्ठ पर्व के समान गहरा।

(iv) **ध्रुवा**—विकङ्कत काष्ठनिर्मित। आकार जुहू के समान।

आज्यस्थालीसे आज्य—घी लेकर रखा जाता है। आहुति देने के लिए स्रुवा द्वारा इसमें से घी लेते हैं। एक स्थान पर ध्रुव = स्थिर रहने के कारण ध्रुवा कहलाती है।

ऊवध्य—लाल चन्दन का घृतमिश्रित वह अंश जो नीचे जम गया हो, ऊवध्य है।

शूर्प—बांस अथवा सरकण्डों से निर्मित छाज। इससे अन्न साफ करते हैं। इसमें चर्म का प्रयोग वर्जित है।

ओ३म्

पारस्करगृह्यसूत्रम्

प्रथमकाण्डम्

अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म॥१॥ परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसामाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीः संस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य निरुप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्नि कुर्यात्॥२॥ स्रुवं प्रतप्य सम्मृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यात्॥३॥ आज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनान्कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयात्॥४॥ एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः॥५॥ ॥१॥

कर्कोपाध्यायप्रणीतपारस्करकृतस्मार्तसूत्रव्याख्या।

पारस्करकृतस्मार्तसूत्रव्याख्या गुरूक्तितः।
कर्कोपाध्यायकेनेयं तेने नत्वा जगद्गुरुम्॥१॥

श्रौतान्याधानादीनि कर्माण्युक्तानि तदनन्तरं स्मार्तान्यनुविधीयन्ते तत्रैतदादिमं सूत्रम्—'अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्मेति' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। तत्रायमथशब्द आनन्तर्ये द्रष्टव्यः श्रौतानुविधानानन्तरं स्मार्तान्यनुविधीयन्त इति, आनन्तर्यप्रज्ञप्तिप्रयोजनं श्रौतेष्वधिकाराद्युपस्पृशेदप इत्येवमन्तं सर्वकर्मसाधारणं यत्तस्यात्रापि प्रवृत्तिर्यथा स्यादिति। पूर्वं प्रवृत्तं श्रौतानामुपनिबन्धनमित्येतत्सूत्रकारप्रवृत्त्या ज्ञायते प्रोष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पूर्ववदिति। श्रौतेषु गृहोपस्थानं विहितं तत्पूर्ववदित्यनेनातिदिश्यते, तथा प्रोक्षणीश्च पूर्ववदिति। अतः शब्दो हेत्वर्थः। यस्माच्छ्रौतान्यभिहितानि स्मार्तान्येवानुशिष्यन्ते अतस्तानि वक्तव्यानीति। ननु च पूर्वं स्मार्तानां गर्भाधानादीनामनुष्ठानं पश्चाच्छ्रौतानामित्यतोऽनुष्ठानक्रमेण स्मार्तान्येव पूर्वमभिधेयानीति। अत्रोच्यते, नैतदेवम् प्रत्यक्षश्रुतित्वात्। प्रत्यक्षा हि श्रुतयः श्रौतेषु, स्मार्तेषु च पुनः कर्तृसामान्यादनुमेयाः श्रुतयः। स्मार्तानामपि हि वेदमूलत्वमुक्तं तस्मात्प्रत्यक्षश्रवणात्तान्येव पूर्वमभिधीन्यते न गर्भाधानादीनि। अपरे त्वन्यथा वर्णयन्ति, स्मरणादेव स्मृतीनां प्रामाण्यम् अव्यवच्छिन्नं

हि स्मरणमष्टकादीनामष्टका: कर्तव्या इति। अनादिरयं संसार:। स्मरणमप्येषा-मनाद्येवेति। ननु चोक्तमापस्तम्बेन तेषामुत्सन्ना: पाठा: प्रयोगादनुमीयन्त इत्यतो वेदमूलकत्वम्। नैतदेवम्। शाखानां सतीनामुत्सादो भवति नासतीनाम्, तत्रायं दोष: स्यात्- य एव कश्चित्काञ्चिच्छाखां न पठति, तस्यैतद्विहितंस्मार्तंस्यात्, यस्तु पुन: पठेत्तस्य श्रौतमिति। तत्र पुरुषापेक्षया तदेव श्रौतं स्मार्तं चेत्ययुक्तरूपता स्यात्। स्मरणात्स्मृतिरिति चान्वर्थिकी संज्ञा, युक्तकर्मानुष्ठानं स्मरणं मनुगौतमवसिष्ठापस्तम्बा-दिभिर्ग्रन्थेनोपनिबद्धम्। तस्मात्कर्तृसामान्यादनुष्ठेयोऽयमर्थ इत्यनुमीयते। तथा च लिङ्गम्। नैमित्तिकं व्याहृतिहोमं प्रकृत्यामनन्ति, यद्यृक्तो भूरिति चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा गार्हपत्ये जुहवथ, यदि यजुष्टो भुव इत्याग्नीध्रीये अन्वाहार्यपचने वा हविर्यज्ञे, यदि सामत: स्वरित्याहवनीय इति प्रकृत्याह यद्यविज्ञातं तत्सर्वाण्यनुद्रुत्याहवनीये जुहवथेति। अविज्ञातं च यन्न विज्ञायते किमाग्वेंदिकं याजुर्वेदिकं सामवेदिकं वेति विनष्टं कर्म ज्ञायेत तत्स्मार्तमविज्ञातमित्युच्यते। वेदमूलत्वे ह्यवश्यमेवान्विष्यमाणं ज्ञायेत तत्किमूल-मिति, तस्मात्स्मृतिप्रवाहादेवायमर्थोऽनुष्ठेय इति गम्यते। 'गृह्यस्थालीपाकानां कर्मेति' **गृह्य: शालाग्नि: आवसथ्य औपासन** इत्यनर्थान्तरं, तत्र ये स्थालीपाका: ते गृह्यस्थालीपाका:, **स्थालीपाकग्रहणं चाज्यपुरोडाशधानासक्त्वाद्युपलक्षणार्थम्।** कथं ज्ञायते। येन स्थालीपाकमुपक्रम्याज्यमुपसंहरति निरुप्याज्यमधिश्रित्येत्येवमादि। आज्यग्रहणमपि स्थालीपाकाद्युपलक्षणार्थमेव। सर्वेषामेवेदं साधारणं कर्मोच्यते। नह्यत्र प्रकृतिविकारभाव इति। **विध्यादिविध्यन्तवती प्रकृतिरित्युच्यते,** यत्र **पुनर्विध्यादि-मात्रं विध्यन्तो नास्ति सा विकृतिरिति।** न चात्र विध्यादिविध्यन्तस्वरूपता, सर्वाण्येव स्थालीपाकादीनि प्रकृत्य धर्मविधानम्। 'परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्या-भ्युक्ष्याग्निमुपसमाधायेत्येवमादि पर्यग्निकुर्यादित्येवमन्तं सूत्रम्।' परिसमूहनादय: पञ्च पदार्था भूमिशुद्ध्यर्था इति केचित्। तदयुक्तम्। नह्यशुद्धे देशेऽग्ने: स्थापनप्रवृत्तिर्युक्तेति, तस्मादग्न्यर्था एव। यत्र यत्राग्ने: स्थापनं तत्र तत्रैते कर्तव्या इति। न च गृह्यस्थालीपाकादिकर्मान्तर्भाव एषाम्, येनैष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोम इत्यभिहितेऽपि पुनरभिधीयते उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निपुपसमाधायेति। नूनमनेनाप्रवृत्तिस्तत्रेति। तस्मादग्न्यर्था एवैत इति। तथा च लिङ्गम्। उद्धते वा अवोक्षितेऽग्निमादधातीति। प्रयोजनं स्वस्थानस्थित एवाग्नौ क्रियमाणे स्थालीपाकादौ न क्रियन्ते। 'दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य' इत्यासनमात्रं स्यात् न ब्रह्मा, आस्तरणमात्रोपदेशात् क्वचिच्चोपवेश-नविधानाद्दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्येति। नैतत्, अदृष्टप्रसङ्गात् न ह्यदृष्टाय कश्चिदासन-

प्रकल्पनं कुर्यात् ब्रह्मासनव्यपदेशानुपपत्तेश्च, तस्मादुपवेशनार्थमास्तरणम्। यत्तूक्तं दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्येति तदुदपात्रावसरविधित्सया प्रस्तुतब्रह्मोपवेशनज्ञापकम्, ब्रह्मासनं चास्तीर्य कर्तव्यम्। 'प्रणीय' अपः, अपां हि प्रणयनं सर्वार्थं दृष्टम्, इहापि तद्वत्सर्वार्थानामपां प्रणयनम्। 'परिस्तीर्य' अग्निम्। 'अर्थवदासाद्येति' प्रयोजनवत्पात्र-जातमासादयतीत्यर्थः। तच्च कार्यक्रमेण मुख्यक्रमानुग्रहात्। 'पवित्रे कृत्वा' यथा प्रदेशान्तरे कृते इति। 'प्रोक्षणीः संस्कृत्य' उत्पवनोद्दिङ्गनादिना। 'अर्थवत्प्रोक्ष्य' कार्यवतः प्रोक्षणम्। 'निरुप्याज्यमधिश्रित्य' आज्यनिर्वाप औपयिकस्य पृथक्क्रिया। अधिश्रित्य अग्नौ। 'पर्यग्निकुर्यात्' आज्यं स्थालीपाकं चेति। उपलक्षणार्थत्वादाज्यस्य। 'स्रुवं प्रतप्य' तापयित्वा। तमेव दर्भैः 'सम्मृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यात्। आज्यमुद्वास्य' अग्नेः सकाशात्। 'उत्पूय' पवित्राभ्यां तदेवाज्यम्। 'अवेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववत्' च शब्दादाज्यं पूर्ववदेव, अतः पवित्राभ्यामित्युक्तम्। प्रोक्षणीसंस्कारश्च पर्युक्षणार्थः। स्रुवस्यापि संस्कारो होमार्थः तत्संस्कारस्यादृष्टार्थता माभूदिति। 'उपयमनान्कुशानादाय समिधोऽभ्याधायेति' उपयमना उपग्रहार्थीया दर्भाः। 'पर्युक्ष्य जुहुयात्' पर्युक्षणं प्रोक्षणीभिरित्युक्तम्। 'एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोम इति।' एष विधिरेव न मन्त्राः समाम्नायाभावात्। यत्र क्वचिद्धोमः शान्तिकपौष्टिकादिष्वपीति, क्वचिच्छब्दश्च गृह्याग्निव्यतिरेकेणापि यथाऽयं विधिः स्यादिति। यथा दावाग्निमुपसामाधाय घृताक्तानि कुशेण्ड्वानि जुहुयादिति।। १।।

१-अथ = श्रौत (आधान आदि) कर्मों का श्रौतसूत्र में कथन किया जा चुका है। तदनन्तर क्रमप्राप्त स्मार्त कर्मों का विधान अपेक्षित है। अतः = इसलिए, गृह्य = आवसथ्य अग्नि में अनुष्ठेय, स्थालीपाकानांकर्म = स्थालीपाक (आज्य, पुरोडाश, धानासक्तू आदि) द्वारा सम्पाद्य कर्मों का विधान किया जाता है।

२-सूत्र २ से ४ तक होम की सामान्य विधि वर्णित है—अग्निस्थापन से पूर्व वेदी (यज्ञस्थली) का परिसमुह्य = कुशाओं से परिमार्जन (धूल आदि दूर करके) करके, उपलिप्य = गोबर, मिट्टी, जल से लेपन करके, उल्लिख्य = खादिर स्फ्य से रेखा खींच करके, उद्धृत्य = अनामिका और अंगुष्ठ से (रेखा खींचने से उठी) मिट्टी को बाहर फेंक कर, अभ्युक्ष्य = जल से अभ्युक्षण-प्रोक्षण करके, अग्निमुपसमाधाय = स्मार्तकर्मसाधनभूत लौकिक अथवा श्रौत अग्नि को स्थापित करके, दक्षिणतो........तीर्य = स्थापित अग्नि के दक्षिण की ओर ब्रह्मा का आसन

बिछा करके, प्रणीय = प्रणीता में जल लेकर, परिस्तीर्य = वेदी के चारों ओर कुश बिछा करके, अर्थवदासाद्य = उपयोगी यज्ञपात्रादि को (अग्नि के उत्तर अथवा पश्चिम में) एकत्रित करके, पवित्रे कृत्वा = प्रादेशमात्र दो कुशाखण्ड लेकर, प्रोक्षणीः संस्कृत्य = दोनों कुशाओं से प्रोक्षणी पात्र को संस्कृत (प्रणीता से जल डालकर, पवित्रे से परिमार्जित) करके, अर्थवत्प्रोक्ष्य = प्रयोजनीय यज्ञपात्र, कुशा आदि का प्रोक्षण करके, निरुप्याज्यम् = आज्य (घृत) को देखकर, अधिश्रित्य = आज्य को अग्नि पर रखकर, पर्यग्नि-कुर्यात् = आज्यस्थाली के चारों ओर अग्नि करे (जलते तिनके अथवा समिधा को आज्यस्थाली के चारों ओर घुमाने की परम्परा है, जिसका उद्देश्य घृत पिघलाना है)।

३-स्रुवं = स्रुवा को, प्रतप्य = तपाकर, सम्मृज्य = अच्छी प्रकार मार्जन करके, अभ्युक्ष्य = प्रणीता के जल से धोकर, पुनः प्रतप्य = पुनः पूर्ववत् तपाकर, निदध्यात् = रख दे।

४-आज्यम् = घृत को, उद्वास्य = अग्नि से उतारकर, उत्पूय = उत्पवन कर (घृत के अन्दर कोई तिनका आदि गिर गया हो, तो उसे पवित्रे से निकालकर), अवेक्ष्य = देखकर (घृतातिरिक्त कोई अन्य पदार्थ रह तो नहीं गया है।) प्रोक्षणीश्च पूर्ववत् = और प्रोक्षणी पात्र (प्रोक्षणीस्थ जल) को भी घृत की तरह पवित्र करके, उपयमनान् कुशान् = उपयमन संज्ञक कुशाओं को, आदाय = लेकर (दायें हाथ से लेकर पुनः बायें हाथ में ले), समिधोऽभ्याधाय = समिधाओं को अग्नि में रखकर, पर्युक्ष्य = जल छिड़ककर (वेदी के चारों ओर जल सेचन करके), जुहुयात् = होम करे।

५-एष एव = यह ही परिसमूहन से पर्युक्षणान्त, विधि = विधि है, यत्र क्वचित् = जहाँ कहीं भी अर्थात् जिस संस्कार आदि के अवसर पर, होमः = होम होगा।

टिप्पणी-१. 'अथ'—अथ शब्द अधिकार, अनन्तर आदि का बोधक है, किन्तु ग्रन्थारम्भ में इसे मङ्गलवाचक मानने की परम्परा भी उपलब्ध होती है। तद्यथा—अथकारं भाष्येषु-वाजसनेयि प्रातिशाख्य १.१९

पारस्कर के प्रमुख भाष्यकारों ने अथ शब्द को आनन्तर्यार्थ स्वीकार किया है। मङ्गल और अनन्तर के साथ ही ग्रन्थारम्भ में प्रयुक्त 'अथ' शब्द को

अधिकारार्थ स्वीकार करना चाहिये। यत: गृह्यसूत्र प्रतिपादित स्मार्त कर्म गृह्याग्नि में ही अनुष्ठेय हैं। अत: प्रकृत सूत्र द्वारा गृह्याग्नि में अनुष्ठेय स्थालीपाक आदि कर्मों का अधिकार ज्ञापित किया गया है।

२. **गृह्याग्नि**—गृह शब्द दम्पती का वाचक है। गृहाय हितं गृह्यं—उस दम्पती के हितार्थ अग्नि ही गृह्याग्नि है। आगे **शालाग्नि, औपासनाग्नि** तथा **आवसथ्य** नाम से अभिहित अग्नि-गृह्याग्नि ही है।

३. **द्वितीय सूत्रस्थ**—परिसमुह्य से चतुर्थ सूत्रस्थ पर्युक्ष्य तक चौबीस ल्यबन्त हैं, तदनन्तर 'जुहुयात्' यह क्रियापद प्रयुक्त हुआ है, जिससे स्पष्ट है कि होम से पूर्व परिसमूहन आदि २४ कर्म करणीय हैं।

दीर्घ ऊकार युक्त 'परिसमूह्य' पाठ प्रामादिक है। 'उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः- अष्टा. ७.४.२३ सूत्रानुसार ह्रस्व उकार युक्त पाठ 'परिसमुह्य' उचित है। वैसे भी परिसम्पूर्वक वह् धातु को सम्प्रसारण होकर 'परिसमुह्य' रूप ही निष्पन्न होता है। ऊह् धातु यद्यपि पाणिनीय धातुपाठ में वितर्क अर्थ में पठित है, पुनरपि धातु पठित अर्थ से भिन्नार्थ में ऊह् धातु से भी 'परिसमुह्य रूप ही शुद्ध है।

विश्वनाथ ने 'परिसमुह्य जलैरिति शेष:' कहकर परिसमूहन भी जल द्वारा ही स्वीकार किया है।

४. **भूसंस्काराः**—(i) परिसमूहन-कुशकूर्चिका से यज्ञवेदी की पांसु-धूली सकेरना, विश्वनाथ ने 'परिसमुह्य जलैरितिशेष:' कहकर परिसमूहन भी जल से ही स्वीकार किया है। (ii) उपलेपन-गोमय से वेदी का लेपना। (iii) उल्लेखन—स्फ्य से खोदना अथवा रेखा खींचना। (iv) उद्धरण—खोदी हुई मिट्टी को वेदी से उठा देना। (v) अभ्युक्षण—वेदी पर जल छिड़कना। 'एते पञ्च भूसंस्कारा इति भर्तृयज्ञभाष्ये'—गदाधरभाष्य के अनुसार ये पाँच भूसंस्कार हैं, किन्तु कर्क एवं जयराम ने इसे अयुक्त माना है, क्योंकि अग्नि स्थापन शुद्ध भूमि पर ही होता है। अत: ये अग्न्यर्थ हैं।

पारस्कर के प्रमुख भाष्यकार हरिहर के 'परिसमूहनादिपञ्चभूसंस्कार संस्कृते स्थण्डिले' द्वितीयकण्डिकाव्याख्याने'—मत में यह भूसंस्कार हैं।

वस्तुत: परिसमूहन आदि भूसंस्कार के साथ ही अग्नि संस्कार भी हैं। यत: एक बार परिसमूहन आदि कर्म के पश्चात् वृष्टि आदि कारणों से अग्नि के

उपशान्त हो जाने पर पुन: अग्नि स्थापन से पूर्व परिसमूहन आदि पंच कर्म (संस्कार) किये जाते हैं। अत: इन्हें उभय संस्कार कहना उचित होगा।

५. **आज्योत्पवन**—यह आज्य-घृत का संस्कार है। 'आज्यसंस्कार: सर्वत्र', 'नासंस्कृते जुहुयात् कौषी० गृ० १.४.६—७ सूत्रानुसार असंस्कृत आज्य से हवन नहीं करना चाहिए।

६. **विधि**—कर्क ने उक्त सम्पूर्ण विधि को 'एष विधिरेव न मन्त्रा: समाम्नायाभावात्'—कहकर अमन्त्रक विधि रूप में स्वीकार किया है। जयराम, हरिहर, गदाधर ने भी कर्क का अनुसरण किया है। उक्त, 'एष एव विधि:'—सूत्र को 'एष विधिरेव' रूप में अन्वित करने पर अमन्त्रक विधि का विधान स्वीकार किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। सूत्रकार द्वारा पठित 'एष एव विधिः' पद से भाष्यकार अभिमत अर्थ पुष्ट नहीं होता है। जहाँ कहीं भी (जब कभी भी) यज्ञ होगा यह परिसमूहन आदि विधि कर्त्तव्य है। एष के साथ पठित एव का प्रयोग परिसमूहन आदि पर बल प्रदान कर रहा है। समन्त्रक-अमन्त्रक महत्त्वपूर्ण नहीं है।

यह होम मात्र की सामान्य विधि है। विवाह आदि सभी संस्कारों में आहुतिदान से पूर्व द्वितीय से चतुर्थ सूत्र पर्यन्त विहित क्रियायें अपरिहार्य हैं।

७. यह कण्डिका—कुशकण्डिका भी कहलाती है।

इति प्रथमकाण्डे प्रथमा कण्डिका ✪

द्वितीया कण्डिका

आवसथ्याधानविधिः

आवसथ्याधानं दारकाले॥१॥ दायाद्यकाल एकेषाम्॥२॥ वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य॥३॥ चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वम्॥४॥ अरणिप्रदानमेके॥५। पञ्चमहायज्ञा इति श्रुतेः॥६॥ अग्न्याधेयदेवताभ्यः स्थालीपाक ꣳ श्रपयित्वा-ऽऽज्यभागाविष्ट्वा ऽऽज्याहुतीर्जुहोति॥७॥ त्वन्नोऽअग्ने स त्वन्नोअग्न इमम्मे वरुण तत्त्वा यामि ये ते शतमयाश्चाग्न उदुत्तमं भवतन्न इत्यष्टौ पुरस्तात्॥८॥ एवमुपरिष्टात्स्थालीपाकस्याग्न्याधेयदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति॥९॥ स्विष्टकृते

च॥१०॥ अयास्यग्नेर्वषट् कृतं यत्कर्मणात्यरीरिचं देवागातु विद इति॥११॥ बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति॥१२॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥१३॥' ॥२॥

(कर्क:)—गृह्यस्थालीपाकानाङ्कर्म प्रक्रान्तमतो गृह्यस्यैवोत्पत्त्यर्थमिदमाह। 'आवसथ्याधानं दारकाले' इति **आवसथ्यो गृह्यः शालाग्निरित्यनर्थान्तरं** तस्याधानं स्थापनमात्मसात्करणमिति यावत् तद्दारकाले भवति। दारशब्देन पाणिग्रहणादिसंस्कार-संस्कृतं स्त्रीद्रव्यमभिधीयते। तस्याहरणकालो दारकालस्तत्र। केचित्तु पाणिग्रहणा-त्प्रागिच्छन्ति गृह्यकारान्तरवचनात्। एवं हि तेनोक्तम्। जायायाः पाणिञ्जिघृक्षन्नादधीतेति तत्पुनर्नातीव युक्तरूपम्। येनाद्याप्यसंस्कृतमेव स्त्रीद्रव्यम्, न चासंस्कृतं तत्सहायतां प्रतिपद्यते, ससहायस्य च कर्मस्वधिकारः। मध्यगं हि दम्पत्योर्द्रव्यन्नैकः शक्नोति परित्युक्तुम्। पत्न्यपि च तेन विनाऽनधिकृतैव, तस्मात्ससहायस्याधिकारः। तथाच लिङ्गम्। असर्वो हि तावद्भवति यावज्जायान्न विन्दत इति, अतः संस्कारा-भिनिर्वृत्त्युत्तरकालं दारकालः। अपि च स्मरन्ति तमेव दारकालम्प्रकृत्य धर्मे चार्थे च कामे च तया सह नातिचरितव्यमिति। पूर्वञ्च क्रियमाणे आधाने एकाकिनाऽग्निराहितो भवति, तथा सत्यतिचारः स्यादिति। तस्माच्चतुर्थ्युत्तरकालन्दारकाल इति सम्प्रदायः। यत्पुनरुक्तम्। वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गार्ह्यं कर्म यथाविधि। पञ्चयज्ञविधानञ्च पक्तिञ्चान्वाहिकीं गृहीति, तद्विवाहसम्बन्धादुत्तरकालमपि क्रियमाणेऽसौ वैवाहिको भवत्येव। 'दायाद्यकाल एकेषाम्' एकेषामाचार्याणाम्मते दायाद्यकाले कर्त्तव्यम्। दायाद्यकालश्च भ्रातृणान्धनविभागकालः, तस्मिन्हि काले स्वेन द्रव्येण कर्मानुष्ठान-समर्थो भवति। साधारणद्रव्यस्य हि परित्यागासामर्थ्यादनधिकार एव, अतोऽयं व्यवस्थितविकल्पः। अभ्रातृकस्य दारकाले भ्रातृमतो दायाद्यकाल इति। 'वैश्यस्य........ त्सर्वम्' हुतोच्छिष्टोऽग्निरत्र गृह्यते असंस्कृतो वा अविरोधात्। 'अरणिप्रदानमेके' एके आचार्या अरणिसम्बन्धमिच्छन्ति, अरणिः प्रसिद्धा, प्रशब्द उपशब्दार्थे उपादाने च वर्तते। अरण्युपादानमेकेऽग्निमिच्छन्ति, एके वैश्यस्य कुलादित्युभयोर्विकल्पेन स्मरणम्। तत्र चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वङ्कर्म कर्त्तव्यम्। चातुष्प्राश्यपचनं यस्मिन्कर्मणि विद्यते तदिहापि सर्वम्भवति। कुत एतत्। 'पञ्चमहायज्ञा इति श्रुतेः' पञ्च महायज्ञा हि श्रुतौ पठ्यन्ते तत्साधनभूश्चायमग्निः। श्रौतकर्मसाधनभूते चाग्नौ चातुष्प्राश्यपचन-वतीतिकर्तव्यता दृष्टा। अयमपि श्रौतकर्मसाधनभूत एवेत्यभिप्रायः। तस्माच्चातुष्प्राश्य-पचनवतीतिकर्त्तव्यताप्रवृतिरत्रापि। अपि चाधाने सेतिकर्तव्यता दृष्टा इदमपि

चाधानमेव। एवं हि श्रूयते एतदेव प्रकृत्य अथैनं वयन्त्वेव धास्यामह इति। तेनाधानसामान्यादिहापि प्रवर्तत एवेति। एवं स्थित उच्यते, एके आचार्या नेच्छन्त्यत्र चातुष्प्राश्यपचनवतीतिकर्तव्यताम्। यत्कारणम्। उपदेशेन वा धर्मः प्रवर्तते अतिदेशेन वा। न चात्रोपदेशो न चातिदेशः। तस्मान्नैव प्रवर्तते। कथन्तर्हीदमुक्तम्। यस्य नाम श्रौतकर्मसाधनभावेनाधानसामान्याद्वा प्रवृत्तिबुद्धिस्तन्निवर्तयितुमित्यदोषः। गृह्यकारान्तरैश्चानयैव भ्रान्त्या इयमिति कर्तव्यतोपदिष्टा तन्निराकरणायेह पूर्वपक्ष उपन्यस्तः। 'अग्न्या..... इत्यष्टौ' स्थालीपाकं श्रपयित्वाइत्युच्यते माभूत्तद्धूतोपादानम्। अग्न्याधेयदेवताभ्य इति च वक्तुमशक्यम्, वक्ष्यत्यग्न्याधेयदेवताभ्यो हुत्वा जुहोतीति। उक्तञ्च तत्किमर्थम् बहुत्वविशिष्टानामत्र देवतात्वं यथा स्यादिति। किञ्च स्यात् द्वे अप्यग्न्याधेयदेवते स्त एव, तयोरेव देवतात्वम्माभूदिति पुनर्ग्रहणाच्च बह्वीनान्देवतात्वम्। आज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोतीति किमर्थमिदमुच्यते। आघारादीनाञ्चतुर्दशाज्याहुतीनाङ्क्रम उक्तः तत्राष्टाज्याहुतीनामवसरविधानार्थमाज्यभागग्रहणम्। अष्टग्रहणञ्च मन्त्रप्रतीकसंशयव्युदासार्थम्। अष्टौ पुरस्तादाज्याहुतीर्जुहोत्यग्न्याधेयदेवताहोमस्य। 'एवमु....रिति' स्थालीपाकस्येत्यवयवलक्षणा षष्ठी। अग्न्याधेयदेवताभ्यो हुत्वा एवमुपरिष्टादष्टावेव आज्याहुतीर्जुहोति। हविरन्तरे सति प्राङ् महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृद्धोमो विहितः तस्मै हुत्वा, च शब्दादाज्याहुतिञ्जुहोति अयास्याग्नेरित्यनेन मत्रेण। 'बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति' बर्हिर्होमश्चात्रैव विधानसामर्थ्यादिहैव वचनान्नान्यत्र। 'ततो ब्राह्मणभोजनम्' एकद्विबहुषु समासस्य तुल्यत्वादेकस्मिन्नपि चार्थस्य कृतत्वादेकस्यैव भोजनमिति।।२।।

प्रथम कण्डिकास्थ प्रथम सूत्र द्वारा आचार्य ने गृह्य = आवसथ्य अग्नि द्वारा सम्पाद्य कर्मों के विधान की प्रतिज्ञा की है। अतः प्रसङ्गप्राप्त आवसथ्य अग्नि के आधान का वर्णन किया जा रहा है।

१. आवसथ्याधानं = आवसथ्य--गृह्य अग्नि का आधान-स्थापन, दारकाले = विवाह के समय होता है।

२. दायाद्यकाले = दायभाग-पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के समय, एकेषाम् = कुछ आचार्यों के मत में आवसथ्य अग्नि का आधान काल है।

३. वैश्यस्य बहुपशोः = बहुत पशु वाले अर्थात् सम्पन्न वैश्य के, गृहाद् = घर से, अग्निम् = अग्नि को, आहृत्य = लाकर आधान करना चाहिये।

४. चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वम् = चातुष्प्राश्यपचन के समान सम्पूर्ण कर्म (विधि) करना चाहिये।

५. अरणि प्रदानम् = अरणि प्रदान-अरणि जिस अग्नि का उपादान कारण अर्थात् उत्पत्तिस्थान है—ऐसे आरणेय अग्नि का आधान करना चाहिये। एके = ऐसा कुछ आचार्यों का मत है।

६. पञ्चमहायज्ञा = पाँच महायज्ञ हैं, इति श्रुतेः = ऐसी श्रुति है।

७. अग्न्याधेयदेवताभ्यः = अग्न्याधेय-अग्नि के आधेय देवताओं (अग्नि और अदिति) के लिए, स्थालीपाकं = स्थाली पाक-चरु आदि, श्रपयित्वा = पकाकर, आज्यभागौ = आज्यभाग आहुति, इष्ट्वा = देकर, आज्याहुतीः = घृताहुति, जुहोति = दे।

८. त्वन्नो ....अष्टौ पुरस्तात् = १. त्वन्नोऽअग्ने०, २. स त्वन्नो०, ३. इमं मे०, ४. तत्त्वा यामि०, ५. ये ते शतम्०, ६. अयाश्चाग्ने०, ७. उदुत्तमम्० ८. भवतन्न०—ये आठ आहुतियाँ अग्न्याधेय देवताहोम से पूर्व देवे।

९. एवम् = इसी प्रकार, अग्न्याधेयदेवताभ्यः = अग्न्याधेय देवताओं के लिए, स्थालीपाकस्य = स्थालीपाक चरु आदि की, हुत्वा = आहुति देकर, उपरिष्टात् = बाद में, जुहोति = पुनः उक्त 'त्वन्नोऽअग्ने' आदि मन्त्रों से आठ घृताहुति देनी चाहिएं।

१०. स्विष्टकृते च = अष्टर्च होम के पश्चात् स्विष्टकृत्, आहुति दे।

११. अयास्यग्नेर्वषट् कृतं यत्कर्मणात्यरीरिचं देवागातु विद इस मन्त्र से आहुति दें।

१२. बर्हिर्हुत्वा = यज्ञवेदी के चारों ओर बिछे हुए कुशों को, हुत्वा = आधान की गयी अग्नि में हवन कर, प्राश्नाति = यज्ञशेष का भक्षण करता है।

१३. ततः = तत्पश्चात्-यज्ञशेष का प्राशन करने के बाद, ब्राह्मण-भोजनम् = ब्राह्मण को भोजना कराना चाहिए।

टिप्पणी-१. दारकाले-दायाद्यकाले-आवसथ्य अग्नि का आधान विवाह के समय अथवा पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के समय करना चाहिए। यहाँ व्यवस्थित विभाषा है—अर्थात् जिस पुरुष के कोई दाय भाग का विभाजन करने वाला भाई है वह तो दायादकाल में आधान करे और जिसके कोई भाई नहीं है, वह विवाह के समय ही आधान करेगा। सूत्रकार द्वारा द्वितीय सूत्र में पठित एकेषाम्-पद से ज्ञापित है कि सूत्रकार को दारकाल ही अभीष्ट है। **'एष**

औपसदोऽग्निर्वैवाहनो वा' काठक ४७.१ **अथैकाग्नेः समाधानम्, परमेष्ठिमरणे पुत्रस्याग्नि समाधानम्**-काठक ४५.१-२ काठककार को दोनों पक्ष अभिप्रेत हैं।

जायाया वा पाणिं जिघृक्षन् प्रेते वा गृहपतौ परमेष्ठिकरणम् दर्शे वा पौर्णमासे वाऽग्निसमाधानं कुर्वीत-गोभिलगृ० १, १, ८, १२, १४ उक्त गोभिल वचनों के आधार पर दारकाल एवं दायादकाल के विकल्प रूप में अमावस्या व पौर्णमासी भी आधान काल है।

२. **अग्नि आहरण**—सूत्रकार ने आधान हेतु सम्पन्न वैश्य के गृह से अग्नि आहरण का विधान किया है।

गोभिलगृह्यसूत्र में वैश्य अथवा भड्भूजे वा बहुयाजी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के गृह से अग्नि आहरण विहित है। तद्यथा-**वैश्य कुलाद्वाऽम्बरीषाद्वाऽग्निमा-हृत्याऽभ्यादध्यात्॥१.१.१५ अपि वा बहुयाजिन एवाऽऽगाराद् ब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वा वैश्यस्य वा॥१६**

कृष्ण यजुर्वेदीय वैखानस गृह्यसूत्र-**श्रोत्रियागारान्मथित्वा वाग्निमादाय** ३.६ के अनुसार श्रोत्रिय के गृह से अथवा अरणि मन्थन से उत्पन्न अग्नि का आधान करणीय है। अरणिप्रदान-अरणिमन्थन पक्ष भी अधिकांश सूत्रकारों को अभिमत है। खादिर गृह्यसूत्र १.५.१-५ मैत्रायणीयमानव गृ० सू० १.१०.१ भी द्रष्टव्य है।

३. सूत्र ३ व ५ की सङ्गति—हमारे विचार में सूत्र ३ व ५ के मध्य सूत्र ४ अर्थ एवं पद्धति क्रम में बाधक है। सूत्र ४ का अर्थ स्वारस्य सूत्र ६ के साथ उचित प्रतीत होता है। इस प्रकार इन चार सूत्रों को उक्त क्रम में रखने पर इनका सरलार्थ निम्नवत् होगा-

सम्पन्न वैश्य के गृह से अग्नि लाकर आवसथ्याधान करे॥३॥ कुछ आचार्य अरणि प्रदान-अरणि मन्थन से उत्पन्न अग्नि का आधान प्रतिपादन करते हैं॥५॥ चातुष्प्राश्यपचन के समान सम्पूर्ण विधि यहाँ करणीय है॥४॥ क्योंकि पाँच महायज्ञ श्रुति = ब्राह्मण व श्रौतसूत्र विहित है। यह अग्नि (आवसथ्य) उन पाँच महायज्ञों की साधन भूत है। चातुष्प्राश्यपचन (चार याज्ञिकों द्वारा प्राशन योग्य पदार्थ को निष्पन्न करने वाली इत्तिकर्त्तव्यता) श्रौतकर्म की साधनभूत अग्नि में सम्पाद्य है। यत: इस आवसथ्य में श्रुतिविहित महायज्ञ सम्पन्न होते हैं। अत: चातुष्प्राश्यपचन भी निष्पाद्य है।

चातुष्प्राश्यपचन श्रौतकर्म है। अतः इसकी विधि भी श्रौतसूत्रों में ही वर्णित है। जिज्ञासु विस्तार के लिए कात्यायन श्रौतसूत्र ४.८.२—१० देखें।

४. **प्रक्रिया**—सूत्र ७ से ११ पर्यन्त की प्रक्रिया निम्नवत् है—

(i) आज्यभागाहुति—अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा (चरु)२

(ii) अष्टर्च होम त्वन्नोऽअग्ने (आज्य) ८

(iii) अग्न्याधेयदेवता अग्नये, अदित्यै (चरु) २

(भाष्यानुसार-पवमान, पावक, शुचि, अदिति)

(iv) अष्टर्च होम (आज्य) ८

(v) स्विष्टकृत् (अग्नये स्विष्टकृते) (चरु) १

(vi) अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणाऽत्यरीरिचं देवागातु विदः

(आज्य) १/२२

चौदह मन्त्रों से बाईस आहुतियाँ विहित हैं। भाष्यकारों ने अग्न्याधेय देवताओं के लिए अग्नि के पावमान, पावक और शुचि भेद कर—अग्नये पवमानाय, अग्नये पावकाय, अग्नये शुचये ये तीन तथा अदिति के लिए-अदित्यै-चतुर्थ—ये चार आहुति प्रतिपादित की हैं। इनके अनुसार चौबीस आहुतियाँ आवसथ्याधान की हैं।

(vii) इसी काण्ड की पञ्चमकण्डिका सू० ३-४ के अनुसार सभी गृह्यकर्मों में आघारावाज्यभागाहुति (४) महाव्याहृति (३), सर्वप्रायश्चित्त त्वन्नो, स त्वन्नो, ये ते शतम्, अयाश्चाग्ने, उदुत्तमम् (५) प्राजापत्य (१) तथा स्विष्टकृत् (१) = १४ ये नित्य कर्त्तव्य हैं।

५. **बर्हिहोम**—(i) यज्ञवेदी के चारों ओर परिस्तृत-बिछे हुए बर्हि = कुशाओं को हाथ से उठाकर अग्नि पर (अमन्त्रक) डालने का नाम बर्हिहोम है।

(ii) गृह्यकर्मों में मार्जन, पवित्रप्रतिपत्ति, बर्हिहोम तथा प्रणीताविमोक का विधान उपलब्ध नहीं है। सूत्रकार द्वारा आवसथ्याधान में बर्हिहोम का निर्देश करने से स्पष्ट है कि शेष ३ कर्म यहाँ नहीं होंगे और बर्हिहोम भी मात्र आधान प्रसङ्ग में ही होगा। अग्रिम सूत्र में पठित 'ततः', पद भी इसी का ज्ञापक है कि—बर्हिहोम के पश्चात् प्रणीताविमोक आदि न करके ब्राह्मणभोज कर्त्तव्य है।

इति प्रथमकाण्डे द्वितीया कण्डिका ✪

तृतीया कण्डिका

अर्घविधिः (मधुपर्कः)

षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति॥१॥ प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुः॥२॥ यक्ष्यमाणास्त्वृत्विजः ॥३॥ आसनमाहार्याह साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तमिति॥४॥ आहरन्ति विष्टरं पद्यं पादार्थ-मुदकमर्घमाचमनीयं मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं का ꣳस्ये का ꣳस्येन ॥४॥ अन्यस्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि॥६॥ विष्टरं प्रतिगृह्णाति॥७॥ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः। इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदा-सतीत्येनमभ्युपविशति॥८॥ पादयोरन्यं विष्टर आसीनाय॥९॥ सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयति॥१०॥ ब्राह्मणश्चेद्दक्षिणं प्रथमम्॥११॥ विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोह इति॥१२॥ अर्घं प्रतिगृह्णात्यापः स्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानीति॥१३॥ निनयन्नभिमन्त्र-यते, समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत। अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पय इति॥१४॥ आचामत्यामागन्यशसा सꣳसृज वर्चसा॥ तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनामिति॥१५॥ मित्रस्य त्वेति मधुपर्कं प्रतीक्षते॥१६॥ देवस्य त्वेति प्रतिगृह्णाति॥१७॥ सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया त्रिः प्रयौति नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामीति॥१८॥ अनामिकाङ्गुष्ठेन च त्रिर्निरुक्षयति॥१९॥ तस्य त्रिः प्राश्नाति यन्मधुनो मधव्यं परमꣳरूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानीति॥२०॥ मधुमतीभिर्वा प्रत्यृचम्॥२१॥ पुत्रायान्तेवासिने वोत्तरत आसीनायोच्छिष्टं दद्यात्॥ २२॥ सर्वं वा प्राश्नीयात्॥२३॥ प्राग्वाऽसञ्चरे निनयेत्॥२४॥ आचम्य प्राणान्त्संमृशति वाङ्म आस्ये नसोः प्राणोऽक्ष्णोश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रं बाह्वोर्बलमूर्वोरोजो-ऽरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहेति॥२५॥ आचान्तोदकाय शासमादाय गौरिति त्रिः प्राह॥२६॥ प्रत्याह। माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्या-नाममृतस्य नाभिः। प्रनुवोचञ्चिकितुषे जनाय मागामनागमदितिं वधिष्ट। मम चामुष्य च पाप्मानं हनोमीति यद्यालभेत॥२७॥ अथ यद्युत्सिसृक्षेन्मम चामुष्य च

पाप्मा हत ओमुत्सृजत तृणान्यत्त्विति ब्रूयात्॥२८॥ न त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्॥२९॥ अधियज्ञमधिविवाहं कुरुतेत्येव ब्रूयात्॥३०॥ यद्यप्यसकृत्संवत्सरस्य सोमेन यजेत कृतार्घ्या एवैनं याजयेयुर्नाकृतार्घ्या इति श्रुतेः॥३१॥' ॥ ३॥

(कर्कः)—आवसथ्याधानं दारकाल इत्युक्तम्। दाराहरणमेव कथं क्रियत इति तदभिधीयते। तत्र च वैवाहिकस्यार्घदानं स्मर्यते। तत्प्रसङ्गेन यावन्तोऽर्घ्यास्ते सर्व एवाभिधीयन्ते 'षडर्घ्या भवन्तीति' षडर्घार्हा भवन्तीत्यर्थः। तानाह 'आचार्य........ स्नातकः इति।' प्रियस्नातकयोः पृथक्त्वज्ञापनार्थं षड्ग्रहणम्। उपनयनपूर्वकं यो वेदमध्यापयति स आचार्यः। ऋत्विक् प्रसिद्धः। वैवाह्यो जामाता। राजा च प्रियश्च प्रसिद्धौ। वेदमधीत्य यः स्नातस्तस्याचार्योऽर्घदानं करोति। एवं हि स्मरन्ति-तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः। स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवेति। आचार्यस्यायमुपदेशः। 'प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुः' आचार्यादीनपि। नत्वर्वाक् संवत्सरादागतान्। 'यक्ष्यमाणास्त्वृत्विजः'। ऋत्विजः पुनर्यक्ष्यमाणा एवार्घ्याः न ततोऽन्यत्र। 'आसनमा... भवन्तमिति'। अर्घ्यं प्रत्यध्येषणमेतत्। आहार्येत्यानाय्येत्युच्यते। 'आहरन्ति..... कांस्येन' विष्टरः उपवेशनार्थं विष्टरिका। पद्यं च विष्टरम्। पादार्थमुदकं सुखोष्णम्। **अर्घम् अर्घशब्देन च उदपात्रमेवोच्यते।** तथाच लिङ्गम्—यथा राज्ञ आगतायोदकमाहरेदेवमेतदिति सोमस्योदपात्रनिनयनं विधाय एतदुक्तम्। आचमनीयमुदकमेव। तथा मधुपर्कं दधिमधुघृतं कांस्यपात्रे स्थितं कांस्येनैवापिहितम्। 'एतान्याहरन्ति' बहुवचननिर्देशादर्घयितुः सम्बन्धिनः पुरुषाः। उच्चारणार्थं वा बहुवचनम्। 'अन्यस्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि' अर्घयितुर्व्यतिरिक्तोऽन्यो विष्टरादीनित्रिस्त्रिः प्राह विष्टरो विष्टरोविष्टरः प्रतिगृह्यतामित्येवम्। विष्टरं प्रतिगृह्णाति' तूष्णीमेव। वर्ष्मोऽस्मि समानानामित्यनेन मन्त्रेण विष्टर एवाभ्युपविशति। ग्रहणोपवेशनयोर्मध्ये मन्त्रः पठितः स लिङ्गादुपवेशने विनियुज्यते, लिङ्गं हि भवति इमं तमभितिष्ठामीति। पादयोरन्यं द्वितीयं विष्टरं ददातीति वाक्यशेषः। स चायमुपदेशः प्रक्षाल्य हि पादौ विष्टरे क्रियेते, तस्मात्पाद्योत्तरकालं द्वितीयं विष्टरं ददातीति पाठोऽर्थेन बाध्यते। तथाचोत्तरं सूत्रम्। विष्टर आ.........प्रक्षालयतीति। एकस्मिन्नेव विष्टरे आसीनस्य पादप्रक्षालनम्। ततो द्वितीयो विष्टर इति। 'ब्राह्मण.......... दोहोऽसीति' यदि ब्राह्मणोऽर्घ्यस्तदा दक्षिणं प्रथमं प्रक्षालयेत्। विराजो दोहोऽसीत्यनेन मन्त्रेण। पादार्थमुदकं गृहीत्वा प्रक्षालयत्यर्घ्य एव। 'अर्घं प्रति..........ष्माभिः' इत्यनेन मन्त्रेणार्घ्य एव। लिङ्गादेवावगम्यते आप एवार्घ

इति। 'निनयन्नभिमन्त्रयते समुद्रं वः प्रहिणोमीति' न मन्त्रान्ते निनयनम्। 'आचामत्या-मागन्यशसा' इत्यनेन मन्त्रेण सव्ये पाणौ स्थितं तमेव मधुपर्कं दक्षिणस्यानामिकया त्रिः प्रयौति। अनामि....रुक्षयति' दक्षिणस्यैव, च शब्दात्प्रयौति च। अतश्च प्रतिप्रयवणं निरुक्षणम्। एवं च त्रिर्निरुक्षणं व्यवधानात्प्रतिप्रयवणं मन्त्राभ्यासः। 'तस्य त्रिः प्राश्नाति यन्मधुनो मधव्यमिति' अनेन मन्त्रेण। 'मधुमतीभिर्वा प्रत्यृचं' प्राश्नाति। उच्छिष्टस्यैव दद्यात्' यदवशिष्टं मधुपर्कस्य। 'सर्वं वा प्राश्नीयात् प्राग्वाऽसञ्चरे निनयेत्' इति विकल्पः।

'आचम्य प्राणान्संमृशति' वाङ्म आस्य' इत्येवमादिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम्। अनाचान्तस्यैव प्राणायतनसंमर्शनं मा भूदित्याचम्येति ग्रहणम्। साकाङ्क्षत्वादस्त्वित्य-ध्याहारः। मे इत्यस्य च सर्वत्रानुषङ्गः। अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूरित्यत्र सन्त्वित्यध्याहारः। 'आचान्तोदकाय शासमादाय गौरिति त्रिः प्राहार्घयिता।' प्रत्याह माता रुद्राणामिति' प्रत्याहार्घ्यो मातारुद्राणामित्यमुं मन्त्रम्। तदन्ते च मम चामुष्य च पाप्मान ꣳ हानोमीति प्रयोगः। अमुष्येति चार्घयितुर्नामग्रहणम्। यद्यालभेत पाप्मान ꣳ हनोमीति प्रयोगः। 'अथ यद्युत्सृ .... ब्रूयात्' अत्राप्यमुष्येत्यर्घयितुर्नामादेशः। ॐ उत्सृजत तृणान्यत्त्वित्येतदुच्चैर्ब्रूयात् निगदो ह्ययमिति। शेषमुपांश्वेव। नत्वेवामां सोऽर्घः स्यादधियज्ञमधिविवाहं कुरुतेत्येव ब्रूयात्। यज्ञमधिकृत्य विवाहं चाधिकृत्य कुरुतेत्येवं वक्तव्यम्। पाप्मान ꣳ हनोमि कुरुतेत्येवम्, यस्माद्यज्ञविवाहयोरमांसोऽर्घो न भवतीति स्मरण्। यज्ञविवाहवर्जमन्यत्र पशोरालम्भविकल्पः। 'यद्यप्यसकृत्संवत्सरस्य सोमेन यजेत कृतार्घ्या एवैनं याजयेयुर्नाकृतार्घ्या इति श्रुतेः' परिगतसंवत्सरा अर्घ्या भवन्तीत्युक्तं तदपवादोऽयम्। अत एवावगम्यते सोमेन यक्ष्यमाणा एवर्त्विजोऽर्घ्या नेतरैर्यागैरिति।

आवसथ्य अग्नि का आधान दारकाल-विवाह के समय करना चाहिये। ऐसा द्वितीय कण्डिका में कहा गया है। दाराहरण-विवाह विधि का वर्णन करते समय, वैवाहिक अर्घ्य-अर्घार्ह वर्णन अपेक्षित है। अतः सूत्रकार विवाह विधि वर्णन से पूर्व सभी अर्घार्ह पुरुषों का प्रसङ्गप्राप्त वर्णन तृतीय कण्डिका के प्रारम्भ में करते हैं। तदनु अर्घ का ही एक भाग मधुपर्क विधि भी इसी कण्डिका में वर्णित है—

१. षड् = छः पुरुष, अर्घ्याः =अर्घार्ह-अर्घ प्राप्त करने के अधिकारी, भवन्ति = होते हैं, ये निम्न हैं—१. आचार्यः = उपनयनपूर्वक अन्तेवासियों को वेद का

अध्यापन करने वाला। २. ऋत्विक् = श्रौत एवं स्मार्त यज्ञ (संस्कार) आदि सम्पन्न कराने के लिए ब्रह्मा आदि के रूप में वृत = वरण किया विद्वान् ३. वैवाह्यः = जामाता, ४. राजा = अभिषेक आदि गुणयुक्त प्रजापालन में अधिकृत क्षत्रिय (वर्तमान समय में शपथ ग्रहण किया शासक)। ५. प्रियः = मित्र ६. स्नातकः = ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन समाप्त (पूर्ण) करने वाला स्नातक आचार्य से अर्घ प्राप्त करने का अधिकारी होता है। इति = ये छः पुरुष अर्घ्य हैं।

२. प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुः = ये अर्घार्ह संवत्सर (एक वर्ष बाद) के पश्चात् अर्घ पाने के अधिकारी हैं।

३. यक्ष्यमाणास्तु = किन्तु यज्ञ सम्पादन कराने वाले, ऋत्विजः = ऋत्विज् (संवत्सर से पूर्व भी) अर्घ्य हैं।

४. आसनम् = आसन, आहार्य = अपने बन्धु-बान्धव अथवा अनुचरों द्वारा मंगवाकर, आह = अर्घयिता कहता है। भवान् = आप, साधु आस्ताम् = सुखपूर्वक बैठिये, भवन्तम् = आपकी, अर्चयिष्यामः = अर्चना-पूजा-सत्कार करेंगे।

५. विष्टरं = कुश पुलक (२५ कुशाओं से निर्मित), पद्यं =आसन जिस पर बैठा जाये, पादार्थमुदकम् = पैर धोने के लिए जल, अर्घम् = जल, आचमनीयं = आचमन के लिए जल, दधिमधुघृतं मधुपर्कं = दधि, मधु और घृत मिश्रित मधुपर्क, कांस्ये = कांस्य पात्र में, कांस्येन = कांस्य पात्र से, अपिहितम् = ढके हुए को, आहरन्ति = लावे।

६. अन्यः = अर्घयिता से भिन्न, त्रिस्त्रिः = तीन-तीन बार, विष्टरादीनि = विष्टर से मधुपर्क पर्यन्त पदार्थों का, प्राह = प्रतिदानार्थ कथन करे अर्थात् 'विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्' इस प्रकार कहे।

७. वर आदि अर्घ्य पुरुष, विष्टरं = आसन, प्रतिगृह्णाति = ग्रहण करता है।

८. प्रतिगृहीता 'वर्ष्मोऽस्मि......... दासति'—इति-एनम् = इस मन्त्र का पाठ करता हुआ आसन पर, अभ्युपविशति = पूर्व से ही स्थापित अग्नि के अभिमुख होकर बैठता है।

९. पादयोः = पैरों के लिए, अन्यम् = दूसरा आसन दे। प्रतिगृहीता पूर्ववत् ग्रहण कर 'वर्ष्मोऽस्मि समानानां' मन्त्र का पाठ करते हुए अग्रिम सूत्र विहित पग प्रक्षालन कर इस आसन को पैरों के नीचे रख ले। प्रथम विष्टरः = कुशपुलक है। द्वितीय बैठने के लिए आसन है।

०. विष्टरे आसीनाय = आसन पर बैठे हुए प्रतिग्रहीता (वर आदि) के लिए अर्घयिता पाद प्रक्षालनार्थ उदक 'पाद्यं पाद्यं पाद्यं' कहकर देवे, तब प्रतिग्रहीता ग्रहण कर, सव्यं = बायें, पादं = पैर को, प्रक्षाल्य = प्रक्षालित कर, दक्षिणं = दाहिने पैर को, प्रक्षालयति = धोता है।

११. चेत् = यदि, ब्राह्मण: = अर्घ्य पुरुष ब्राह्मण हो, तब वह, दक्षिणं = दाहिने पैर को, प्रथमम् = पहिले धोवे।

१२. विराजो दोहोऽसि ...... दोह इति = पग प्रक्षालन के समय इस मन्त्र का पाठ करना चाहिये।।

१३. प्रतिग्रहीता अर्घं = अर्घ-जल को, प्रतिगृह्णाति = ग्रहण करता है, आप: स्थ० = इस मन्त्र का पाठ करते हुए।

१४. निनयत् = अर्घ को पूर्व या उत्तर दिशा में भूमि पर गिराता हुआ, समुद्रं व: .... पय इति-इस मन्त्र का, अभिमन्त्रयते = पाठ करता है।

१५. आ मागन् .... तनूनामिति = मन्त्र का पाठ करता हुआ, आचामति = आचमन करता है।

१६. मित्रस्य त्वेति = मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे-इस मन्त्र का पाठ करते हुए, मधुपर्कं = मधुपर्क को, प्रतीक्षते = देखता है।

१७. देवस्य त्वेति = देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि मन्त्र पढ़ते हुए अर्घयिता द्वारा प्रदत्त मधुपर्क को ग्रहण करता है।

१८. सव्ये = बायें, पाणौ = हाथ में, कृत्वा = लेकर, दक्षिणस्य = दाहिने हाथ की, अनामिकया = अनामिका से "नम: श्यावास्यायान्नशने यते आबिद्धं तत्ते निष्कृन्तामि" इति = इस मन्त्र का पाठ करते हुए, त्रि: प्रयौति = मधुपर्क को तीन बार मिलाता है।

१९. अनामिका अङ्गुष्ठेन च = अनामिका और अंगूठे से; त्रि: = तीन बार, निरुक्षयति = मधुपर्क को पात्र से बाहर छिटकाता-छींटे देता है।

२०. यत०......... असानि इति = "यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि" इस मन्त्र का पाठ करते हुए, तस्य = उस मधुपर्क का, त्रि: प्राश्नाति = तीन बार भक्षण करता है।

२१. वा = अथवा, मधुमतीभिः = मधुमती संज्ञक तीन ऋचाओं से, प्रत्यृचम् = प्रत्येक ऋचा पाठ पूर्वक एक-एक बार (कुल तीन बार) प्राशन करे।

२२. पुत्राय = ऋत्विक् अपने पुत्र, अन्तेवासिने वा = आचार्य अपने शिष्य जो, उत्तरत आसीनाय = यज्ञवेदी के उत्तर की ओर बैठे हुए को, उच्छिष्टं = उच्छिष्ट, अवशिष्ट मधुपर्क, दद्यात् = देवे।

२३. सर्वं वा = अथवा वर सम्पूर्ण मधुपर्क का, प्राश्नीयात् = भक्षण करे अर्थात् यदि मधुपर्क अवशिष्ट रहे, तब अवशिष्ट मधुपर्क अपने पुत्र और आचार्य अपने शिष्य को दें। क्योंकि वर सम्बन्धी कोई विकल्प सूत्रकार ने नहीं दिया है, अतः वर सम्पूर्ण मधुपर्क का प्राशन करे।

२४. वा = अथवा अर्थात् यदि मधुपर्क अवशिष्ट रह जावे तब उसे, प्राग् = पूर्व दिशा में, असञ्चरे = सञ्चार शून्य स्थान पर, निनयेत् = गिरा देवे।

२५. आचम्य = आचमन करके (मधुपर्क प्राशन के पश्चात् आचमन करना चाहिये), प्राणान् = प्राण-तत्तत् इन्द्रिय-प्राणायतन का, सम्मृशति = जल सहित स्पर्श करता है, 'वाङ्मे आस्ये०........... 'सहेति' = वाङ्मे आस्ये इत्यादि कहकर अर्थात् वाङ्मे आस्ये (अस्तु) इत्यादि कहता हुआ जल से तत्तत् इन्द्रिय का स्पर्श करता है।

२७. प्रत्याह = प्रतिग्रहीता अर्घ्य कहे—'माता रुद्राणां .... वधिष्ट' = माता रुद्राणां = रुद्रों की माता, दुहिता वसूनां = वसुओं की पुत्री, स्वसादित्यानाम् = आदित्यों की बहन (यह गौ), अमृतस्य = अमृत का, नाभिः = केन्द्र है। चिकितुषे = विवेकशील, जनाय = मनुष्य के लिए, प्र नुवोचं = मैं (अर्घ्य) अच्छी प्रकार-स्पष्टतः कहता हूँ कि अदितिं = अखण्डनीया (दो अवखण्डने से दिति न दिति अदिति) अनागाम् = निरपराध, गाम् = गौ को, मा वधिष्ट = मत मारो-कष्ट मत पहुँचाओ। मम च०.......... लभेत-यदि आलभेत = यदि गौ का आलभन = स्पर्श करे तब, मम च अमुष्य च = मेरा अर्थात् अपना स्वयं का और प्रदाता का पाप्मानं = पाप को, हनोमि-इति = नष्ट करता हूँ ऐसा कहे।

२८. अथ यद्युत्सिसृक्षेत् = गौस्पर्श के अनन्तर यदि गौ का उत्सर्ग करना चाहे तब-मम चामुष्य च पाप्मा हत = मेरा अपना और प्रदाता का पाप नष्ट हो तो ऐसा कहकर-ओमुत्सृजत = ओम् छोड़ दीजिये, तृणानि = तिनके अर्थात् घास,

अत्तु इति = भक्षण करे ऐसा ब्रूयात् = कहे। अर्थात् अर्घ्य यदि उस गौ को अपने पास न रखना चाहे तब वह 'ओम् उत्सृजत तृणान्यत्तु' ऐसा कहकर उस गौ को प्रदाता को ही छोड़ देने को कह दे, क्योंकि—लोकमर्यादा आदि के कारण प्रदाता दी गयी वस्तु को स्वयं तो वापिस लेगा नहीं, ऐसे में वह गौ जंगल में विचरती हुए तृण = घास-फूस ही भक्षण करेगी-इसीलिए सूत्रकार ने तृणानि अत्तु का प्रयोग किया है।

२९. न त्वेव .... स्यात्-अर्घः =अर्घ, अमांसः = अस्वास्थ्यकर, न त्वेव = नहीं ही, स्यात् = होवे।

३०. अधियज्ञमधिविवाहं = यज्ञ और विवाह के सन्दर्भ में (स्वास्थ्यवर्धक-रुचिकर अर्घ/अथवा-गौ की उपस्थिति-दान-स्पर्श), कुरुत = करे, इत्येव ब्रूयात् = ऐसा ही कहना चाहिये।

३१. यदि = यदि संवत्सरस्य = संवत्सर के (मध्य में), असकृत् = एकाधिक बार, सोमेन = सोम से, यजेत = यज्ञ करे अर्थात् सोमयाग करे, (तब) अपि = भी, कृताघ्र्याः = कृताघ्र्यः—जिन्हें अर्घ प्रदान (जब-जब भी यज्ञ होगा तब-तब अर्घ देय है) किया गया है, ऐसे ऋत्विक्, एव = ही, एनं = इस यजमान का, याजयेयुः = यज्ञ सम्पादन करावें, न = नहीं, अकृताघ्र्यः = अकृताघ्र्य-जिन्हें अर्घ नहीं दिया गया है—ऐसे ऋत्विक् करावें, इति श्रुतेः = ऐसा शास्त्र का आदेश है।।३।।

टिप्पणी-१. षट् अर्घ्याः-सूत्र में पठित षट् शब्द प्रिय एवं स्नातक इन दोनों के पृथक्त्व का ज्ञापक है। यदि सूत्र में षट् पद न पढ़ते तब 'प्रियः' पद 'स्नातक' का विशेषण समझा जा सकता था। ऐसे में अर्घ्य पुरुष १. आचार्य, २. ऋत्विक्, ३. वैवाह्य-वर, ४. राजा और ५. प्रिय स्नातक—इस प्रकार ये पाँच ही होते। अतः प्रिय एवं स्नातक पृथक्-पृथक् परिगणित किये जाएं इसीलिए षट् पद पठित है।

२. प्रतिसंवत्सरान्-यहाँ 'प्रति उपसर्ग' अति के अर्थ में है। अतः प्रतिसंवत्सरान् का अर्थ—अतिसंवत्सरान् = सवंत्सरम् अतीत्य आगतान् है। सूत्रकार ने आचार्य आदि को संवत्सर के पश्चात् आने पर अर्घ्य माना है। संवत्सर के पूर्व आगमन पर अर्घयिता के लिए कामचार-उसकी इच्छा पर निर्भर है कि वह चाहे

तो अर्घविधि करे अथवा नहीं करे, किन्तु अर्घविषय में ऋत्विक् को इन पाँच से पृथक् करने के लिए ही-पृथक् सूत्र—'यक्ष्यमाणास्त्वृत्विजः' कहा है।

३. विष्टरं पद्यम्–कर्क ने विष्टर से आसन्दी, चौकी तथा पद्यम् से आसन का ग्रहण किया है। तदनुसार सूत्र ६—७ द्वारा आसन्दी तथा सूत्र ९ द्वारा आसन प्रदान का विधान (अर्घ्य पद प्रक्षालन कर इस द्वितीय आसन पर बैठता है।) किया है। जयराम, हरिहर एवं गदाधर ने प्रथम विष्टर से २५ दर्भ से बने कुश पुलक तथा द्वितीय से आसन ग्रहण किया है।

४. त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि–विष्टर आदि का तीन-तीन बार उच्चारण करने के साथ ही 'प्रतिगृह्यताम्' इस पद का अध्याहार करके निम्न प्रकार प्रयोग होता है—(क) विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्। (ख) पद्यं पद्यं पद्यं प्रतिगृह्यताम्। (ग) अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम्। (घ) आचमनीयम् आचमनीयम् आचमनीयं प्रतिगृह्यताम्। (ङ) मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्। अर्घ्य प्रत्येक अर्घपदार्थ विष्टर आदि के लिए प्रतिगृह्णाति-ऐसा कहकर ग्रहण कर लेता है।

विष्टर ग्रहण–गृह्णाति एवं अभ्युपवशति के मध्य में वर्ष्मोऽस्मि मन्त्र पढ़ा गया है। मन्त्र पाठ आसन ग्रहण में हो अथवा उपवेशन में ऐसी शंका हो सकती है? मन्त्रगत 'इमं तमभितिष्ठामि' इस लक्षणानुरोध से मन्त्र पाठ उपवेशन = बैठते समय करना चाहिये।

५. मधुमती ऋचाएँ–

(क) मधुवाताऽऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्न सन्त्वोषधीः॥

(ख) मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

(ग) मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

६. प्राणायतनस्पर्श–(क) नसोः, अक्ष्णोः कर्णयोः, बाह्वोः तथा ऊर्वोः के साथ 'मे' पद अनुषक्त होता है 'वाङ्मे आस्ये तथा प्राणः, चक्षुः श्रोत्रम् बलम् एवं ओजः के साथ 'अस्तु' पद का अध्याहार किया जाता है। इस प्रकार—वाङ्मे आस्येऽस्तु, नसोर्मे प्राणोऽस्तु, अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु, कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु, बाह्वोर्मे बलमस्तु, ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु पढ़ा जाता है तथा सह के साथ सन्तु का अध्याहार करके—अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु-पाठ हो जाता है।

(ख) जयराम-(संमर्शनं जलेन स्पर्शनम्), हरिहर (.....प्राणानिन्द्रियाणि संमृशतिसजलमालभते) ने सजल अङ्ग स्पर्श माना है, गदाधर ने सजल स्पर्श का यह कहते हुए खण्डन किया है कि—सूत्र में जल शब्द ही नहीं है, साथ ही दोनों हाथों से अङ्ग स्पर्श (गदाधर के परवर्ती विश्वनाथ ने इसी पक्ष दोनों हाथों को माना है) भी स्वीकार नहीं किया है। तद्यथा—............''हरिहरेण प्राणायतन स्पर्शः सजलहस्तेन कर्त्तव्य इत्युक्तं तदतीव मन्दम्। नह्यत्र सूत्रे जल ग्रहणमस्ति। सर्वाङ्गालम्भे उभाभ्यां हस्ताभ्यामालम्भ उक्तः सोऽपि न युक्तः।''

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि सामान्य प्रकरण में इन्हीं पारस्करीय वचनों से सजल अङ्ग स्पर्श करने का विधान किया है।

६. शासम्-शासु अनुशिष्टौ-भ्वा, प०

७. **आलभन-आलभेत**—आ + लभ् वि०आ० (डुलभष् प्राप्तौ भ्वा०आ०) प्राप्त्यर्थक लभ् धातु-स्पर्शार्थ में भी व्यवहृत होती है। लभेत का अर्थ—प्राप्त करे-स्पर्श करे-ऐसा करने में किसी को भी आपत्ति नहीं होती है, किन्तु अर्घविधि तथा कर्मकाण्ड में प्रायः सभी भाष्यकार वधार्थक व्याख्या करते हैं। हम अनुपद ही कुछ ऐसे स्थल उद्धृत कर रहे हैं, जिन्हें-सम्मुख रखकर विचार करने पर स्यात् कुछ स्पष्टीकरण सम्भव हो।

(क) (i) का० १. क० ८ सूत्र ८ **हृदयमालभते**—तस्या हृदयमालभते स्पृशति वरः—जयरामः 'तस्या हृदयमालभते वरः स्पृशति'-हरिहर। (ii) का०१,क० ११ सूत्र ९-दक्षिणाठं. समधिहृदयमालभते'-चतुर्थी कर्म प्रसंग में हरिहर एवं गदाधर ने आलभते का अर्थ स्पृशति किया है। तद्यथा-'हृदयमालभते हृदयं वक्षः आलभते स्पृशति'-हरिहरः।.....तेनैव हस्तेन हृदयमालभते स्पृशति-गदाधरः। यहाँ सूत्र २७ में आङ् उपसर्ग पूर्वक लभ् धातु का प्रयोग है। सामान्यतः अर्वाक्, ईषद्, क्रियायोग, मर्यादा, अभिविधि अर्थों में आङ् का प्रयोग होता है। उक्त प्रसिद्ध एवं प्रचलित अर्थों के अतिरिक्त आभिमुख्य, करण, ग्रहण, स्पर्श, व्यापृति आदि पैंतालीस अर्थों में आङ् का सोदाहरण प्रयोग अव्ययकोश पृ० ७९—८३ पर द्रष्टव्य है—

''आङ् आभिमुख्य करणे ग्रहणे श्लेषधर्षणे।
स्पर्शावष्टम्भोपरमे भृशेकृच्छ्रादि कर्मणोः।''

स्पर्शे—'**गामालभ्यार्कमीक्ष्य** च मनु० ५.८७' (**नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वाविप्रो विशुद्ध्यति। आचम्यैव तु निः सनेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा॥**

मेधातिथि आदि सभी प्रसिद्ध भाष्यकार आलभन का अर्थ स्पर्श करते हैं। अशौचप्रकरणे।) तथा **कपिञ्जलान् आलभेत।'** ''चरक सूत्र स्थान अ० १० अतिसारप्रसङ्ग आलभनशब्दप्रयोग:।

(ख) कात्यायन श्रौतसूत्र के दर्श-पूर्णमासेष्टि 'प्रसङ्ग में आङ्पूर्वक लभ का प्रयोग—'आलभते' प्रक्षाल्य पात्रं **नाभिमालभते**'' या अप्सु......... इति २.२.१८ ब्रह्मा प्राशित्रहरण पात्र का प्रक्षालन करे या अप्सु०.........'' मन्त्र पाठ करके नाभि का स्पर्श करता है। उपलब्ध है। वहाँ इसे स्पर्शार्थक ही माना जाता है। यह विचारणीय है कि ब्रह्मा से सम्बद्ध आ + लभ स्पर्शार्थक और गौ से सम्बद्ध वधार्थक क्यों माना जा रहा है? निरीह गौ के सदृश ब्रह्मा की नाभि का छेदन स्वीकारने में भाष्यकारों के सामने कौन सी बाधा आ खड़ी होती है? पृष्ठ के पृष्ठ काले करने वाले भाष्यकार यहाँ मौन क्यों साध लेते हैं? इस पर सुधीजन विचार करें।

(ग) वाल्मीकीय रामायण के दो स्थल उद्धृत हैं, जहाँ आङ्पूर्वक लभ् धातु का 'आलभे' रूप प्रयुक्त है। वाल्मीकि के प्रसिद्ध टीकाकार गोविन्दराज (भूषण टीका) ने स्पर्श अर्थ किया है। तद्यथा-(i) रामः सौमित्रिं प्रति-

भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि **सत्येनायुधमालभे**।।

अयो० ९७.६-आलभे स्पृशामि। स्पृष्ट्वा शप इत्यर्थः। सत्येनेति मदुक्तं यथा सत्यं भवति तथा आयुधं स्पृशामीत्यर्थः-गोविन्दराजः।

(ii) त्रिशिरः खरं प्रति-

प्रतिजानामि ते सत्यमा**युधं चाहमालभे**।
आलभे स्पृशामीति गोविन्दराजः।

(घ) हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र के जातकर्म २.३.८ तथा आग्रहायणी कर्म २.१७.४ इन दो स्थलों पर 'ततः पाणी प्रक्षाल्य **भूमिमालभते**' प्रयोग उपलब्ध है। यहाँ निश्चय ही स्पर्श के अतिरिक्त अन्य अर्थ सम्भव नहीं है। इस प्रकार सर्वत्र आलभते का स्पृशति अर्थ ही उचित है।

८. **प्रसङ्ग**—तृतीय कण्डिका का वर्ण्य विषय अर्घ है। सूत्रकार ने प्रसङ्ग प्राप्त सर्वप्रथम अर्घार्ह पुरुषों का वर्णन कर—आसन, पाद प्रक्षालनार्थ जल,

आचमनीय का वर्णन किया है। वस्तुतः यह सब अर्घ का प्रथम भाग है। द्वितीय एवं मुख्य भाग मधुपर्क है। सूत्रकार ने मधुपर्क के पदार्थों का नामोल्लेख किया है—१. दधि, २. मधु, ३. घृत, तीनों पदार्थ स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्युत्तम कहे जा सकते हैं। दधि एवं घृत का मूल गौ है। ये पदार्थ गौ की रक्षा कर ही प्राप्त किये जा सकते हैं, उसे मारकर नहीं। अतः वध विषयक विचार का तो यहाँ प्रसङ्ग भी उपस्थित नहीं होता है।

९. **वदतोव्याघात दोष**—अर्घ्य गौ ग्रहण कर—गौ को रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की बहिन और अमृत की नाभि = केन्द्र कहता है। वह विवेकशील व्यक्ति को अदिति = अखण्डनीय और निरपराध गौ की रक्षा का आदेश (मा वधिष्ट) देता है। ऐसे वचनों का कथन करके—वध प्रसङ्ग उठाना—वदतोव्याघातदोष है। यहाँ वस्तुतः आलभेत का अर्थ स्पर्श करना है—''मम चामुष्य च पाप्मानं हनोमीति यद्यालभेत' का अभिप्राय—गौ स्पर्श-सेवा रक्षा से अपने प्रतिग्रहीता और प्रदाता दोनों के पाप = अमंगल नष्ट होने का संकल्प-विचार करने की बात है। यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि वेद में अनेकत्र गौ को अघ्न्या (अहन्तव्या) न मारने योग्य कहा गया है।

१०. **अमांस अर्घ**—(क) 'न त्वेवामा ꣳ सोऽर्घः स्यात्' २९ प्रस्तुत सूत्र का भाष्य करते समय कर्क ने..... यस्माद्यज्ञविवाहयोरमांसोऽर्घो न भवतीति स्मरणम्। यज्ञ विवाह वर्जमन्यत्र पशोरालम्भ विकल्पः। कहकर यज्ञ एवं विवाह में माँसयुक्त अर्घ का विधान तथा यज्ञ विवाह के अतिरिक्त पश्वालम्भ का विकल्प प्रतिपादित किया है।

(ख) जयराम ने यज्ञ विवाह में पश्वालम्भ को आवश्यक, किन्तु कलि में गवालम्भ का प्रतिषेध मानकर गौ प्रतिनिधि रूप में स्मार्त पशु अथवा पायस-खीर का अर्घ माना है—यज्ञविवाहयोरेवालम्भस्यावश्यकत्वेन विधानात् कलौ च गवालम्भ स्यैव प्रतिषेधात् गोप्रतिनिधित्वेन पश्वन्तर स्मार्तपशुः पायसं वा भवतीति।

(ग) हरिहर ने—'यद्यप्येवं मधुपर्के गवालम्भ आचार्येणोक्तः तथापि अस्वर्ग्य-त्वाल्लोकविद्विष्टत्वाच्च कलौ न विधेयः।'कहकर मांसयुक्त अर्घ का निषेध किया है।

(घ) गदाधर ने—गौरिति त्रिः प्राह० सूत्र २६ के अनन्तर— 'आलभ्यतामि-त्यध्याहारः'—कहकर आलभ्यताम् का अध्याहार किया है। साथ ही यज्ञ विवाह में

आलम्भ नियम, किन्तु कलि में निषेध होने और उत्सर्ग पक्ष की यज्ञ विवाह में अप्रवृत्ति मानकर कलि में—गौ-गौँ गौः प्रतिगृह्यताम्' की अप्रवृत्ति मानी है। तद्यथा......."अतश्चालम्भनियमो यज्ञविवाहयोः। गोरालम्भश्च कलिवर्जिते काले भवति' यज्ञाधानं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्। देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्' इतिपराशरस्मृतेः। अतश्च गवालम्भस्य कलौ निषिद्धत्वादुत्सर्गस्य च यज्ञ विवाहयोरप्राप्तत्वाद् **गौरित्युच्चारणादि यज्ञविवाहयोः कलौ न प्रवर्तते।"**

(ङ) विश्वनाथ ने—आलम्भस्तु कलौ निषिद्धत्वान्नादरणीयः। कहकर कलि के कारण आलम्भन का निषेध किया है।

(च) **मांस**—मन् धातु से-मनेर्दीर्घश्च—उणादि ३.६४ सूत्र से मांस शब्द निष्पन्न होता है। 'मन्यते ज्ञायतेऽनेन तत् मांसम् शरीरोपचयो वा' महर्षि दयानन्द-उणादि वृत्ति। अर्थात् बुद्धि एवं बलवर्धक पदार्थ मांस शब्द से अभिप्रेत है। मांस शब्द केवल Meat—चर्बी का ही वाचक नहीं है। इसे यदि केवल Meat का ही वाचक मानें तब सुश्रुत, चरक, शतपथ आदि के अनेक स्थलों की संगति लगाना सरल नहीं होगा। तद्यथा—

केसरं मातुलुंगस्य लघुशेषमतोऽन्यथा शेषं त्वङ्मांसम्-चरक सूत्रस्थान अ०२७

इसी मातुलुंग (एक प्रकार का नीबू) के विषय में सुश्रुत—

लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुंगमुदाहृतम्।

त्वक् तिक्ता दुर्जरा तस्य कृमिवातकफापहा।।

स्वादुशीतं गुरु स्निग्धं मांसं मारुत पित्तजित्—सूत्रस्थान ४६.११—१२ वहाँ मातुलुंग(नीबू) के मांस को वात पित्तनाशक कहा है। इसी विषय में हारीत संहिता-

श्वास कासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम्

दीपनं लघुरुक्षञ्च मातुलुंगमुदाहृतम्

त्वक् तिक्तादुर्जरा तस्य कृमिवातकफापहा

स्वादुः शीता गुरुः स्निग्धा त्वङ् मांसं वातपित्तजित् अ०१०.

यहाँ मांस निश्चित रूप से Meat नहीं हैं। ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ यह भिन्न अर्थ का बोधक है। पुनः यहाँ अब स्पष्टतः अर्घ सामग्री में दधि, घृत और मधु नामोपात्त हैं, तब प्रकृत सूत्र का ऊपर किया अर्थ-अर्घ अस्वास्थ्यकर नहीं ही

होवे अर्थात्—अर्घ मधुपर्क निश्चित ही स्वास्थ्यवर्धक बलकारक (एवं बुद्धिवर्धक) होना चाहिये, उचित है।

इति प्रथमकाण्डे तृतीया कण्डिका ✪

चतुर्थी कण्डिका

विवाह-विधिः

चत्वारः पाकयज्ञा हुतोऽहुतः प्रहुतः प्राशित इति॥१॥ पञ्चसु बहिःशालायां विवाहे चूडाकरण उपनयने केशान्ते सीमन्तोन्नयन इति॥२॥ उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय॥३॥ निर्मन्थ्यमेके विवाहे॥४॥ उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्॥५॥ त्रिषूत्तरादिषु॥६॥ स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां वा॥७॥ तिस्रो ब्राह्मणस्य वर्णानुपूर्व्येण॥८॥ द्वे राजन्यस्य॥९॥ एका वैश्यस्य॥१०॥ सर्वेषाᳬं शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जम्॥११॥ अथैनां वासः परिधापयति जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतं च जीव शरदः सुवर्च्चारयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वास इति॥१२॥ अथोत्तरीयम्। या अकृन्तन्नवयं या अन्तान्वत। याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्सव वास इति॥१३॥ अथैनौ समञ्जयति। समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। संमातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नाविति॥१४॥ पित्रा प्रत्तामादाय गृहीत्वा निष्क्रामति। यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनु पवमानो वा। हिरण्यपर्णो वैकर्ण स त्वा मन्मनसां करोत्वित्यसाविति॥१५॥ अथैनौ समीक्षयति। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्च्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः। सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽदददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्। सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्या इति॥१६॥ ॥४॥

(कर्कः)—'चत्वारः पाकयज्ञाः' कोऽस्याभिसंबन्धः विवाहः प्रकान्तः, तत्र च बहिः शालायां कर्मेष्यते, तेनान्यत्रापि यत्र यत्र बहिःशाला तदर्थमभिधीयते। चतुष्प्रकारा

पाकयज्ञाः भवन्तीति शेषः। तानाह'हुतोऽहुतः प्रहुतः प्राशित इति' यत्र होम एव भवति स हुत उच्यते यथा अक्षतहोमः। अहुतश्च यत्र होमो नास्ति यथा स्रस्तरारोहणम्। प्रहुतो यत्र होमो बलिहरणं च यथा पक्षादिषु। प्राशितो यत्र प्राशनमेव न होमो न च बलिहरणम्। यथा सर्वासां पयसि पायसꣳ श्रपयित्वा ब्राह्मणान्भोजयेदिति। 'पञ्चसु बहिःशालायाम्' कर्म भवति। 'विवाहे.......न्तोन्नयन इति' एतेषु बहिःशाला कार्या। 'उपलिप्त....... समाधायेति' उपलेपनपदि शक्यमेवावक्तुं परिसमूहनादेरुक्तत्वादतः परिसमूहनव्युदासार्थमिति केचित्। अपरे तु-गृह्यस्थालीपाक-कर्मणि परिसमूहनाद्युक्तम् अगृह्यार्थोऽयमारम्भः। **विवाहादयश्चागृह्याग्निविषयाः,** येनैवाहितोऽग्नितदीयमेव हि कर्म तत्रेष्यते उपग्रह विशेषात्। तस्मादगृह्यार्थमुद्धतावोक्षितग्रहणमिति। तदेतदपि नोपपद्यते। यत्र क्वचिद्धोम इत्यनेनात्रापि प्राप्तत्वात्। कथं तर्ह्येतत्। अयमभिप्रायः सूत्रकारस्य। यत्र क्वचिद्धोम इत्यनेनाप्राप्तिः परिसमूहनादीनाम्, अग्न्यर्थत्वात्तेषां यत्र यत्राग्नेः स्थापनं तत्र तत्रैते कर्त्तव्या इति स्मृतिः। तथा च लिङ्गम् उद्धते अवोक्षितेऽग्निमादधाति। एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोम इत्यनेन स्थालीपाकादिषु परिसमूहनादेरप्राप्तिप्रज्ञप्त्यर्थमिदमुद्धतावोक्षितग्रहणम्। 'निर्मन्थ्यमेके विवाह' निर्मन्थ्योऽचिरनिर्मथित उच्यते। सर्व एव ह्यग्निमन्थनाज्जायते। यथा नवनीतेन भुङ्क्ते इत्यचिरदग्धेनेति गम्यते। एके लौकिकमेवाग्निमिच्छन्ति।'उदगयन.......पुण्याहे' दैवानि कुर्वीतेति वाक्यशेषः। देवानां चोदगयनमिष्यते। तद्धि देवानामिति। स यत्रोदङावर्तते देवेषु तर्हि भवतीति देवानामुदगयनम्। न च देवा उदगयने न किंचित्कुर्वन्ति। तस्माद्दैवं कर्म तत्रोचितमिति गम्यते। आपूर्णमाणपक्षो गृहीतः सोऽपि देवानामेव य एवापूर्यतेऽर्द्धमासः स देवानामित्यनेन। पुण्याहस्तु स्मरणात्। सर्वं दैवविषयमेतदभिधीयते। 'कुमार्या...... षूत्तरादिषु' नक्षत्रेषु। कुमारीग्रहणं विंशतिप्रसूता व्युदासार्थम्। स्मर्यते हि विंशति प्रसूतायाः पुनर्विवाहः। 'स्वातौ ......वा' इति विकल्पः' 'तिस्रो....... पूर्व्येण' भार्या भवन्ति। वर्णानुपूर्व्यग्रहणाच्च न व्युत्क्रमेणेति। 'द्वे राजन्यस्य' वर्णानुपूर्व्येणेति वर्तते। 'एका वैश्यस्य' सर्वेषा ....वर्जम्' सर्वेषां वर्णानामेवैके शूद्रामिच्छन्ति। एके नेच्छन्ति नह्यस्या धर्मकार्येष्वधिकार इति। तथा च यास्काचार्याः- रामा रमणायोपेयते न धर्मायेति। एके तु रमणार्थतयेच्छन्ति। तथा चाह—अग्निं प्रथमं चित्वा न रामामुपेयादिति। प्राप्तिपूर्वको हि प्रतिषेधो भवति तस्माद्विकल्प एवायमिति। 'अथैनां........ धत्स्वेति' अनेन मन्त्रेण। मन्त्रश्च कारितार्थे। परिधापयिता चात्र वर

एव। अपरे त्वध्वर्युमत्र कर्तारमिच्छन्ति परिभाषितं ह्येतदध्वर्युः कर्मसु वेदयोगादिति। नैतदित्यपरे। नहि स्मार्तेष्वध्वर्योः कर्तृत्वं, समाख्या हि श्रौतेष्वध्वर्योः कर्तृत्वमिष्यते न चात्र समाख्याऽस्ति वेदयोगाभावात्। स्मरणादेव हि स्मृतीनां प्रामाण्यमुक्तम्। अतः समाख्याऽभावात्स्वयमेव कर्तृत्वम्। ननु च पाकयज्ञेषु दक्षिणा श्रूयते पूर्णपात्रो दक्षिणा वरो वेति। दक्षिणाशब्दश्च परिक्रयार्थे द्रव्ये वर्तते। न च परिक्रेयमन्तरेण परिक्रयो भवति। तस्मादन्यस्य कर्तृत्वमिति। नैतदेवम्। अस्ति ह्यत्रान्योऽपि ब्रह्माख्यः कर्ता परिक्रेतव्यस्तदर्थः परिक्रयोऽयमिति क्षीणार्थापत्तिः। अपि च परकीये कर्मणि परो नैव प्रवर्तते वचनमन्तरेण श्रौतेषु च समाख्ययाऽन्यस्य कर्तृत्वमिति। न चेह समाख्याऽस्ती-त्युक्तम्। वेदमूलत्वेऽपि हि स्मृतीनां समाख्याऽपरिज्ञानादकर्तृनियमः। श्रौतेषु तु परिक्रयाऽऽम्नानादन्यस्य कर्तृत्वमिति तदुक्तम्। अपि च परकर्तृत्वे सा मामनुव्रता भवेत्येवमादीनि मन्त्र लिङ्गानि विरुध्यन्ते। 'अथोत्तरीयम् या अकृन्तन्न वयम्' इत्यनेन मन्त्रेण परिधापयतीत्यनुवर्तते। 'अथैनौ समञ्जयति' समञ्जन्तु विश्वेदेवा इत्यनेन मन्त्रेण। सत्यपि कारितार्थत्वे वरस्यैव मन्त्रपाठो मन्त्रलिङ्गात् कारयितृत्वं च सन्निधानात्कन्यापितुः। सन्निहितोऽह्यसौ प्रदातृत्वात्। 'पित्रा प्रत्तामादाय गृहीत्वा निष्क्रामति यदैषि मनसा' इत्यनेन मन्त्रेण। आदाय गृहीत्वेति चोभयं न वक्तव्यम्। उच्यते च किमर्थं तत्? अप्रतिग्रहस्यापि प्रतिग्रहविधिना दानं यथा स्यादिति। असाविति कन्यानामग्रहणं मन्त्रान्ते। 'अथैनौ........घ्न्येधीति' समीक्षणक्रियां कारयति। कारिते चाध्येषणा परस्परं समीक्षेथामिति। कारयितृत्वं कन्यादातुः संनिधानात्। मन्त्रस्तु वरस्यैव मन्त्रलिङ्गात्।।४।।

१. पाकयज्ञाः = पाकयज्ञ (जिस अग्नि में ओदन आदि 'चरु, पुरोडाश' पकाया जाता है, वह पाक-गृह्य अग्नि है। उस पाक गृह्याग्नि में सम्पाद्यमान यज्ञ-कर्म), चत्वारः = चार (प्रकार के) हैं।

(१) हुतः = हुत (जिसमें आहुति दी जाती है, जैसे—सायं प्रातर्होम)

(२) अहुतः = अहुत (जिसमें आहुति नहीं दी जाती है, जैसे—स्रस्तरारोहण)

(३) प्रहुतः = प्रहुत (जिसमें आहुतिदान के साथ-साथ बलिकर्म भी होता है, जैसे—पक्षादिकर्म)

(४) प्राशित इति = प्राशित (जहाँ होम, बलिहरण न होकर मात्र प्राशन ही होता है, जैसे—ब्राह्मण भोजन)।

२. पञ्चसु = पाँच कर्मों में, बहिः शालायां = (घर से) बाहर शाला बनाकर अर्थात् निम्न पाँच कर्म घर से बाहर शाला-मण्डप बनाकर सम्पादित करने चाहियें। पाँच कर्म हैं—विवाहे = विवाह, चूडाकरण, उपनयने = उपनयन, केशान्ते = केशान्त-मुण्डन, सीमन्तोन्नयने = सीमन्तोन्नयन, इति-ये पाँच कर्म-संस्कार घर से बाहर मण्डप बनाकर करे।

३. उपलिप्ते = भूमि का उपलेपन, उद्धतावोक्षिते = भूमि को खुरचकर साफ करके, अग्निम् = अग्नि को, उपसमाधाय = स्थापित करके अर्थात् मण्डपान्तर्गत भूमि का उपलेपन आदि करके अग्नि स्थापन कर उक्त संस्कार करे।

४. विवाहे = विवाह में, निर्मन्थ्यमेके = कुछ आचार्यों के मत में अरणिमन्थनोत्पन्न अग्नि में (विवाह संस्कार सम्पादन) हो।

५. उदगयने = उत्तरायण में, आपूर्यमाणपक्षे = शुक्ल पक्ष में, पुण्याहे = शुभ दिन, कुमार्याः = कुमारी कन्या का, पाणि = पाणि/हाथ, गृह्णीयात् = ग्रहण करे।

६. त्रिषु-त्रिषु = तीन-तीन, उत्तरादिषु = उत्तरा आदि नक्षत्रों में (पाणि-ग्रहण करे) अर्थात् (क) उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, (ख) उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, (ग) उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी नक्षत्रों में पाणिग्रहण करना चाहिये।

७. वा = अथवा, स्वातौ = स्वाति, मृगशिरसि = मृगशिरा, रोहिण्यां = रोहिणी (नक्षत्रों में विवाह करे) में।

८. तिस्रः = तीन कन्या, ब्राह्मणस्य = ब्राह्मण के लिए, वर्णानुपूर्व्येण = वर्णानुपूर्वीक्रम से अर्थात् ब्राह्मण के लिए, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों की कन्याएँ विवाह योग्य हैं।

९. द्वे = दो (वर्ण की कन्या), राजन्यस्य = क्षत्रिय के लिए अर्थात्-क्षत्रिय के लिए, क्षत्रिय एवं वैश्य इन दो वर्णों की कन्याएँ विवाह योग्य हैं।

१०. एका = एक (अपने ही वर्ण की कन्या), वैश्यस्य = वैश्य के लिए (विवाह योग्य) है।

११. एके = कुछ आचार्य, सर्वेषां = सभी वर्णों के पुरुषों के लिए, शूद्रामपि = शूद्रा को भी (विवाह योग्य मानते हैं, किन्तु वह विवाह), मन्त्रवर्जम् = मन्त्ररहित हो।

१२. अथ = अग्नि स्थापन के अनन्तर वर-जरां गच्छ..........वास इति = जरां गच्छ० इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ, वासः = वस्त्र, परिधापयति =धारण कराता है।

१३. अथ = वस्त्र धारणानन्तर वर, या अकृन्तन्नवयं .... वास इति = या अकृन्तन्.... इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक, उत्तरीयम् = उत्तरीय/ओढनी देवे।

१४. अथ = इसके बाद (कन्या का पिता), एनौ-वर और कन्या को, समञ्जयति = सम्मुख करता है। वर- 'समञ्जन्तु........ नाविति' = समञ्जन्तु विश्वे देवा इस मन्त्र का पाठ करता है।

१५. वर, पित्राप्रत्ताम् = कन्या के पिता द्वारा (कन्यादान के मिष से) दी गयी कन्या को, आदाय = ले, यदैषि मनसा........ इति = यदैषि मनसा०—मन्त्र पाठ करता हुआ और मन्त्रान्त में कन्या का नाम ले, गृहीत्वा = कन्या का हाथ पकड़कर, निष्क्रामति = संस्कारार्थ घर से बाहर बने मण्डप की ओर जाता है।

१६. अथ = निष्क्रमण के पश्चात् (कन्या पिता) एनौ = वर-कन्या को (परस्पर), समीक्षयति = समीक्षण कराता है। वर—'अघोर चक्षु०.', सोमः प्रथमो....जाः', 'सोमोऽदद्... इमाम्', 'सा नः.... इति' इन मन्त्रों का पाठ करता है।

टिप्पणी—१. चत्वारः पाकयज्ञाः—(क) चत्वारः-सूत्रकार ने हुत, अहुत, प्रहुत और प्राशित इन चार का उल्लेख किया है। पुनरपि 'चत्वारः' पद पढ़ने का प्रयोजन है हुत—के सायं प्रातः होने के कारण इसे अभ्यासवश दो न गिना जा सके।

(ख) ऋग्वेदीय आश्वलायन गृह्य सूत्र में पाकयज्ञ के तीन प्रकार वर्णित हैं। तद्यथा—त्रयः पाकयज्ञाः।। हुता अग्नौ हूयमाना अनग्नौ प्रहुता ब्राह्मणभोजने ब्रह्मणिहुताः।। १.१. २—३ तथा काठकगृह्य सूत्र २.१.१—७ में भी उक्त चार ही परिगणित हैं।

(ग) **पाकयज्ञाः**—पाक शब्द का प्रयोग अल्प एवं प्रशस्त तथा लौकिक कर्म अर्थों में उपलब्ध होता है। तद्यथा—अल्पार्थे—''योऽस्मत्पाकतरः'' इस प्रकार 'पाकयज्ञाः' का अर्थ हुआ—'अल्पयज्ञाः' वस्तुतः विचारपूर्वक देखा जाये तो ये यज्ञ—समय-साधन-द्रव्य आदि की दृष्टि से अन्य श्रौत यज्ञों की अपेक्षा अल्प ही हैं। स्यात् वाराह गृह्य सूत्रकार ने इसी दृष्टिसे ''ह्रस्वत्वात्पाकयज्ञः। ह्रस्व ँहि पाक इत्याचक्षते,—१. ३ कहा है।

आपस्तम्बगृह्य सूत्र २०. १५. 'क्षिप्रं यजेत पाको देवः' सूत्र का व्याख्यान करते हुए सुदर्शनाचार्य ने—'पाक अल्पो देवः' पाक का अर्थ अल्प ही किया है।

प्रशस्तार्थे—'तं पाकेन मनसाऽपश्यम्' 'यो मा पाकेन मनसा' इत्यादि स्थलों पर पाक शब्द प्रशस्तार्थ में प्रयुक्त है। इन अल्पद्रव्य साध्य यज्ञों तो बहुद्रव्य साध्य

राजसूय आदि की अपेक्षा प्रशस्त यज्ञ कैसे स्वीकार किया जा सकता है? यत: संस्कार आदि इन्हीं पाकयज्ञों के अन्तर्गत आते हैं, जिनसे मनुष्य में ब्राह्मण्य की प्राप्ति होती है। अत: ये अल्पयज्ञ होते हुए भी प्रशस्त यज्ञ हैं।

लौकिक कर्म—आपस्तम्बगृ० २. ९ में लौकिक जीवन से सम्बद्ध कर्मों (विवाह आदि) के लिए पाकयज्ञ शब्द का प्रयोग उपलब्ध है। तद्यथा 'लौकिकानां पाकयज्ञशब्द:'।

(घ) **पञ्चमहायज्ञा:**—ब्राह्मण ग्रन्थों में पाँच महायज्ञों का वर्णन है। इन्हें ही महासत्र भी कहा गया है। तद्यथा—'पञ्चैव महायज्ञा:। तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञ: पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञऽइति।' शतपथ ब्रा०११.५.६.१, उक्त पांच महायज्ञों में से ब्रह्मयज्ञव्यतिरिक्त चार का अन्तर्भाव नहीं हुत आदि चार पाक यज्ञों में हो जाता है। तद्यथा—(क) हुत—होम मात्र जैसे—सायं प्रातर्होम = अग्निहोत्र-देवयज्ञ। (ख) अहुत-जहाँ आहुति नहीं दी जाती, जैसे-स्नस्तरारोहण आदि = पितृयज्ञ। (ग) प्रहुत—जहाँ पहले आहुति दान तदनन्तर बलिकर्म जैसे—पक्षादिकर्म = बलिवैश्वदेव = भूतयज्ञ। (घ) प्राशित—जहाँ मात्र प्राशन होता है, जैसे ब्राह्मण भोजन = अतिथि यज्ञ = मनुष्य यज्ञ।

(ङ) हुत आदि के सन्दर्भ में कौषीतक गृह्यसूत्र का निम्न अंश द्रष्टव्य है—

'त एते अप्रयाजा अननुयाजा अनिळा अनिगदा असामिधेनीकाश्च सर्वे पाकयज्ञा भवन्ति। तदपि श्लोका:-

हुतोऽग्निहोत्रहोमेन अहुतो बलिकर्मणा।

प्रहुत: पितृकर्मणा प्राशितो ब्राह्मणे हुत:॥ १.६.५-७ तथा-

प्रयाजाभावाच्चोपभृत्-काठकगृह्यसूत्र २.१.१०

(च) बौधायन गृह्यसूत्र में पाकयज्ञ संस्था का वर्णन करते हुए उक्त चार में से केवल हुत, प्रहुत तथा किञ्चित् परिवर्तन के साथ आहुत (शेष सूत्र ग्रन्थों में अहुत) परिगणित हैं। तद्यथा—

यथो एतद्धुत: प्रहुत आहुतश्शूलगवो बलिहरणं प्रत्यवरोहरणमष्टकाहोम इति सप्त पाकयज्ञ संस्था इति॥ १.१.१. तथा सूत्र २—८ भी द्रष्टव्य हैं।

२. शूद्रामप्येके—(क) सूत्रकार ने सूत्र ८—१० तक वर्णानुक्रम से विवाह्य कन्याओं का वर्णन किया है। प्रकृत सूत्र ११ में कुछ आचार्यों के मत में सभी वर्णों के लिए शूद्रा को अमन्त्रक विवाह्य कहा है। सूत्र पठित 'एके' पद से ज्ञापित

है कि यह मत स्वयं पारस्कर का नहीं है, अपितु कुछ आचार्य शूद्रा को अमन्त्रक विवाह योग्य स्वीकार करते हैं।

पारस्कर के सभी प्रमुख भाष्यकारों ने शूद्रा को धर्माचरण के लिए स्वीकार न कर रमणार्थ स्वीकार करने की बात इस सूत्र भाष्य में प्रतिपादित की है। तद्यथा—'तथा च यास्काचार्याः—रामा रमणायोपेयते न धर्मायेति।' कर्कः

(ख) 'न ह्यस्या धर्मकार्येष्वधिकार इति। तथा च यास्कः—रामा रमणायोपेयते न धर्मायेति'-जयरामः।

(ग) हरिहर ने मन्त्रवर्जम् की व्याख्या करते हुए शूद्र-शूद्रा विवाह को भी अमन्त्रक क्रियामात्र ही माना है—अतः शूद्रस्य शूद्रा परिणयने मन्त्रवत्क्रिया नास्ति किन्तु मन्त्ररहितं क्रियामात्रमिति गम्यते। ततश्च शूद्रस्य शूद्रापरिणयने मन्त्रवद्धोमादि कर्म कुर्वन्ति तदशास्त्रीयम्। एके न मन्यन्ते शूद्रा-विवाहम्, कुतः शूद्रायाः धर्म कार्येष्वनधिकारात्। कुतो नाधिकार इति चेत्, रामा रमणायोपेयते न धर्माय कृष्ण जातीयेति निरुक्तकारयास्काचार्यवचनात्।

(घ) सर्वेषां ब्राह्मणादीनां शूद्रामप्येके भार्यामिच्छन्ति तस्यास्तु मन्त्रवर्जं विवाह कर्म भवति। एके पुनः शूद्रापरिणयनं नेच्छन्ति। न शूद्राया धर्मकार्येष्वधिकार इति। तथा च यास्कः। रामा रमणाय विन्दते न धर्मायेति अतः शूद्रापरिणयनं नेच्छन्ति रमणार्थमेव १—गदाधरः।

(ङ) वर्णानुक्रम की दृष्टि से विवाह्य कन्या वर्णन पारस्कर के अतिरिक्त अन्य गृह्यसूत्रों में इस रूप में हमारी दृष्टि में नहीं आया है। अन्य सूत्रकार उत्तम आचरण, श्रेष्ठ कुल, शुभ लक्षण और नीरोगता को ही विवाह्य होने का प्रमुख आधार मानते हैं। तद्यथा—

(अ) **बुद्धिरूपशीललक्षणसम्पन्नामरोगामुपयच्छेत॥** आश्व० गृ० १.५.३

(ब) **जाया लक्षणसम्पन्ना स्यात्॥ यस्या अभ्यात्मङ्गानि स्युः समाः केशान्ताः॥ आवर्तावपि यस्यै स्यातां प्रदक्षिणौ ग्रीवायां षड्वीरान् जनयिष्यतीति विद्यात्॥** कौषीतक गृ० १.१.८—१०

(स) **बन्धुशीललक्षणसम्पन्नामरोगामुपयच्छेत॥** आप० गृ० १. ३. १९

(द) **विनीतक्रोधः सहर्षः सहर्षीं भार्याँ विन्देतानन्यापूर्वाँ यवीयसीम्॥** वाराहगृ० १०.१

(च) पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत॥ लक्षण प्रशस्तान् कुशलेन॥ गोभिलगृ० २.१.१—२; २—५.

३. सूत्र १२ कन्या के वस्त्र धारण मन्त्र—

जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्ति पावा। शतं च जीव शरदः सुवर्च्चा रयिं च पुत्राननु संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः।

४. सूत्र १३. उत्तरीय-उपवस्त्रदान मन्त्र—

या अकृन्तन्नवयं या अतन्वत। याश्च देवी स्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः॥ (काठकगृ० ३.१.३)

५. सूत्र १४ समञ्जन मन्त्र—

समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।

संमातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥ ऋ० १०.८५.४७

६. (क) पित्रा प्रत्ताम् सूत्र १५.—कन्या के पिता द्वारा कन्यादान संकल्प के मिष से प्रदान की गयी अर्थात् विवाह पद्धति की दृष्टि से वर पक्ष द्वारा कन्या को धारण करने हेतु वस्त्र एवं उत्तरीय प्रदान करने के पश्चात् कन्या पिता कन्यादान के संकल्प—'ओ३म् अमुक गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीमलङ्कृतां कन्यां प्रति गृह्णातु भवान्' आदि द्वारा औपचारिक कन्यादान करता है। कन्यापक्ष के अन्यजन भी इसी अवसर पर कन्यादान-कन्यायै दानं कन्यादानम्-कन्या के लिए भेंट उपहार आदि प्रदान करते हैं। इस विधि से प्रदान की गयी कन्या को लेकर वर विवाह संस्कार के निमित्त घर से बाहर बने मण्डप में जाता है।

(ख) आदाय-गृहीत्वा—सूत्रकार ने सूत्र १५ में 'आदाय' तथा 'गृहीत्वा' दो क्रिया पद प्रयुक्त किये हैं। सामान्य दृष्टि से दोनों एक ही अर्थ के बोधक हैं, किन्तु सूत्रकार द्वारा 'निष्क्रामति' इस मुख्य क्रियापद के पूर्व ल्यबन्त 'आदाय' एवं क्त्वान्त 'गृहीत्वा' इन दोनों का एक साथ प्रयोग विशेष अर्थ का ज्ञापक समझना चाहिये। तद्यथा—

यद्यपि कन्या का सामान्य द्रव्य की तरह दान तथा प्रतिग्रह विधि से दान हो इसीलिए 'आदाय' पद (अर्थात् पिता द्वारा कन्यादान के संकल्प के मिष के प्रदान की गयी कन्या को आदाय = स्वीकार कर) तथा उस कन्या को पाणिग्रहण विधि से गृहीत्वा = ग्रहण कर इस अर्थ में गृहीत्वा पद प्रयुक्त प्रतीत होता है।

(ग) निष्क्रामति सूत्र १५—विवाह संस्कार में कन्या पिता वर का मधुपर्क विधि से स्वागत करने के अनन्तर कन्यादान का संकल्प करता है। वर वस्त्र एवं उपवस्त्र प्रदान तथा तदनु धारण की गयी कन्या को स्वीकार कर विवाह संस्कार हेतु घर के ईशान् कोण में बने विशेष मण्डप = यज्ञवेदी पर पहुँचने के लिए कन्या को साथ ले घर से निकलता है। मधुपर्क विधि स्वागत विधि है, इसमें भक्षण होता है। अत: यह यज्ञवेदी से पृथक् होती है। इस स्वागत विधि को सम्पन्न कर विवाह संस्कारार्थ, यज्ञवेदी की ओर चलने की ज्ञापिका यह निष्क्रामति क्रिया है।

आजकल सम्पूर्ण अर्घ विधि (मधुपर्क सहित) यज्ञवेदी पर ही सम्पन्न करा दी जाती है। ऐसी अनेक विसंगतियाँ सम्पूर्ण संस्कारों एवं यज्ञों में पदे-पदे दिखायी देती हैं।

७. समीक्षण मन्त्र—

अघोर चक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्च्चाः।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।। ऋ०१०.८५.४४
सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः।।
सोमोऽददद् गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्।। ऋ० १०. ८५. ४०-४१
सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर।
यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै।।

इति प्रथमकाण्डे चतुर्थी कण्डिका ✪

पञ्चमी कण्डिका

विवाहहोमः

प्रदक्षिणमग्निं पर्याणीयैके।।१।। पश्चादग्नेस्तेजनीं कटं वा दक्षिणपादेन प्रवृत्त्योपविशति।।२।। अन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्राजापत्यꣳ स्विष्टकृच्च।।३।। एतन्नित्यꣳ सर्वत्र।।४।। प्राङ्महाव्याहृतिभ्यः

स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः॥५॥ सर्वप्रायश्चित्तप्राजापत्यान्तरमेतदावापस्थानं विवाहे॥६॥ राष्ट्रभृत इच्छञ्जयाभ्यातनांश्च जानन्॥७॥ येन कर्मणेर्च्छेदिति-वचनात्॥८॥ चित्तं च चित्तिश्चाकूतं चाकूतिश्च विज्ञातं च विज्ञातिश्च मनश्च शक्वरीश्च दर्शश्च पौर्णमासं च बृहच्च रथन्तरं च। प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु। तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहेति॥९॥ अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्विन्द्रो ज्येष्ठानां यमः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षस्य सूर्यो दिवश्चन्द्रो नक्षत्राणां बृहस्पतिर्ब्रह्मणो मित्रः सत्यानां वरुणोऽपाꣳ समुद्रः स्रोत्यानामन्नꣳसाम्राज्यानामधिपति तन्मावतु सोम ओषधीनाꣳ सविता प्रसवानाꣳ रुद्रः पशूनां त्वष्टा रूपाणां विष्णुः पर्वतानां मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्तु पितरः पितामहाः परेवरे ततास्ततामहाः। इह मावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहेति सर्वत्रानुषजति॥१०॥ अग्निरैतु प्रथमो देवतानाꣳ सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयꣳ राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयꣳ स्त्री पौत्रमघन्नरोदात्स्वाहा॥ इमामनिस्त्रायताङ्गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियꣳ स्वाहा॥ स्वस्तिनो अग्ने दिव आपृथिव्या विश्वानिधेह्ययथा यजत्र। यदस्यां महिदिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रꣳ स्वाहा॥ सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न आयुः। अपैतु मृत्युरमृतन्न आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहेति॥११॥ परं मृत्यविति चैके प्राशनान्ते॥१२॥ ॥५॥

(कर्कः)—'प्रदक्षिणमग्निं पर्याणीयैके' एके आचार्याः प्रदक्षिणमग्निमानीय कन्यावासः परिधानादि कुर्वन्ति। एवमपि हि स्मरणमिति। अतश्च विकल्पः। 'पश्चाद.... विशति' कटः प्रसिद्ध एव। तेजनी तृणपुलकः। तयोरन्यतरं दक्षिणपादेन परिक्रम्योप-विशति। अत्रोपकल्पनीयानि—शमीपलाशमिश्रा लाजाः। रोहितानडुहं चर्म दृषदुपलञ्च उदकुम्भः शूर्पं च। 'अन्वार.......सर्वत्र' आघारौ पूर्व उत्तरश्च। उत्तराघारे प्रतिनिगद्य होमत्वम्। नह्यत्र मन्त्रोऽस्ति। आज्यभागौ एक आग्नेयः अपरः सौम्यः। भूर्भुर्व स्वरित्येता महाव्याहृतयः। त्वन्नोऽअग्ने इति चैवमादि सर्वप्रायश्चित्तम्। प्राजापत्यं प्रजापतिदेवत्यो होमः। स्विष्टकृत्। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति वक्ष्यत्युपरिष्टात्। एतच्चतुर्दशाहुतिकं नित्यं सर्वकर्मसु भवति यत्र यत्र होमोऽस्ति। यथा घृताक्तानि

कुशेण्ड्वानि जुहुयादिति। यत्र पुनर्होम एव नास्ति यथा स्त्रस्तरारोहणे लाङ्गलयोजने च तत्रैतन्न भवति। 'प्राङ्महा........ज्याद्धविः' यत्राज्यव्यतिरिक्तमन्यदपि हविर्भवति तत्र महाव्याहृति-होमात्प्राक् स्विष्टकृद्धोमः यथा पक्षादाविति। 'सर्वप्रा.......... विवाहे' आगन्तुकत्वादन्ते निवेशोमाभूदिति सूत्रमारब्धम्। 'राष्ट्रभृत इच्छन्' विवाह एव जुहोति। 'जया........ जानन्' चित्तं च चित्तिश्चेत्येवमादि—प्रजापतिर्जयानिन्द्रायेत्येवमन्ता जयाः मन्त्रलिङ्गात्। शेषा अभ्याताना मन्त्राः। एतांश्च इच्छन्नेव जुहोति। जानञ्छब्दो विकल्पार्थः। चशब्दो राष्ट्रभृद्भिः संनियोगार्थः। चित्तं च चित्तिश्चेत्यत्र केचिच्चतुर्थ्यन्तेन प्रयोगमिच्छन्ति। तदयुक्तम्। नह्येतानि देवतापदानि किं तर्हि मन्त्रा एव, मन्त्राणां च यथाऽऽम्नातानामेव प्रयोग इष्यते इति। जयाभ्यातानांश्चेच्छया जुहोतीति कुत एतत्। 'येन कमणेर्त्सेदिति वचनात्' येन कर्मणा ऋद्धिमिच्छेत्तत्र जयान् जुहोतीति वचनं भवति। अतश्चान्यत्रापि ऋद्धिमिच्छता जयाहोमः कर्त्तव्य इति गम्यते। अग्निर्भूतानामित्येवमादिष्वधिपतिः समावत्त्विति सर्वत्रानुषङ्गः। एवमेव स्मर्यते इति एवञ्च सति अन्नं साम्राज्यानां मरुतो गणानामिति च विशेषेणैव पाठः, पितरः पितामहा इत्येवमादि परं मृत्यविति चैक इति यावत्सूत्रम्। एतैश्च मन्त्रैर्होमः कर्तव्य इति। एक प्राशनान्ते परं मृत्यविति जुह्वति। एवमपि हि स्मर्यत इति।।५।।

१. अग्निं प्रदक्षिणम् = वर कन्या को साथ ले घर से बाहर बने मण्डप में यज्ञवेदी के समीप पहुँचकर, अग्नि की प्रदक्षिणा, पर्याणीय = करा के (अग्नि के पश्चिम की ओर बैठता है—अग्रिम सूत्र से उपविशति क्रिया यहाँ आहृत समझनी चाहिये), एके = कुछ आचार्यों का ऐसा मत है।

२. अग्नेः पश्चात् = अग्नि के पश्चिम की ओर, तेजनीं कटं वा = तृणपुलक अथवा चटाई पर, दक्षिणपादेन = प्रथम दाहिना पैर, प्रवृत्त्य = रखकर, उपविशति = वर वधू सहित बैठे।

३. अन्वारब्धः = वर, ब्रह्मा से संस्पृष्ट हो अर्थात् अनुमति लेकर (विवाह होम प्रारम्भ करे), आघारौ = आघार संज्ञक दो, आज्यभागौ = आज्यभाग संज्ञक दो, महाव्याहृतयः = महाव्याहृति संज्ञक तीन, सर्व प्रायश्चित्तं = सर्वप्रायश्चित्त संज्ञक पाँच, प्राजापत्यं = प्राजापत्य एक, स्विष्टकृच्च = और स्विष्टकृत् एक।

४. एतत् = यह चौदह आहुतियाँ, सर्वत्र = सर्वविध होम कर्मों में, नित्यं = अवश्य करणीय हैं।

५. चेत् = यदि, आज्यात् = घृत से, अन्यत् = अन्य-भिन्न, हविः = हव्य-होमद्रव्य होने पर, महाव्याहृतिभ्यः = महाव्याहृति संज्ञक आहुतियों से, प्राक् = पूर्व, स्विष्टकृत् = स्विष्टकृत् आहुति देनी चाहिये।

६. विवाहे= विवाह संस्कार में, सर्वप्रायश्चित्तप्राजापत्यान्तरम् = सर्वप्रायश्चित्त और प्राजापत्य संज्ञक आहुतियों के मध्य में, एतत् = यह आवापस्थानं = वक्ष्यमाण आवापस्थान (राष्ट्रभृत्, जया, अभ्यातान होम) का अनुष्ठान करना चाहिये।

अन्यत्र विहित होम, जपादि कर्म का कर्मान्तर में प्रक्षेप आवाप कहलाता है।

७. राष्ट्रभृत इच्छन् = राष्ट्रभृत् की इच्छा करता हुआ, जयाभ्यातानांश्च = जया और अभ्यातान को जानन् = जानता हुआ—इन आहुतियों को देवे।

८. येन कर्मणा = जिस कर्म से, ऋच्छेत् = समृद्धि की कामना करे। अर्थात् जिस-जिस कर्म में सफलता चाहे वहाँ जया होम करे, इति वचनात् = इस (तैत्तिरीयोक्त—'येन कर्मणेर्त्सेत्तत्र होतव्या ऋध्नोत्येव तेन कर्मणा ३.४.६.') वचन/ आदेश से।

९. चित्तं च०...........स्वाहेति = चित्तं च से लेकर प्रजापतिर्जयानिन्द्राय पर्यन्त १३ आहुति (जया होम की) दें।

१०. अग्निर्भूतानाम्०..........षजति = 'अग्निर्भूतानाम् से पितरः पितामहाः' पर्यन्त १८ अभ्यातान संज्ञक आहुतियाँ देवे। इन सभी मन्त्रों में अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् से लेकर स्वाहा पर्यन्त भाग अनुषक्त होता है।

११. अग्निरैतु स्वाहेति = (अभ्यातान होम के पश्चात्) अग्निरैतु आदि ४ आहुतियाँ देवे।

१२. एके = कुछ आचार्य, प्राशनान्ते = प्राशन के अन्त में, परं मृत्यविति = परं मृत्यो ँ अनुपरेहि पन्थां मन्त्र से आहुतिदान मानते हैं।

अर्थात् अभ्यातान होम के पश्चात् अग्निरैतु से परं मृत्यो पर्यन्त पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। सूत्र १२ में पठित एके पद से स्पष्ट है कि स्वयं सूत्रकार को ऐसा अभिप्रेत है, किन्तु कतिपय आचार्य पाँचवीं आहुति परं मृत्यो से पूर्व संस्रव प्राशन स्वीकार करते हैं। तदनु पाँचवी आहुति।

टिप्पणी-१. उपविशति (क) प्रकृत सूत्र में वेदी के पश्चिम की ओर वर-वधू के बैठने का उल्लेख है। सूत्रकार ने स्वयं स्थान विशेष का निर्देश नहीं

किया है। हरिहर, गदाधर और विश्वनाथ ने वर के दाहिनी ओर कन्या के बैठने का वर्णन किया है। कर्क एवं जयराम इस सम्बन्ध में मौन हैं।

(ख) विवाह विधियों की स्पष्टता की दृष्टि से गोभिल गृह्य सूत्र अन्य सूत्रों की अपेक्षा स्पष्ट है। गोभिल में कन्या का स्थान अग्नि (यज्ञवेदी) के पश्चिम में वर की दाहिनी ओर निर्धारित किया है। तद्यथा—

पूर्वे कटान्ते दक्षिणतः पाणिग्राहस्योपविशति॥ २.१.२२. तथा परिणीता तथैवावतिष्ठते तथाक्रामति तथा जपति तथा वपति तथा जुहोति एवं त्रिः॥ २.२.९

(ग) खादिर गृह्यसूत्र में भी कन्या का स्थान वर के दक्षिण की ओर ही वर्णित है—

पाणिग्राहस्य दक्षिणतः उपवेशयेत् १. ३. ७

(घ) आपस्तम्बगृह्य सूत्रकार ने भी वर का स्थान उत्तर (अर्थात् कन्या का स्थान वर से दक्षिण) की ओर ही प्रतिपादित किया है—

अथैनामुत्तरया दक्षिणे हस्ते गृहीत्वाऽग्निमभ्यानीयापरेणाग्निमुदगग्रं कटमास्तीर्य तस्मिन्नुपविशत उत्तरो वरः॥ २. ४. ९

(ङ) बौधायन एवं हिरण्यकेशी गृ० सू० में भी कन्या/पत्नी का स्थान दक्षिण की ओर ही माना है। तद्यथा—

अपरेणाग्निमुदीचीन प्रतिषेवणामेरकां साधिवासामास्तीर्य तस्यां प्राञ्चा-वुपविशत उत्तरतः पतिर्दक्षिणा पत्नी॥ बौ० गृ० सू० १. ३. २०

दक्षिणतः पतिं भार्योपविशति-हि० गृ० सू० १. ३. २

(च) ऋग्वेदीय आश्वलायन एवं कौषीतक इस सन्दर्भ में मौन हैं। काठक गृह्यसूत्र में उक्त की अपेक्षा वर का स्थान दाहिनी ओर माना है। तद्यथा—

दक्षिणतः पुमान्भवति॥ २५.१०

(छ) उक्त गृह्यसूत्रों के अतिरिक्त लघ्वाश्वलायन १५. ३६, वशिष्ठ १६. ४. ४. ४६ तथा व्याघ्रपाद ८४—८७ आदि स्मृतिवचन भी कन्या के वर की दाहिनी ओर बैठने का ही वर्णन करते हैं।

(ज) महर्षि दयानन्द सरस्वती—"इन चार मन्त्रों (समञ्जन्तु विश्वे, यदैषि मनसा, अघोरचक्षु, सा नः पूषा) को वर बोल के दोनों वर वधू यज्ञकुण्ड की

प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के......'' संस्कारविधि'-विवाह संस्कार।

२. सूत्र ३—**आघारौ** (क) प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।।

(ख) इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न मम।।

आज्यभागौ—(क) अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।।

(ख) सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम।।

महाव्याहृतयः—(क) ओ३म् भूः स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।।

(ख) ओ३म् भुवः स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम।।

(ग) ओ३म् स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय इदन्न मम।।

सर्वप्रायश्चित्तम्—(क) त्वन्नो अग्ने, (ख) स त्वन्नोऽअग्ने, (ग) अयाश्चाग्ने, (घ) ये ते शतं० (ङ) उदुत्तमम्०,

प्राजापत्यम्—प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।।

स्विष्टकृत्—यदस्य कर्मणोऽअत्य०.........अथवा अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।। इदम्०

३. **आवापस्थान** सू० ६—नित्यहोम की विधि सूत्र संख्या ३ द्वारा (ऊपर टिप्पणी सं० २ में १४ मन्त्र उल्लिखित हैं।) कही जा चुकी है। अग्रिम सूत्र के द्वारा निर्दिष्ट राष्ट्रभृत्, जया, अभ्यातान की प्राप्ति सर्वान्त अर्थात् स्विष्टकृत् के पश्चात् प्राप्त होती है। वह न हो। इसीलिए सूत्र ६ द्वारा इसे प्रायश्चित्त और प्राजापत्य के मध्य में आवाप स्थान कहकर निर्दिष्ट किया है।

४. **राष्ट्रभृत्** सू० ७—(क) राष्ट्रभृत्, जय, और अभ्यातान विषयक तैत्तिरीयसंहिता के निम्न वचन द्रष्टव्य हैं—

देवा यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतानभ्यातानानपश्यन् तानभ्यातन्वत यद्देवानां कर्माऽऽसीदार्ध्यत तद्यदसुराणां न तदार्ध्यत येन कर्मणेर्त्सेत् तत्र होतव्या ऋध्नोत्येव तेन कर्मणा यद्विश्वेदेवाः समभरन् तस्मादभ्याताना वैश्वदेवा यत् प्रजापतिर्जयान् प्रायच्छत् तस्माज्जयाः प्राजापत्याः। यद्राष्ट्रभृद्भी राष्ट्रमाऽददत तद्राष्ट्रभृतँ[राष्ट्रभृत्त्वं ते देवा अभवन् पराऽसुरा यो भ्रातृव्यवान्स्यात् स एतान् जुहुयादभ्यातानैरेव भ्रातृव्यानभ्यातनुते जयैर्जयति राष्ट्रमादत्ते भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति। ३.४.६

राष्ट्रभृत् मन्त्राः-ऋताषाड्ऋतधामाग्नि..........-प्रजापतिर्विश्वकर्मा०............. पर्यन्त १२, तै.स. ३.४.७

(ख) जयाहोमः—चित्तं च...... प्रजापतिर्जयानिन्द्राय० पर्यन्त १३ मन्त्र, तै० स० ३.४.४

पारस्कर के कर्कभाष्यानुसार—चित्तं च चित्तिश्च आदि देवतापद नहीं है। अतः इनका चतुर्थ्यन्त प्रयोग नहीं करना चाहिये। ये मन्त्रखण्ड हैं। मन्त्र का यथाम्नात प्रयोग ही उचित है।

जयराम, हरिहर, गदाधर ने कर्क का ही अनुसरण कर यथाम्नात चित्तंच, चित्तिश्च आदि पाठ पूर्वक आहुति दान माना है, किन्तु विश्वनाथ ने 'चित्ताय' आदि चतुर्थ्यन्त रूप का प्रयोग किया है। गदाधर भाष्य के निम्न वचन से प्रतीत होता है कि सर्वप्राचीन एवं अनुपलब्ध वृत्तिकार भर्तृयज्ञ को भी चतुर्थ्यन्त प्रयोग अभिमत है। तद्यथा—'इमानि शाखान्तरोपदिष्टानि देवतापदानि एषां प्रयोगकाले सम्प्रदान—लक्षणेन सम्प्रयोगश्चित्ताय स्वाहेत्यादीति भर्तृयज्ञः नेति कर्कादयः। न चेमानि देवतापदानि किं तर्हि मन्त्राश्चैते ते च यथाम्नाता एव प्रयोक्तव्या।'

प्रजापतिर्जयान्......... इस मन्त्रस्थ जय पद के कारण छत्रिन्याय से उक्त १३ मन्त्रों को जया नाम से अभिहित किया जाता है।

(ग) अभ्यातान मन्त्राः—अग्निर्भूतानाम्........ पितरः पितामहाः पर्यन्त १८ मन्त्र, तै० सं० ३.४.५

(घ) सूत्रस्थ च पद इस बात का ज्ञापक है कि—जया और अभ्यातान के साथ-साथ राष्ट्रभृत् को भी जाने।

४. येनकर्मणा सूत्र ८—येन कर्मणेर्त्सेत्तत्र जयाज्जुहुयादिति जयानाँ् श्रुतिः। वाराह गृह्यसूत्र १४.१२

इति प्रथमकाण्डे पञ्चमी कण्डिका ✪

षष्ठी कण्डिका

लाजाहोमः

कुमार्या भ्राता शमीपलाशमिश्राँल्लाजानञ्जलावावपति॥१॥ ताञ्जुहोति सꣳहतेन तिष्ठती अर्यमणं देवं कन्याऽग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा॥ इयं नार्युपब्रूते लाजानापवन्तिका। आयुष्मानस्तु मे

पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥ इमाँल्लाजानावौपम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहेति॥२॥ अथास्यै दक्षिणं हस्तं गृह्णाति साङ्गुष्ठं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदिष्टर्यथा सः। भगोऽऽर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्याय देवाः। अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहम्। सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान्विन्द्यावहै बहून् ते सन्तु जरदष्टयः। संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ. शृणुयाम शरदः शतमिति॥३॥ ॥६॥

(कर्कः)—'कुमार्या भ्रा........तिष्ठती'। संहतेनाञ्जलिना तिष्ठती प्रतिमन्त्रं लाजान् जुहोति। अर्यमणं देवमित्येवमादिभिर्मन्त्रैः। तान् जुहोतीति वचनात्तुरीययां वेलायां सर्वहोमः। अथास्यै.........गृभ्णामि त' इति। अनेन मन्त्रेण। अस्यै इति चतुर्थी षष्ठ्यर्था॥६॥

१. कुमार्या भ्राता = कुमारी का भाई, शमीपलाशमिश्रांल्लाजान् = शमी (छोंकर-जांटी) पत्र मिश्रित धान की खीलों को, अञ्जलिना = अञ्जलि से, अञ्जलौ = कुमारी की अञ्जली में, आपवति = डालता है।

२. तिष्ठती = कन्या खड़ी रहकर, संहतेन = पति की अञ्जलि के साथ मिलित अञ्जलि से, तान् = उन शमीपत्र मिश्रित लाजाओं से अर्यमणं देवं, ... इयं स्वाहेति = अर्यमण देवं० इयं नायुपब्रूते०, इमान् लाजान्० = इन तीन मन्त्रों से, जुहोति = हवन करे।

३. अथ = लाजाहोम की उक्त तीन मन्त्रों से आहुतिदान के अनन्तर वर, अस्यै = इस कन्या के, साङ्गुष्ठं दक्षिणं हस्तं = अंगुष्ठ सहित दक्षिण हाथ को, 'गृभ्णामि ते०....अमोऽहमस्मि सा०...., मन्त्र पाठपूर्वक, गृह्णाति = ग्रहण करता है।

टिप्पणी-१. (क) **लाजाहोमः**—पारस्कर के अनुसार सम्पूर्ण लाजा के चार भाग होंगे। प्रथम तीन भागों में से प्रत्येक भाग (जिसे कन्या का भाई कन्या की अञ्जलि में डालता है।) से—'अर्यमणं देवं०, इयं नारी०—'इमान् लाजान्० इन तीन मन्त्रों से आहुति देनी होती है। इसी प्रकार—'एवं द्विरपरं लाजादि' कं० ७, सू० ४ द्वितीय एवं तृतीय भाग से दूसरी एवं तीसरी बार पुनः इन्हीं तीन मन्त्रों से लाजाहोम होता है। तद्यथा-अर्थात् ३ × ३ = ९ आहुतियाँ तथा चतुर्थभाग से 'भगाय स्वाहा' १. ७. ५ से दसवीं

(ख) **लाजाहोममन्त्राः**—सूत्र में पठित

(ग) काठक गृ० २५.३०—३९, मानव गृ० १. ११. १०—१३, कौषीतक १.८.२१—२५, गोभिलगृ २.२.५—७, बौ० गृ० १.४.२५—३१, आप० गृ० २.५.३-११, खादिर गृ० १.३.२०—२३ , आश्व० गृ० १.७.८—१४ उक्त सभी **सूत्र लाजा के चार भाग तथा एक-एक मन्त्र से एक-एक भाग की आहुति मानते हैं। प्रति आहुति के पश्चात् परिक्रमा की जाती है, किन्तु चतुर्थ बार परिक्रमा नहीं होती है।**

२. **अस्यै**-सू० ३—षष्ठ्यर्थे चतुर्थी।

३. **साङ्गुष्ठं**-सूत्र ३-सूत्रकार ने अङ्गुष्ठ सहित हस्त ग्रहण का विधान किया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में पुत्रकामी कवेल अङ्गुष्ठ, स्त्री कामी अंगुली और उभय कामी के लिए साङ्गुष्ठ हस्त ग्रहण वर्णित है। तद्यथा—'गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तमित्यङ्गुष्ठमेव गृह्णीयाद्यदि कामयीत पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्निति।।१.७.३'

अङ्गुलीरेव स्त्रीकामः।।४।।

रोमान्ते हस्तं साङ्गुष्ठमुभयकामः।।५।।

(ख) काठक गृह्य २५. २१.....**हस्तं गृह्णाति दक्षिणमुत्तानं साङ्गुष्ठं०**......।

४. **कुमार्या भ्राता**—सूत्रकार ने केवल कन्या के भाई द्वारा लाजा देने का वर्णन किया है। आपस्तम्ब + बौधायन भी सौदर्य द्वारा ही + खादिर १.३.२०। अन्य सूत्रकार भाई की अनुपस्थिति/अभाव की स्थिति में माता/ भ्राता-गोभिल २.२.३—५; पिता/भ्राता-कौषीतक १.८.२१; भ्राता/ब्रह्मचारी-मानवगृ०१.११.११; + काठकगृ० २५.२९; + वाराह १४.१७ भ्राता/भ्राता स्थानी-आश्व० गृ० १.७.८

इति प्रथमकाण्डे षष्ठी कण्डिका ✪

सप्तमी कण्डिका

अथैनामश्मानमारोहयत्युत्तरतोऽग्नेर्दक्षिणपादेन आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायत इति।।१।। अथ गाथां गायति सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवती। यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यश इति।।२।। अथ परिक्रामतः तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्यां

वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दाग्ने प्रजया सहेति॥३॥ एवं द्विरपरं लाजादि॥४॥ चतुर्थं शूर्पकुष्ठया सर्वांल्लाजानावपति भगाय स्वाहेति॥५॥ त्रिः परिणीतां प्राजापत्यं हुत्वा॥६॥७॥'॥

(कर्कः)—'अथैनामश्मानमिति' एनां वधूमुत्तरतोऽग्नेर्व्यवस्थितमश्मानमारोहयत्यारोहेममश्मानमित्यनेन मन्त्रेण प्रकृतं कर्तृत्वं चात्र वरस्य मन्त्रश्च। 'अथ गाथां..... यशः' इति वर एव। अथ परिक्रामतस्तुभ्यमग्र इत्यनेन मन्त्रेण वरवध्वौ, मन्त्रश्च लिङ्गाद्वरस्यैव। एवं द्विरपरं लाजादि कर्म भवति। चतुर्थं........वपति। अग्रं शूर्पस्य कुष्ठा तया शूर्पकुष्ठया सर्वाल्लाँजानावपति कुमार्याः पाणौ, भगाय स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण तानेव जुहोति कुमारी। 'त्रिः परिणीतां प्राजापत्यं हुत्वेति'। त्रिः परिणीतामिति त्रिर्ग्रहणमितरथावृत्तिव्युदासार्थम्। उक्तं हि परिभाषायाम्—विवृत्त्यावृत्य वेतरथा वृत्तिरिति॥७॥

१—अथ = 'अर्यमणं देवं०', 'इयं नार्युपब्रूते०', 'इमांल्लाजान्' इन तीन मन्त्रों का उच्चारण कर तीन लाजाहुति देकर, वर, एनाम् = इस कन्या को, अग्नेः उत्तरतः = अग्नि वेदी के उत्तर की ओर रखे हुये, अश्मानम् = शिलाखण्ड पर आरोहेमम्०...... पृतनायत इति = आरोह इमम्—इस मन्त्रपूर्वक, दक्षिण पादेन = दाहिने पैर से, आरोहयति = आरोहण कराता है।

२. अथ = शिलारोहण के अनन्तर, 'सरस्वति० ....यश इति'= सरस्वति प्रेदम् आदि मन्त्रोच्चारण करता हुआ वर, गाथां गायति = गाथा का गान करता है।

३. अथ =गाथागान के पश्चात्, तुभ्यमग्रे ....सहेति = तुभ्यमग्रे मन्त्र का पाठ करते हुए वर-वधू, परिक्रामतः = परिक्रमा-प्रदक्षिणा करते हैं।

४. एवं = इसी प्रकार, द्विरपरं = दूसरे दो बार, लाजादि = लाजा होम आदि कर्त्तव्य है। अर्थात्-अर्यमणं आदि तीनों मन्त्रों से लाजाहोम, आरोहेमं आदि से शिलारोहण, सरस्वति प्रेदम् आदि से गाथा गान के अनन्तर तुम्यमग्रे मन्त्र से परिक्रमा करनी चाहिये। इस प्रकार तीन परिक्रमा या प्रदक्षिणा होती हैं।

५. चतुर्थ = चौथी बार (लाजा के जो प्रथम ही चार भाग किये थे उसमें से चतुर्थ भाग से) शूर्पकुष्ठया = शूर्प-छाज के कोने से, भगाय स्वाहेति = भगाय स्वाहा-कह-कर, सर्वान् लाजान् = सम्पूर्ण (चतुर्थ भाग) खीलों को, आवपति = अग्नि में छोड़ दें।

६. त्रिः = तीन बार, परिणीतां = अग्नि की प्रदक्षिणा कराई हुई वधू को, प्राजापत्यं हुत्वा = प्राजापत्याहुति देकर (सप्तपदी करावे)।

टिप्पणी—१. शिलारोहणमन्त्र-आरोहेममश्मानमश्मेव त्व ँ स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः।।

२. **गाथा**—सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवती। यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतँसमभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः।।

३. **परिक्रमामन्त्र**—तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह।।

४. एवं द्विरपरम्—पारस्करीय पद्धति के अनुसार अर्यमणं देवम् आदि तीन मन्त्रों से लाजा की तीन आहुति, शिलारोहण, गाथा गान तदनु प्रदक्षिणा यह एक प्रक्रिया है। इसी प्रकार पुनः दो बार अर्थात् कुल तीन बार समग्र क्रम पूर्ववत् करना होता है। लाजा लेकर प्रारम्भ में ही चार भाग कर लेने चाहियें। प्रथम तीन भागों में से प्रत्येक से तीन-तीन आहुति देनी चाहियें। कुल मिलाकर तीन प्रदक्षिणा-परिक्रमा में लाजा की नौ आहुति होंगीं।

५. भगाय स्वाहा—लाजा के अवशिष्ट चतुर्थ भाग से केवल एक ही आहुति 'भगाय स्वाहा' कहकर देनी होती है। इसके पश्चात् प्रदक्षिणा नहीं की जाती है।

६. हुत्वा—हुत्वा क्रियापद सूत्रार्थ में आकांक्षा का जनक है। होम करके क्या करे—ऐसी आकांक्षा होने पर समाधान होगा—अग्रिम अष्टमी कण्डिका के प्रथम सूत्रस्थ निम्न वचन—अथैनामुदीची ँ सप्तपदानि प्रक्रामयति = अर्थात् प्राजापत्याहुति देकर वर वधू को उदीची दिशा की ओर सप्तपद चलाता है।

७. आश्वलायन आदि अन्य सभी गृह्य सूत्रों में प्रतिप्रदक्षिणा-शिलारोहणपूर्वक लाजा की एक ही आहुति वर्णित है। यद्यपि प्रदक्षिणा-शिला-लाजा क्रम का पौर्वापर्य भी गृह्यसूत्र में उपलब्ध होता है। तद्यथा—

(क) आश्वलायन १.७.७–१३, वाराह१४.१४–२२, काठक २५.२८–३९ में प्रदक्षिणा-शिलारोहण तदनु लाजा यह तीन प्रदक्षिणा आदि वर्णित है। चतुर्थ आहुति लाजा की मौन है। अथवा शूर्पकोण से देने का वर्णन है। मन्त्रोल्लेख उपलब्ध नहीं है।

(ख) कौषीतक गृ० १.८.२०—२५ का क्रम-शिलारोहण-प्रदक्षिणा तदनु लाजा। एक मन्त्र से एक ही आहुति वहाँ वर्णित है। तीन प्रदक्षिणा में तीन ही आहुति हैं। चतुर्थ आहुति मौन है।

(ग) गोभिल गृ० २.२.३—१०, खादिर गृ० १.३.१८—२६ के अनुसार-शिलारोहण-लाजा तदनु प्रदक्षिणा का विधान है। चतुर्थ लाजाहुति अमन्त्रक शूर्पकोण से देने की व्यवस्था है।

(घ) बौधायन गृ० १.४.२४—३१ तथा आपस्तम्ब गृ० २.५.२—११ में केवल लाजाहुति तीन ही हैं। चतुर्थ का वहाँ उल्लेख नहीं है।

(ङ) मैत्रायणीय मानव गृ० १.१०.१६—१९ तथा १.११.१०.१३.१७ का क्रम तो कौषीतक के सदृश-शिलारोहण-प्रदक्षिणा तदनु लाजाहोम है, किन्तु इसमें शिलारोहण वर-वधू दोनों ही करते हैं।

८. दाग्ने—सू० ३ दाग्ने = दाः अग्ने का सन्धित रूप है, किन्तु यह आर्ष सन्धि है। वस्तुतः विसर्गलोप होकर-दा अग्ने रूप अधिक व्यवहार्य है।

इति प्रथमकाण्डे सप्तमी कण्डिका

अष्टमी कण्डिका

सप्तपदी

अथैनामुदीचीꣳ सप्तपदानि प्रक्रामयति एकमिषे द्वे ऊर्जे त्रीणि रायस्पोषाय चत्वारि मायोभवाय पञ्च पशुभ्यः षड् ऋतुभ्यः सखे सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव॥१॥ विष्णुस्त्वानयत्विति सर्वत्रानुषजति॥२॥ निष्क्रमणप्रभृत्युदकुम्भꣳ स्कन्धे कृत्वा दक्षिणतोऽग्नेर्वाग्यतः स्थितो भवति॥ ३॥ उत्तरत एकेषाम्॥४॥ तत एनां मूर्द्धन्यभिषिञ्चति आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजमिति॥५॥ आपोहिष्ठेति च तिसृभिः॥६॥ अथैनाꣳ सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति॥७॥ अथास्यै दक्षिणांसमधिहृदयमालभते मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति॥८॥ अथैनामभिमन्त्रयते सुमङ्गलीरियं वधूरिमां

समेत पश्यत सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं विपरेतनेति॥९॥ तां दृढ़पुरुष उन्मथ्य प्राग्वोदग्वाऽनुगुप्त आगार आनडुहे रोहिते चर्मण्युपवेशयति इह गावो निषीदन्त्विहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्त्रदक्षिणो यज्ञ इह पूषा निषीदन्त्विति॥१०॥ ग्रामवचनं च कुर्युः॥११॥ विवाहश्मशानयोर्ग्रामं प्रविशतादितिवचनात्॥१२॥ तस्मात्तयोर्ग्रामः प्रमाणमिति श्रुतेः॥१३॥ आचार्याय वरं ददाति॥१४ ॥ गौर्ब्राह्मणस्य वरः॥१५॥ ग्रामो राजन्यस्य ॥१६॥ अश्वो वैश्यस्य॥१७॥ अधिरथठं. शतं दुहितृमते॥१८॥ अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति। ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधिपोष्ये मयि मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतमिति॥१९॥ सा यदि न पश्येत्पश्यामीत्येव ब्रूयात्॥२०॥ त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीयाता ळं संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः॥२१॥८॥

(कर्कः)—'अथैना.......नयत्विति'। एभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं विष्णुस्त्वानयत्विति च सर्वत्रानुषङ्गः तुल्ययोगित्वात्साकाङ्क्षत्वाच्च पूर्वमन्त्राणाम्। 'निष्क्रमण........भवति'। निष्क्रमणकालादारभ्योदकुम्भं स्कन्धे कृत्वा दक्षिणतोऽग्नेर्वाग्यतस्तिष्ठेदन्यः उत्तरत एकेषामाचार्याणां मतम्, ततश्च विकल्पः। 'तत एनां...तमाः' इत्यनेन मन्त्रेणैनां वधूं शिरस्यभिषिञ्चति। 'आपो....तिसृभिः' च शब्दात्त्रिभिरभिषेकः। 'अथैनां.... च्चक्षुरिति' उदीक्षयतीति कारितत्वादध्येषणा सूर्यमुदीक्षस्वेति। तच्चक्षुरित्यनेन मन्त्रेणोदीक्षते। 'अथास्यै.... भते'इति। अस्या वध्वा दक्षिणांसमधि बाहुं नीत्वा हृदयमालभते मम व्रते त इत्येनन मन्त्रेण। 'अथैनां सुमङ्गलीरियं...रेतनेति'अनेन मन्त्रेण। 'तां दृढ़... दन्त्विति' तामिति वधूमुन्मथ्योत्क्षिप्य प्राच्यां दिश्युदीच्यां वाऽनुगुप्तागारे देशे आनडुहे रोहिते चर्मणि उपवेशयतीहगाव इत्यनेन मन्त्रेण। 'ग्रामव...नयोः' कुत एतत्? 'ग्रामं प्रविशतादिति वचनात् तस्मात्तयोर्ग्रामः प्रमाणमिति श्रुतेः' तयोर्विवाहश्मशानयोः। श्रुतिग्रहणं च ग्रामवचनप्रामाण्यज्ञापनार्थम् ग्रामशब्देन किमभिधीयत इति चेत् ग्रामं प्रविशतादितिवचनात् **स्त्रियो ग्रामशब्देनाभिधीयन्ते**। ताश्च यत्स्मरन्ति तदपि कर्तव्यमिति। 'आचा...ददाति'। वरशब्दार्थज्ञापनायाह 'गौर्ब्राह्म....मते' ददातीत्यनुवर्तते। दुहितृमांश्च यस्य दुहितर एव सन्ति न पुत्रास्तस्मै रथादिकं गवां शतं दत्त्वा दुहितरं तस्योद्वहेत्। प्रतिषिद्धा ह्यसौ नाभ्रातृकामुपयच्छेदिति वचनात्तत्परिक्रयायाधिरथदानम्। 'अस्त........ मसीति' अनेन मन्त्रेण। कारितार्थे चायं मन्त्रः। पश्यामीत्यत्रान्तर्भूतो

णिच्। यदुक्तं भवति दर्शयामीति तदुक्तं भवति पश्यामीति मन्त्रोऽप्येवमेव व्यवस्थितः। 'ध्रुवैधि....शतमिति' कुमार्या वोच्यते। 'सा यदि....यात्' न तु न पश्यामीति। 'त्रिरात्र... स्याताम्' वरवध्वौ। 'अधः शयीयाताम्' खट्वाव्युदासार्थोऽयमधःशब्दो नास्तरण-व्युदासार्थः। 'संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः'।।८।।

१. अथ = लाजाहोम के अनन्तर, एनाम् = वधू को, उदीचीं = उत्तर दिशा की ओर, एकमिषे०...अनुव्रता भव = एकमिषे आदि मन्त्रोच्चारणपूर्वक, सप्तपदानि = सात पद, प्रक्रामयति = चलाता है।

२. विष्णुस्त्वा नयतु-इति = 'विष्णुस्त्वा नयतु' यह पद, सर्वत्रानुषजति = एकमिषे आदि सभी के साथ अनुषक्त होता है।

३. निष्क्रमणप्रभृति = चतुर्थ कण्डिका सूत्र १५—पित्रा प्रत्तामादाय गृहीत्वा-निष्क्रामति'—से लेकर (कोई दृढ़-बलवान् पुरुष) उदकुम्भं = जल से भरा घड़ा स्कन्धे = कन्धे पर, कृत्वा = रखकर, दक्षिणतोऽग्नेः = अग्नि के दक्षिण में, वाग्यतः = वाग्यमन (मौनधारण) करके, स्थितो भवति = स्थिर रहे।

४. एकेषाम् = कुछ आचार्यों के मत में (जलकुम्भ वाला व्यक्ति),उत्तरतः = अग्नि के उत्तर में स्थित रहे।

५. ततः = तदनन्तर = सप्तपदी के पश्चात्, एनां = इस वधू के, मूर्धनि = मस्तक पर, आपः शिवाः..........भेषजमिति = आपः शिवाः—इस मन्त्रपूर्वक, अभिषिञ्चति = जल के छीटें देवे।

६. च = और आपो हिष्ठेति तिसृभिः = आपो हिष्ठा आदि तीन मन्त्रों से भी वधू के मस्तक/मूर्धा पर जल के छीटें दें।

७. अथ = मूर्धाभिषेचन के पश्चात् (वर)एनाम् = इस वधू को, तच्चक्षुरिति = तच्चक्षुर्देवहितं आदि मन्त्रोच्चारणपूर्वक, सूर्यम् = सूर्य को, उदीक्षयति = दिखाता है।

८. अथ = सूर्य दर्शन के अनन्तर वर, मम व्रते०...मह्यमिति = ममव्रते—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए, अस्यै = इस वधू के दक्षिणांसमधिहृदयम् = दक्षिण कन्धे (के ऊपर से हाथ करके) से हृदय का, **आलभते = स्पर्श करता है।**

९. अथ = हृदय स्पर्श के पश्चात् वर, एनाम् = इस वधू को, सुमङ्गलीरियं —विपरेतनेति = सुमङ्गलीरियं इस मन्त्र से, अभिमन्त्रयते = अभिमन्त्रित करता है।

१०. तां = उस वधू को, दृढ़ पुरुषः = बलवान् पुरुष, उन्मथ्य = उठाकर, प्राग्वोदग्वा = पूर्व या उत्तर दिशा की ओर, अनुगुप्ते = सुरक्षित (वस्त्रादि से आच्छादित), आगारे = स्थान पर, आनडुहे रोहिते चर्मणि = जिस पर बैल का चित्र बना हो, ऐसे लाल रंग के बिस्तर पर इहगावाः....निषीदन्तु इति = 'इहगावः' आदि मन्त्रोच्चारणपूर्वक, उपवेशयति = बैठावे।

११. ग्रामवचनं च = और ग्राम/कुल की परम्परानुसार लौकिक रीति-रिवाज, कुर्युः = करे।

१२. विवाहश्मशानयोः = विवाह और शमशान = अन्त्येष्टि के विषय में, ग्रामं प्रविशतात् = लौकिक आचार, रीति-रिवाज पूछे, इतिवचनात् = ऐसा वचन है।

१३. तस्मात्तयोर्ग्रामः प्रमाणम् = उन दोनों विवाह और अन्त्येष्टि-अवसरों पर ग्राम-लोकाचार, प्रमाणम् = प्रमाण होता है। इतिश्रुतेः = ऐसी श्रुति अर्थात् जनश्रुति है।

१४. वर, आचार्याय = आचार्य (ऋत्विक्-पुरोहित)के लिए, वरं = वर (दक्षिणा), ददाति = देता है।

१५. वर (दक्षिणा) क्या हो ? ऐसी जिज्ञासा के निवृत्त्यर्थ कहते हैं कि ब्राह्मणस्य = ब्राह्मण की अर्थात् ब्राह्मण द्वारा देय, वरः = वर (दक्षिणा), गौः = गौ है।

१६. राजन्यस्य = क्षत्रिय की (वर = दक्षिणा), ग्रामः = ग्राम है।

१७. वैश्यस्य = वैश्य की (वर = दक्षिणा), अश्वः = अश्व है।

१८. दुहितृमते = दुहितृमान् (अर्थात् जिसके कोई पुत्र न होकर केवल कन्याएं ही हों, ऐसे)पुरुष को, अधिरथं शतम् = रथ सहित सौ गायें (देकर उसकी पुत्री से विवाह करे)

१९. अस्तमिते = दिन में विवाह हो रहा हो, तब सूर्य के अस्त होने पर, ध्रुवमसि०...शतमिति = ध्रुवमसि-मन्त्र का उच्चारण करते हुए वर, वधू को, ध्रुवं = ध्रुव, दर्शयति = दिखावे।

२०. यदि = यदि, सा = वह वधू, न पश्येत् = ध्रुव को न देखे अर्थात् ध्रुव दिखाई न दे रहा हो, तब भी, पश्यामि = देखती हूँ, इत्येव = ऐसा ही, ब्रूयात् = कहे।

२१. त्रिरात्रम् = विवाहोपरान्त वर-वधू तीन रात्री पर्यन्त, अक्षारालवणाशिनौ= अक्षार और अलवण का भोजन, स्याताम् = करें, अधः = पृथिवी पर ही, शयीयातां = शयन करें, संवत्सरं = एक वर्ष तक, मिथुनं = मैथुन, न = नहीं, उपेयातां = करें अथवा (यदि कोई संवत्सर पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक न रह सके, तब उसके लिये निम्न विकल्प देते हैं) द्वादशरात्रं = बारह रात्रियों तक, षड्रात्रम् = छह रात्रियों तक, अन्ततः = (अर्थात् यदि संवत्सर पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक वर-वधू पृथिवी पर शयन आदि न कर सकें तब १२ रात्री तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहें। यदि १२ रात्रि भी न रह सकें। तब छः रात्री तक रहें और जब छः रात्री न रह सके तो) अन्ततोगत्वा त्रिरात्रम् = तीन रात्री पर्यन्त अवश्य ही ब्रह्मचर्यपूर्वक अक्षार अलवणभोजी तथा पृथिवी पर शयन करें।

टिप्पणी–१. सप्तपदी मन्त्राः—(क) एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु। (ख) द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु। (ग) त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु। (घ) चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु। (ङ) पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु। (च) षड्ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु। (छ) सखे सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु।

गदाधर ने सप्तम पदक्रमण के समय—'सखे सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव' मात्र इतना मन्त्र पाठ ही स्वीकार किया है।

२. ऋग्वेदीय आश्वलायन गृह्यसूत्रानुसार—अथैनामपराजितायान्दिशि सप्तपदा न्यभ्युत्क्रामयतीष एकपद्यूर्जे द्विपदी रायस्पोषाय त्रिपदी मायोभव्याय चतुष्पदी प्रजाभ्यः पञ्चपद्यृतुभ्यः षट्पदी सखा सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव, पुत्रान्विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टय इति १.७.१९

प्रकृत सूत्रानुसार—'इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव। पुत्रान्विदावहै बहूंस्ते, सन्तु जरदष्टयः—यह प्रथम मन्त्र का पाठ होता है। इसी प्रकार—ऊर्जे द्विपदी भव सा माम्०....आदि मन्त्र पाठ होगा।'

(ख) कौषीतक गृह्य १.८.२८ के अनुसार—(अ) इष एकपदी विष्णुस्त्वा नयतु। ऊर्जे द्विपदी विष्णुस्त्वा नयतु। रायस्पोषाय त्रिपदी विष्णु०....नयतु। मायोभव्याय चतुष्पदी विष्णुः०....नयतु। प्रजाभ्यः पञ्चपदी विष्ण०....नयतु। ऋतुभ्यः षट्पदी विष्णु०—नयतु। सखा सप्तपदी भव विष्णुस्त्वा नयतु।

३. गोभिल गृ० २.२.१०के अनुसार मन्त्र ब्राह्मण १.२.६-१२ के निम्न मन्त्र सप्तपदीगमन मन्त्र हैं—(क) एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु। (ख) द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु। (ग) त्रीणि व्रताय विष्णुस्त्वा नयतु। (घ) चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु। (ङ) पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु। (च) षड्रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु। (छ) सप्त सप्तभ्यो होत्रभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।

४. मैत्रायणीय मानव गृह्य १.११.१८ के अनुसार—अथैना प्राचीँ सप्तपदानि प्रक्रमयत्येकमिषे द्वे ऊर्जे त्रीणि प्रजाभ्यश्चत्वारि रायस्पोषाय पञ्च भवाय षड्ऋतुभ्य: सखा सप्तपदीभव सुमृडीका सरस्वती। मा ते व्योम संदृशी। विष्णुस्त्वा मुन्नयत्विति सर्वत्रानुषजति।।

५. वाराह गृह्य १४.२३ के अनुसार—अथैनां प्राचीँ सप्तपदानि प्रक्रमयति-एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु। द्वे ऊर्जे। त्रीणि रायस्पोषाय। चत्वारि मायोभवाय। पञ्च प्रजाभ्य:। षड्ऋतुभ्य: सप्त सप्तभ्यो भव सख्यं ते गमयूँसख्यात्ते मा रिषमिति सप्तम एनां प्रेक्षमाणाँ समीक्षते।।

६. **मूर्धाभिषेचन मन्त्रा:**—(क) आप: शिवा: शिवतमा: शान्ता: शान्ततमा-स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।।

(ख) आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।।

(ग) यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:। उशतीरिव मातर:।।

(घ) तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च न:।। ऋ० १०.९.१-३

७. **सूर्यदर्शन मन्त्र**—तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरद: शतं जीवेम शरद:शतं शृणुयाम शरद: शतं प्रब्रवाम शरद: शतमदीना: स्याम शरद: शतं भूयश्च शरद: शतात्।। यजु० ३६.२४

८. अथास्यै सू०—८. (क) अस्यै में षष्ठ्यर्था चतुर्थी है।

(ख) **हृदयस्पर्शन मन्त्र**—मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्राजपतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।।

(ग) **आलभते**—आ + लभ् धातु का लट् लकार का रूप है। पारस्कर के भाष्यकार यहाँ—आलभते का अर्थ—स्पृशति (तद्यथा—'**हृदयमालभते स्पृशतिवरो 'ममव्रते इति' मन्त्रेण-जयराम: 'तस्या हृदयमालभते वर: स्पृशति।'**

'ममव्रते.... मह्यम्' इत्यनेन मन्त्रेण-**इति हरिहरः**) करते हैं। यही भाष्यकार पूर्व कण्डिका ३ सूत्र २७ में आ + लभ् धातु के विधि लिंग के रूप 'आलभेत' का अर्थ वधपरक करते हैं।

इसपर विशेष टिप्पणी पूर्व ३.२७ पर ही द्रष्टव्य है।

९. **अभिमन्त्रण मन्त्र**—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।

सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं विपरेतन।। ऋ० १०.८५.३३

१०. दृढ़ पुरुष—कुछ भाष्यकार जामाता को ही दृढ़ पुरुष (दृढ़ाङ्गपुरुष) मानते हैं। तद्यथा—'केचन जामातैव दृढ़पुरुष इत्याहुः,'तत्पक्षे जामातैव वधूमुत्क्षिप्य मन्त्रमुक्त्वा चर्मण्युपवेशयति-इति हरिहर भाष्ये।'

उपेवशन मन्त्र—इह गावो निषीदन्त्विहाश्वा इह पूरुषाः।

इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञ इह पूषा निषीदन्तु।।

११. **ग्रामवचन**—(क)कर्क आदि भाष्यकारों ने ग्राम वचन का अभिप्राय कुल वृद्धा स्त्रियों के वचनानुसार (लौकिक रीति-रिवाजों का पालन) किया है। तद्यथा—'**स्त्रियो ग्रामशब्देनाभिधीयन्ते**' **कर्कः**। '**ग्रामवचनं वृद्ध-स्त्रीवाक्यं विवाहे मरणे च प्रमाणम्**' इति जयरामः। '**अत्र विवाहे ग्राम शब्द वाच्यानां स्वकुलवृद्धानां स्त्रीणां शमशाने च वाक्यं कुर्युः**-इति हरिहरः।'

(ख) काठक गृह्य सूत्रकार ने भी—'**आचारिकाणि**' २५.७ कहकर विवाह संस्कार में देशजातिकुल आदि की दृष्टि से परम्परागत कर्मों को भी विहित किया है।

(ग) **अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान् विवाहे प्रतीयात्**-आश्व गृ०१.७.१

१२. ध्रुवदर्शन मन्त्र-ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि।

मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥

इति विवाहविधिः

इति प्रथमकाण्डे अष्टमी कण्डिका

३. गोभिल गृ० २.२.१०के अनुसार मन्त्र ब्राह्मण १.२.६-१२ के निम्न मन्त्र सप्तपदीगमन मन्त्र हैं—(क) एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु। (ख) द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु। (ग) त्रीणि व्रताय विष्णुस्त्वा नयतु। (घ) चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु। (ङ) पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु। (च) षड्रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु। (छ) सप्त सप्तभ्यो होत्रभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।

४. मैत्रायणीय मानव गृह्य १.११.१८ के अनुसार—अथैना प्राची ँ्सप्तपदानि प्रक्रमयत्येकमिषे द्वे ऊर्जे त्रीणि प्रजाभ्यश्चत्वारि रायस्पोषाय पञ्च भवाय षड्ऋतुभ्यः सखा सप्तपदीभव सुमृडीका सरस्वती। मा ते व्योम संदृशी। विष्णुस्त्वा मुन्नयत्विति सर्वत्रानुषजति।।

५. वाराह गृह्य १४.२३ के अनुसार—अथैनां प्राची ँ् सप्तपदानि प्रक्रमयति-एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु। द्वे ऊर्जे। त्रीणि रायस्पोषाय। चत्वारि मायोभवाय। पञ्च प्रजाभ्यः। षड्ऋतुभ्यः सप्त सप्तभ्यो भव सख्यं ते गमयँ्सख्यात्ते मा रिषमिति सप्तम एनां प्रेक्षमाणाँ समीक्षते।।

६. **मूर्धाभिषेचन मन्त्राः**—(क) आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमा-स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।।

(ख) आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।।

(ग) यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।।

(घ) तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।। ऋ० १०.९.१-३

७. **सूर्यदर्शन मन्त्र**—तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदःशतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।। यजु० ३६.२४

८. अथास्यै सू०—८. (क) अस्यै में षष्ठ्यर्था चतुर्थी है।

(ख) **हृदयस्पर्शन मन्त्र**—मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्राजपतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।।

(ग) **आलभते**—आ + लभ् धातु का लट् लकार का रूप है। पारस्कर के भाष्यकार यहाँ—आलभते का अर्थ—स्पृशति (तद्यथा—'**हृदयमालभते स्पृशतिवरो 'ममव्रते इति' मन्त्रेण-जयरामः 'तस्या हृदयमालभते वरः स्पृशति।'**

'ममव्रते.... मह्यम्' इत्यनेन मन्त्रेण-**इति हरिहरः**) करते हैं। यही भाष्यकार पूर्व कण्डिका ३ सूत्र २७ में आ + लभ् धातु के विधि लिंग के रूप 'आलभेत' का अर्थ वधपरक करते हैं।

इसपर विशेष टिप्पणी पूर्व ३.२७ पर ही द्रष्टव्य है।

९. **अभिमन्त्रण मन्त्र**—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं विपरेतन।। ऋ० १०.८५.३३

१०. दृढ़ पुरुष—कुछ भाष्यकार जामाता को ही दृढ़ पुरुष (दृढ़ाङ्गपुरुष) मानते हैं। तद्यथा—'केचन जामातैव दृढ़पुरुष इत्याहुः,'तत्पक्षे जामातैव वधूमुत्क्षिप्य मन्त्रमुक्त्वा चर्मण्युपवेशयति-इति हरिहर भाष्ये।'

उपेवशन मन्त्र—इह गावो निषीदन्त्विहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञ इह पूषा निषीदन्तु।।

११. **ग्रामवचन**—(क)कर्क आदि भाष्यकारों ने ग्राम वचन का अभिप्राय कुल वृद्धा स्त्रियों के वचनानुसार (लौकिक रीति-रिवाजों का पालन) किया है। तद्यथा—**'स्त्रियो ग्रामशब्देनाभिधीयन्ते' कर्कः। 'ग्रामवचनं वृद्ध-स्त्रीवाक्यं विवाहे मरणे च प्रमाणम्' इति जयरामः। 'अत्र विवाहे ग्राम शब्द वाच्यानां स्वकुलवृद्धानां स्त्रीणां शमशाने च वाक्यं कुर्युः-इति हरिहरः।'**

(ख) काठक गृह्य सूत्रकार ने भी—**'आचारिकाणि'** २५.७ कहकर विवाह संस्कार में देशजातिकुल आदि की दृष्टि से परम्परागत कर्मों को भी विहित किया है।

(ग) **अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान् विवाहे प्रतीयात्**- आश्व गृ०१.७.१

१२. ध्रुवदर्शन मन्त्र-ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि।
मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥

इति विवाहविधिः

इति प्रथमकाण्डे अष्टमी कण्डिका ✪

नवमी कण्डिका

औपासनहोमः

उपयमनप्रभृत्यौपासनस्य परिचरणम्॥१॥ अस्तमितानुदितयोर्दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा॥२॥ अग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति, सायम्॥३॥ सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति प्रातः ॥ ४॥ **पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमाꣳसं वर्ततां मयि पुनः स्वाहेति पूर्वा गर्भकामा॥५॥ ॥९॥**

(कर्कः)—'उपय......द्वितयोः' उपयमनकुशादानादि औपासनस्य परिचरणं, व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। होमेऽपि सति परिचरणग्रहणादितिकर्तव्यता न भवति। अस्तमितानुदितयोरित्यस्तमिते चानुदिते च तत्कर्म कर्तव्यं, तच्च सर्वदा न सकृत्क्रिया येनैवमाह ततोऽस्तमितेऽस्तमितेऽग्निं परिचर्य दर्व्योपघातं सक्तून् सर्पेभ्यो बलिं हरेदिति बलिहरणविधिपरे वाक्ये परिचरणस्य नित्यत्वं ज्ञापयति। **हस्तेनैवात्र होमः** इतिकर्तव्यताव्युदासात्। व्युदासः कथमिति चेत् उपयमनप्रभृत्युक्तत्वात्। दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा होमः। अग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति सायं जुहोति। सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति प्रातः जुहोति। पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ इति पूर्वामाहुतिं जुहोति। गर्भकामेतिस्त्रीप्रत्ययनिर्देशात्स्त्र्येव जुहोति पूर्वाहुतिविकारश्चायम्। अत्रैव च स्त्री, उत्तराहुतौ तु यजमान एव॥९॥

१. उपयमनप्रभृति = उपयमनसंज्ञक कुशा से प्रारम्भ कर (उपयमनान्कुशान् से जुहुयात् पर्यन्त क० १, सू० ४) औपासनस्य = औपासन-आवसथ्य अग्नि की, परिचरणम् = परिचर्या-उपासना पद्धति का वर्णन किया जाता है।

२. औपासन होम का काल एवं सामग्री निम्नवत् है—**काल**-अस्तमितानुदितयोः = सूर्यास्त हो जाने पर और सूर्योदय से पूर्व, **सामग्री**-दध्ना = दही अथवा तण्डुलैः = चावल, अक्षतैर्वा = अथवा यव (जौ) से (औपासन होम करना चाहिए)

३. सायम् = सायङ्काल, अग्नये स्वाहा = अग्नये स्वाहा और प्रजापतये स्वाहा= प्रजापतये स्वाहा, इति = इस प्रकार इन दो मन्त्रों से (हाथ से, स्रुवा आदि द्वारा नहीं) ही गृह्य = आवसथ्य = औपासन अग्नि में दो आहुति देनी चाहियें।

४. प्रातः = प्रातः काल, सूर्याय स्वाहा = सूर्याय स्वाहा और प्रजापतये स्वाहा = प्रजापतये स्वाहा, इति = इस प्रकार (ये दो आहुतियाँ सायंकाल के समान ही हाथ से देनी चाहिये। इसी का नाम औपासन होम है।)

५. गर्भकामा = गर्भ धारण की कामनावती स्त्री को, पूर्वां =पूर्व अर्थात् सायङ्काल अग्नये स्वाहा से पूर्व तथा प्रातः सूर्याय स्वाहा से पूर्व- 'पुमांसौ...... स्वाहेति' = पुमा ꣳ सौ मित्रावरुणौ इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिये।

टिप्पणी-१. (क) **उपयमन प्रभृति**—प्रभृति पद के ग्रहण करने से—'उपयमनान् कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जहुयात्' क० १, सू० ४ इस सूत्रांश का ग्रहण अभीष्ट है।

(ख) **परिचरणम्**—यद्यपि औपासन होम है, तथापि 'परिचरणम्' इस पद के ग्रहण से होम की इति कर्त्तव्यता यहाँ नहीं होती है। अतएव दही/चावल/जौ (इन तीन में से किसी एक अथवा दही के अभाव में चावल, चावल के अभाव में जौ) की आहुति स्त्रुवा (चम्मच) आदि से न देकर हाथ से ही देनी चाहिये।

२. **अस्तमित-अनुदितयोः**—सूत्र ग्रन्थों में यज्ञ काल पर पर्याप्त विचार हुआ है। **'अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात्'** न्याय २.१.६० आदि सूत्रों से काल विचार पर प्रकाश पड़ता है। वहाँ सामान्यतः उदित, अनुदित एवं समयाध्युषित—इन तीन पक्षों का विचार किया गया है। इस विषय पर हमारा 'अग्निहोत्र-मीमांसा' शोध लेख चौ०च०सि०वि०वि० शोधपत्रिका अंक सप्तदश १९९३ तथा 'अग्निहोत्र विधिविमर्श' शीर्षक शोध लेख-परोपकारी मासिक-अजमेर, मई १९९८ द्रष्टव्य है।) यहाँ औपासन होम का काल सायं समय सूर्यास्त होने पर तथा प्रातः सूर्योदय से पूर्व विहित है। यहाँ कोई विकल्प नहीं है।

३. (क) अग्नये स्वाहा, रात्री में सूर्य का प्रकाश नहीं रहता है। अतः सभी सूत्रकार सायंकाल का देवता अग्नि को मानकर उसी के लिए द्रव्यत्याग का विधान करते हैं। स्वाहा के योग में 'नमः' स्वस्तिस्वाहा स्वधाऽलंवषट्योगाच्च' अष्टा० २.३.१६ सूत्रानुसार अग्नि के लिए चतुर्थ्यन्त अग्नये पद का प्रयोग होता है।

(ख) प्रजापतये स्वाहा—प्रजापतियाग/प्राजापत्याहुति उपांशु, किन्तु स्वाहाकार श्राव्य रूप में अर्थात् 'प्रजापतये' मन्त्रांश मौन तथा 'स्वाहा' उच्चारणपूर्वक द्रव्यत्याग शास्त्रीय विधि है। तद्यथा—'तस्मात् प्राजापत्यां मनसा जुह्वति। मनो हि

प्रजापति:—सामवि० ब्रा० १.१.४ (वैसे भी यज्ञ में जिस किसी भी मन्त्र का देवता ज्ञात नहीं, वहाँ पर प्रजापति देवता ही उह्य होता है।

४. सूर्याय स्वाहा—सूर्य दिन का देवता है। अत: प्रात: कालिक आहुति सूर्य को उद्दिष्ट करके 'सूर्याय स्वाहा' कहकर दी जाती है।

५. द्रव्य त्याग तथा आहुति दान सर्वत्र इदं पूर्वक करने का विधान है। अतएव अग्नये स्वाहा के अनन्तर—'इदमग्नये इदन्न मम' का पाठ किया जाता है। सर्वत्र स्वाहाकार के बाद इदं के पश्चात् देवता का चतुर्थ्यन्त प्रयोग होता है।

६. **गर्भकामा**—(क) स्त्री प्रत्यय के निर्देश से ज्ञात होता है कि यहाँ 'पुमांसौ मित्रावरुणौ....' मन्त्रपूर्वक द्रव्यत्याग स्त्री ही करेगी।

(ख) मन्त्र— **पुमा ꣳ सौ मित्रावरुणौ पुमाꣳ सावश्विनावुभौ।**

पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमाꣳ सं वर्ततां मयि पुन: स्वाहा।

इति प्रथमकाण्डे नवमी कण्डिका ✪

दशमी कण्डिका

प्रायश्चित्ति:

राज्ञोऽक्षभेदे नद्धविमोक्षे यानविपर्यासेऽन्यस्यां वा व्यापत्तौ स्त्रियाश्चौद्वहने तमेवाग्निमुपसमाधायाज्यꣳसंस्कृत्येहरतिरिति जुहोति नानामन्त्राभ्याम्॥१॥ अन्यद्यानमुपकल्प्य तत्रोपवेशयेद्राजानꣳस्त्रियं वा प्रतिक्षत्र इति यज्ञान्तेनात्वाहार्षमिति चैतया॥२॥ धुर्यौ दक्षिणा॥३॥ प्रायश्चित्ति:॥४॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥५॥ ॥१०॥

(कर्क:)—'राज्ञोऽक्ष.....मन्त्राभ्याम्' राज्ञो रथाक्षभेदे नद्धस्य वा रथस्य विमोक्षे यानस्य विपर्यासे अन्यस्यां वा कस्यांचिद्व्यापदि स्त्रियाश्चोद्वहने उद्वहनं च पितृगृहाद्भर्तृगृहं प्रति प्रथमं नयनम्। अत्र चैतेष्वपि निमित्तेषु नैमित्तिकमिदमुच्यते। तमेवाग्निमुपसमाधायेति। राज्ञ: सेनाग्नि: स्त्रियाश्चैव विवाहाग्नि: आज्यं संस्कृत्येति ग्रहणमाघारादिभ्योऽपि पूर्वकालत्वज्ञापनार्थम् इहरतिरिति नानामन्त्राभ्यां जुहोति। नानाग्रहणाच्च द्वे आहुती तत आघारादि। 'अन्यद्या.....यज्ञान्तेन' परादिना पूर्वान्ता-

भावाद्यज्ञान्तग्रहणम्। 'आत्वाहार्षमिति चैतया' ऋचोपवेशयेत्। 'धुर्यौ दक्षिणा प्रायश्चित्तिः' धुर्यावनड्वाहौ दक्षिणा। प्रायश्चित्तिरिति संज्ञाऽस्य। 'ततो ब्राह्मण-भोजनम्'।।१०।।

विवाह के अनन्तर वधू के प्रथम बार पतिगृह जाने अथवा राजा के रथ की धुरी के टूटने वा किसी अन्य विपत्ति के आने पर प्रायश्चित्त रूप में सम्पाद्यमान हवन का विधान किया जा रहा है—

१. राज्ञोऽक्षभेदे = राजा के रथ की धुरी टूट जाने पर, नद्धविमोक्षे = जुए के जोड़ खुलने पर, यानविपर्यासे = रथ के पलट जाने पर, वा = अथवा, अन्यस्यां व्यापत्तौ = अन्य किसी प्रकार की विपत्ति आने पर, च = और, स्त्रिया उद्वहने = विवाहोपरान्त वधू के प्रथम बार पति गृह जाने पर, तमेवाग्निम् = उसी अग्नि (आवसथ्य, राजा की यात्रा के समय सेनाग्नि) को, उपसमाधाय = समीप में स्थापित करके, आज्यं = आज्य-घृत को, संस्कृत्य = संस्कार/शुद्ध करके, इह रतिरिति = 'इहरति' इत्यादि, नानामन्त्राभ्याम् = दो मन्त्रों से, जुहोति = हवन करे।

२. अन्यद् यानम् = दूसरा यान-रथादि, उपकल्प्य = व्यवस्थित करके, तत्र = उस पर, राजानं स्त्रियं वा = राजा अथवा वधू को, प्रतिक्षत्र इति यज्ञान्तेन = प्रतिक्षत्रे—यज्ञे, पर्यन्त इस मन्त्र, आ त्वाहार्षमिति चैतया = और 'आ त्वा हार्षम्' इस ऋचा का पाठ करते हुए, उपवेशयत् = (रथ पर) बैठावें।

३. धुर्यौ = धुर वहन में समर्थ दो बैल, दक्षिणा = इस यज्ञ की दक्षिणा है।

४. प्रायश्चित्तिः = इस कर्म की 'प्रायश्चित्ति' यह संज्ञा है।

५. ततः = तदनन्तर, ब्राह्मणभोजनम् = ब्राह्मण (सामर्थ्यानुसार एक अथवा अधिक) को भोजन करावे।

टिप्पणी–१. नानामन्त्राभ्याम्-मन्त्राभ्याम् में द्विवचन प्रयोग से दो मन्त्रों से आहुति देने का ज्ञापक है। मन्त्र निम्न हैं—

(क) इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।।

(ख) उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।। यजु० ८.५१

प्रथम सूत्रस्थ—'अग्निमुपसमाधायाज्यꣳसंस्कृत्येहरतिरिति जुहोति, से यह भी स्पष्ट है कि पूर्व में क० १—२५ में कही सामान्यविधि की अपेक्षा इस प्रायश्चित्त

कर्म में घृत संस्कार के पश्चात् 'इहरति' आदि दो आहुतियाँ देने के पश्चात् ही आघारादि आहुतियाँ दी जाएगीं।

महर्षि का मन्तव्य—"विवाहाग्नि में ४ व्याहृति-आज्याहुति देकर वामदेव्यगान करें" संस्कार विधि-विवाह संस्कार से...........।

२. (क) प्रतिक्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु। प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रतिप्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावा पृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे।। यजु० २०.१०

सूत्र में प्रतिक्षत्र इति यज्ञान्तेन पद ग्रहण से सम्पूर्ण मन्त्र ग्रहण न कर केवल 'यज्ञे' पद पर्यन्त मन्त्र का ग्रहण ही सूत्रकार को अभीष्ट है।

(ख) आ त्वाहार्षमन्तर भू ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्।। यजु० १२.११

इति प्रथमकाण्डे दशमी कण्डिका ✪

एकादशी कण्डिका

चतुर्थी कर्म

चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्रं प्रतिष्ठाप्य स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति॥१॥ अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। सूर्यप्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पशुघ्नीतनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा। गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहेति॥२॥ स्थालीपाकस्य जुहोति प्रजापतये स्वाहेति॥३॥ हुत्वा

हुत्वैतासामाहुतीनामुदपात्रे सर्ठस्रवान्त्समवनीय तत एनां मूर्द्धन्यभिषिञ्चति। या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नीं तत एनां करोमि सा जीर्य त्वं मया सहासाविति॥४॥ अथैनार्ठ स्थालीपाकं प्राशयति प्राणैस्ते प्राणान्त्संदधाम्यस्थिभिरस्थीनि मार्ठसैर्मार्ठसानि त्वचा त्वचमिति॥५॥ तस्मादेवंविच्छ्रोत्रियस्य दारेण नोपहासमिच्छेदुत ह्येवं-वित्परो भवति॥६॥ तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम्॥७॥ यथाकामी वा काम-माविजनितोः संभवामेति वचनात्॥८॥ अथास्यै दक्षिणार्ठसमधिहृदयमा-लभते। यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतर्ठ श्रृणुयाम शरदः शतमिति ॥९॥ एवमत ऊर्ध्वम्॥१०॥ ११॥

(कर्कः)—'चतुर्थ्या........प्रायश्चित्ते' इति। विवाहशेषोऽयमुच्यते। चतुर्थेऽहन्य-पररात्रे गृहाभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय विवाहशेषत्वाद्बहिः शालायां माभूदित्यभ्यन्तर-ग्रहणं, पूर्वाह्णव्युदासार्थं चापररात्रस्य, ब्रह्माणमुपवेश्येति चोदपात्रावसरविधित्सया। स्थालीपाकं श्रपयित्वेत्युच्यते तद्भूतोपदानं माभूदिति। आज्यभागाविष्ट्वेत्येतदाज्या-हुत्यवसरविधित्सयोक्तम्। अग्नेप्रायश्चित्त इत्येवमादि-पञ्चाज्याहुतीर्हुत्वा 'स्थाली........ स्वाहेति' अनेन मन्त्रेण स्थालीपाकस्येत्यवयवलक्षणा। षष्ठी। 'हुत्वा............पतिघ्नी' इत्यनेन मन्त्रेण। असाविति च नामधेयग्रहणम्। सर्वाहुत्यन्ते माभूदिति हुत्वा हुत्वेत्युक्तम्। मूर्द्धाभिषेकश्चागन्तुकत्वात्सर्वान्ते भवति। 'अथैना ......धामि' इत्यनेन मन्त्रेण। एनामिति वधूम्। 'तस्मा..........भवति' यस्मादस्या ऐक्यं संवृत्तं तस्माच्छ्रोत्रियदारेण नोपहास एष्टव्यः। उपहासशब्देन चाभिगमोऽभिधीयते। स चैवंवित् एवं कुर्वन् परोभवति पराभवति। निन्दार्थवादोऽयम्। 'तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम्' साऽनेन प्रकारेण ऊढा भवति। तामूढ्वा च यथर्तु ऋतावृत्तौ प्रवेशनमभिगमनं कुर्यात्। 'यथा कामी.......वचनात्' यथाकामं वा भवत्यभिगमो न ऋतावृतावेव। कुत एतत्? प्रजापतिना हि वरो दत्तः, स्त्रीणां ताभिश्च वृत्तः काममाविजनिताः इच्छया आविजनितोः आविजननकालात् पुंसा सह संभवामेति। एवं च सति विकल्प एवायम्। तथाच स्मरणम्—ऋतौ भार्यामुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जमिति। 'अथास्यै.....सुसीम' इत्यनेन मन्त्रेण हृदयालम्भश्चाभिगमोत्तरकालीनः। प्राक्कालीन इत्यपरे अप्रयतत्वादिति। 'एवमत ऊर्ध्वम्' ऋतावृतावेव कर्म कर्त्तव्यम्॥१॥

१. चतुर्थ्याम् = विवाह के पश्चात् चतुर्थ, अपररात्रे = रात्रि के अन्तिम प्रहर में, अभ्यन्तरतः = घर के अन्दर, अग्निमुपसमाधाय = वैवाहिक अग्नि की स्थापना कर, दक्षिणतः = दक्षिण की ओर, ब्रह्माणमुपवेश्य = ब्रह्मा को प्रतिष्ठित कर, उत्तरतः = उत्तर की ओर, उदपात्रं = जल से पूर्ण पात्र को, प्रतिष्ठाप्य = स्थापित करके, स्थालीपाकं = चरु खीर आदि, श्रपयित्वा = पकाकर, आज्यभागौ = आज्यभाग की दो आहुति, इष्ट्वा = देकर, वक्ष्यमाण-' अग्नेप्रायश्चित्ते' आदि पाँच मन्त्रों से, आज्याहुतीः = आज्य-घृत की आहुतियाँ, जुहोति = देता है।। १—२।।

३. 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्र से, स्थालीपाकस्य = स्थालीपाक-चरु-खीर की, जुहोति = 'एक आहुति' देता है।

४. हुत्वा-हुत्वा = प्रत्येक आहुति देकर, एतासाम् आहुतीनां = इन आहुतियों का अवशिष्ट अंश घृतादि, उदपात्र = जलपात्र में, समवनीय = छोड़कर, ततः = तदनन्तर, संस्रवात् = संस्रव पात्र से उसी घृतमिश्रित जल ले—'या ते पतिघ्नी...... सहासाविति'—इस मन्त्र से एनां = इस वधू के, मूर्द्धनि = मूर्धा पर, अभिषिञ्चति = अभिषिञ्चन करता है।

५. अथ = इस होम तथा मूर्धाभिषिञ्चन के पश्चात् वर 'प्राणैस्ते........ त्वचमिति'—इस मन्त्र का पाठ कर, ऐनां = इस वधू को, स्थालीपाकं = चरु, खीर, प्राशयति = खिलावे।

६. इस स्थालीपाक प्राशन से पत्नी पति के साथ ऐक्यभाव को प्राप्त हो जाती है। तस्मात् = अतः, एवंवित् श्रोत्रियस्य = ऐसे वेदज्ञ की, दारेण = स्त्री के साथ, उपहासं न इच्छेत् = (अभिगमन तो दूर) उपहास (हंसी-मजाक) की भी इच्छा न करे, उत = क्योंकि, ह्येवंवित् = निश्चय ही ऐसा करने वाला, परो भवति = नष्ट होता है अथवा ऐसा व्यक्ति उस श्रोत्रिय का शत्रु हो जाता है।

७. ताम् उदुह्य = पूर्वोक्त विधि से उस (वधू) को विवाहित करे, यथर्तु यथाकामी = स्त्री की कामना के अनुसार यथेच्छ सन्तानोत्पत्तिपर्यन्त अभिगमन करे।

८. अथवा 'काममाविजनितोः सम्भवाम' इति वचनात् = इस वचन से यथाकामी = स्त्री की कामना के अनुसार यथेच्छ सन्तानोत्पत्तिपर्यन्त अभिगमन करे।

९. अथ = अभिगम (स्त्री प्रसंग) के अनन्तर, "यत्ते सुसीमे ..... शरदः शतमिति"—इस मन्त्र को पढ़कर, अस्यै = पत्नी के, दक्षिणांसमधि = दाहिने कन्धे के ऊपर से हाथ ले जाकर, **हृदयम् आलभते = हृदय का स्पर्श करता है।**

१०. एवमत ऊर्ध्वम् = इसके आगे भी ऋतुकाल में इसी प्रकार अभिगमन करे।।

टिप्पणी--(क) इस चतुर्थीकर्म को निषेक अथवा गर्भाधान भी कहते हैं।

(ख) महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि (गर्भाधान प्रकरण) में उक्त पाँच आहुतियों के साथ पन्द्रह अन्य, जो गोभिल गृह्य सूत्रानुसार ऊहित हैं, का भी विधान किया है। इस प्रकार से ये प्रायश्चित्ताज्याहुतियां २० हो जाती हैं।

(ग) गोभिल गृ० २.५.२—४ के अनुसार प्रथम चार-अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य विषयक तथा पांचवी में—'अग्नि-वायु-चन्द्र-सूर्य समवेत रूप में १ यह मन्त्र मन्त्रब्राह्मण १.४.१—५ में उपलब्ध हैं।

(घ) कर्मप्रदीप ३.६.३—४ के अनुसार प्रथम पञ्चक में 'पापी लक्ष्मीः' यह पद, द्वितीय पञ्चक में 'पतिघ्नी', तृतीय में 'अपुत्र्या' और चतुर्थ में 'अपशव्या' तनू की ऊहा करके उसे दूर करने की प्रार्थना है। यह ऊहा मन्त्रब्राह्मण के प्रत्येक मन्त्र की पञ्चकरूप में ऊहा है।

(ङ) खादिर गृह्यसूत्र १.४.१२; भारद्वाज गृ०सू० १.१९, कौषीतकि गृ० सू० १.११.१—५ भी द्रष्टव्य हैं।

(च) इन मन्त्रों में नाथकाम = सन्तान की कामना के साथ-साथ स्त्री के पति, प्रजा-सन्तान, पशु, गृह और यशोनाशक तनू (स्वभाव-कर्म-भाव-आचरण) को भी दूर करने की प्रार्थना की गई है।

(छ) यहाँ प्रार्थना करता हुआ पति स्वयं को ब्राह्मण कह रहा है। इस ब्राह्मण शब्द को अथर्ववेदीय "ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः" ५.१७.९ के सन्दर्भ में ही समझना चाहिये।

जयराम एवं गदाधर ने ब्राह्मण का अर्थ—'ब्राह्मणः ब्रह्मण्यः वैदिको वा' किया है।

(ज) सूत्र ९ में पठित 'हृदयम् आलभते' में भाष्यकार आङ् + लभ = आलभते का अर्थ स्पृशति करते हैं। जबकि अर्घविधि पा.गृ. १.३.२७ में वधपरक। एतद् विषयक टिप्पणी पाठक वहीं देखने का कष्ट करें।

इति प्रथमकाण्डे एकादशी कण्डिका ✪

द्वादशी कण्डिका

पक्षादिकर्म

पक्षादिषु स्थालीपाकꣳ श्रपयित्वा दर्शपूर्णमासदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति ब्रह्मणे प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्यो द्यावापृथिवीभ्यामिति॥१॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यो बलिहरणं भूतगृह्येभ्य आकाशाय च॥२॥ वैश्वदेवस्याग्नौ जुहोत्यग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति॥३॥ बाह्यतः स्त्रीबलिꣳ हरति नमः स्त्रियै नमः पुꣳसे वयसेऽवयसे नमः शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापीनां पतये। नमः ये मे प्रजामुपलोभयन्ति ग्रामे वसन्त उत वाऽरण्ये तेभ्यो नमोऽस्तु बलिमेभ्यो हरामि स्वस्ति मेऽस्तु प्रजां मे ददत्विति॥४॥ शेषमद्भिः प्रप्लाव्य ततो ब्राह्मणभोजनम्॥५॥१२॥

(कर्कः)—'पक्षादिषु......वीभ्यामिति'। पक्षादिष्विति बहुवचनोपदेशात्सर्व पक्षादिषु क्रिया स्थालीपाकं श्रपयित्वेत्युच्यते तद्भूतोपादानं माभूदिति तेनैव स्थालीपाकेन दर्शपूर्णमास देवताभ्यो विनिष्कृष्य दर्शे दर्शदेवताभ्यो हुत्वा पौर्णमासे पौर्णमासदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति ब्रह्मणे प्रजापतये इत्येवमादिभ्यः। 'विश्वेभ्यो....शाय च'। स्थालीपाकादेव द्रव्यान्तरानुपदेशात्, बलिहरणे च नमस्कारः 'वैश्वदे.......ष्टकृते स्वाहेति' वैश्वदेवस्येत्यवयवलक्षणा षष्ठी। वैश्वदेवं च केचित् पृथक् चरुं कुर्वन्ति यथा पौष्णस्य जुहोतीति पौष्णं, तत्पुनरयुक्तं वैश्वदेशब्देन विश्वेदेवादेवता अस्येति सर्वार्थः पाकोऽभिधीयते ततो जुहोतीत्युक्तं भवति। यत्तु पौष्णवदिति नहि पौष्णशब्दवाच्योऽन्यः क्वचिच्चरुर्भवति तेनास्य पृथक्क्रिया। वैश्वदेवस्तु पुनः पाको विद्यत एवेति तथाच वक्ष्यति 'वैश्वदेवादन्नात्पर्युक्ष्य स्वाहाकारै र्जुहुयात्' इति। अग्नौ जुहोतीति किमर्थमिदमुक्तम्? अग्नावेव हि होमो नान्यत्रेति तेनाग्निग्रहणं बलिकर्मातो माभूदिति। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति प्रयोगप्रदर्शनार्थं, प्राजापत्य स्विष्टकृच्चेति प्रदेशान्तरेऽभिहितं तेनेह प्रयोग उपदर्श्यते। अपि च स्थालीपाकेन दर्शपौर्णमासदेवतादीनां होमविधानस्यावसरविधित्सया। तत्कथम्? प्राङ्महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविरित प्रदेशान्तरें उक्तम्। तेन प्राङ्महाव्याहृतिहोमा- दाज्यभागोत्तरकालं चावसरोऽवगम्यत इति। बाह्यतः स्त्रीबलिꣳ हरति नमः स्त्रियै नमः

पुंसे वयसेऽवयस इत्येवमादिपृथङ्मन्त्रवाक्यैः। एतच्चागन्तुकत्वात्प्राशनान्ते भवति। 'शेषम.......भोजनम्'। शेषं च स्थालीपाकशेषम्।

१. पक्षादिषु = अग्न्याधान के अनन्तर शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा (कृष्णपक्ष हो तब अमावस्या) और प्रतिपदा की सन्धि में, स्थालीपाकं = खीर आदि, श्रपयित्वा = पकाकर, दर्शपूर्णमास देवताभ्यः = दर्श-अमावस्या और पूर्णिमा के देवताओं के लिए हुत्वा = आहुति देकर वक्ष्यमाण मन्त्रों से, जुहोति = हवन करता है। मन्त्र निम्न हैं—ब्रह्मणे स्वाहा। इदं ब्रह्मणे, प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः, द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा। इदं द्यावा पृथिवीभ्याम्। पूर्णिमा को अग्नये स्वाहा। अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। विष्णवे स्वाहा। अमावस्या को अग्नये स्वाहा। इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा। विष्णवे स्वाहा।

२. विश्वेभ्यो देवेभ्यः = विश्वेदेवों के लिए, भूतगृह्येभ्यः = भूतगृह (घर के प्राणी, कुत्ते, चींटी आदि) के लिए, च = और, आकाशाय = आकाश-नभचरों के लिए, बलिहरणं = अग्नि के उत्तर में पूर्व-पूर्व की ओर स्थाली पाक से ही तीन बलि दे। बलिहरण निम्न प्रकार होगा—

१. विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम, २. भूतगृह्येभ्यो नमः, इदं भूतगृह्येभ्यो न मम, ३. आकाशाय नमः, इदम् आकाशाय न मम

३. वैश्वेदेवस्य = वैश्वदेव चरु को अभिघारित करके, अग्नौ जुहोति = अग्नि में (चरु की) आहुति दे। (यहाँ अग्नि में आहुति देने का अभिप्राय बलिकर्म से पृथक् करणार्थ है) आधे चरु से प्रथम तीन तथा आधे भाग से चतुर्थ आहुति होगी।

मन्त्र-१. अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम, २. प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम, ३. विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम, ४. अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

४. बाह्यतः = घर से बाहर 'स्त्री-बलि' (दुष्ट) स्त्री आदि के लिए बलि, हरति = दे। बलिभाग प्रदानार्थ मन्त्र निम्न है—

नमः स्त्रियै नमः पुंसे वयसेऽवयसे नमः शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापीनां पतये। नमः ये मे प्रजामुप लोभयन्ति ग्रामे वसन्त उत वाऽरण्ये तेभ्यो नमोऽस्तु बलिमेभ्यो हरामि स्वस्ति मेऽस्तु प्रजां मे ददतु॥

५. शेषम् = अवशिष्ट स्थालीपाक को, अद्भिः = जल से, प्रप्लाव्य = डुबोकर, ततः = तदनन्तर, ब्राह्मणभोजनम् = ब्राह्मण-भोजन करावे।

टिप्पणी–१. यदि आधान कृष्ण पक्ष में किया गया हो, तब प्रथम प्राप्त दर्शेष्टि को किए बिना प्रथम पक्षादिकर्म पूर्णिमा से ही प्रारम्भ होगा। तदनु प्रसङ्ग प्राप्त दर्शकर्म।

२. 'बलिहरणे च नमस्कार' इस कर्कभाष्य के अनुसार बलिहरण के समय नमः का प्रयोग विहित है।

इति प्रथमकाण्डे द्वादशी कण्डिका ✪

त्रयोदशी कण्डिका

सा यदि गर्भं न दधीत सिꣳह्याः श्वेतपुष्प्या उपोष्य पुष्येण मूलमुत्थाप्य चतुर्थेऽहनि स्नातायां निशायामुदपेषं पिष्ट्वा दक्षिणस्यां नासिकायामासिञ्चति। इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभमिति॥१॥१३॥

(कर्कः)—'सा यदि........त्रायमाणेति'। सेति शब्देन या सा व्यूढा सोच्यते यद्यसौ गर्भं न धारयति तर्हि सिꣳह्याः श्वेतपुष्प्याः सिंहीति रिङ्गणिकोच्यते कण्टालिकेति लोकप्रसिद्धा तस्या उपोष्य पुष्येण नक्षत्रेण मूलमुत्थाप्य चतुर्थेऽहनि स्नातायां रात्रावुदपेषं पिष्ट्वा दक्षिणस्यां नासिकायामासिञ्चतीयमोषधी त्रायमाणेत्यनेन मन्त्रेण॥१३॥

१. सा यदि = वह पत्नी यदि, गर्भं न दधीत = गर्भ धारण न करे तब, सिंह्याः श्वेत पुष्प्या = श्वेत पुष्पवाली, सिंही = कण्टकारी को, उपोष्य = उपवासपूर्वक, पुष्येण = पुष्य नक्षत्र के साथ चन्द्रयोग होने पर, मूलमुत्थाप्य = समूल उखाड़कर, चतुर्थेऽहनि स्नातायां = रजोदर्शन के पश्चात् चतुर्थ दिवस स्नान करने (रजोनिवृत्ति) के पश्चात्, निशायां = रात्रि में, उदपेषं पिष्ट्वा = पानी के साथ पीसकर, दक्षिणस्यां = पत्नी की दाहिनी, नासिकायाम् = नासिका-नासारन्ध्र में, आसिञ्चति = सिंचन करता है। ओषधी सिंचन का मन्त्र निम्न है—

इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती।

अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम्॥

टिप्पणी–१. कात्यायन गृह्यसूत्र में इस कण्डिका के पूर्व ११ + ९ सूत्रात्मक दो कण्डिकाएं गर्भाधान विषयक ही दी गयी है। वहाँ यह कण्डिका १५ संख्या पर है।

२. गदाधर ने गर्गपद्धति को उद्धृत कर कहा है कि—औषधी सिंचन कर्म के पश्चात् पति भोजन करे।

३. संस्कार विधि गर्भधान प्रकरणस्थ पाद टिप्पणी द्रष्टव्य है—

''यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायें अर्थात् दो बार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाये, गर्भ स्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्य नक्षत्र युक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा लेके इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में देके उससे पति पूछे ''किं पिवसि'' इस प्रकार तीन बार पूछे और स्त्री भी अपने पति को 'पुंसवनम्' इस वाक्य को तीन बार बोल के उत्तर देवे और उसका प्राशन करे, इसी रीति से पुनः पुनः तीन बार विधि करना तत्पश्चात् सङ्खाहूली व भटकटाई औषधि को जल में महीन पीस के उसका रस कपड़े में छान के पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन करे और पति—ओ३म् इयमोषधी त्रायमाणा........जग्रभम्॥ इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे, वह सूत्रकार का मत है।''

इति प्रथमकाण्डे त्रयोदशी कण्डिका ✪

चतुर्दशी कण्डिका

पुंसवनम्

अथ पुर्ठन्सवनम्॥१॥ पुरा स्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा॥२॥ यदहः पुर्ठसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युज्येत तदहरुपवास्याप्लाव्याहते वाससी परिधाप्य

न्यग्रोधावरोहाञ्चछुङ्गाँश्च निशायामुदपेषं पिष्ट्वा पूर्ववदासेचनरꣳ हिरण्यगर्भो-ऽद्भ्यः संभृत इत्येताभ्याम्।।३।। कुशकण्टकरꣳ सोमारꣳशु चैके।।४।। कूर्मपित्तं चोपस्थे कृत्वा स यदि कामयेत वीर्यवान्त्स्यादिति विकृत्यैनमभिन्त्रयते सुपर्णोऽसीति प्राग्विष्णुक्रमेभ्यः।।५।।१४।।

(कर्कः)—'अथ पुरꣳ तृतीयेवा' पुंसवनमिति गर्भसंस्कारकर्मणो नामधेयं, तच्च पुरा गर्भस्पन्दनाद्भवति मासे द्वितीये तृतीये वा। 'यदह.......त्येताभ्याम्'। यस्मिन्नहनि पुंसा नक्षत्रेण पुनर्वसुपुष्यादिना चन्द्रमसो योगो भवति तदहस्तां स्त्रियमुपवास्य स्नापयित्वा चाहते वाससी परिधाप्य न्यग्रोधावरोहान् न्यग्रोधावलम्बिकान् शुङ्गाँ-स्तदङ्कुरान् रात्रावुदपेषं पिष्ट्वा पूर्वद्दक्षिणस्यां नासिकायामासिञ्चति हिरण्यगर्भो-ऽद्भ्यः संभृतः इत्येताभ्यामृग्भ्याम् 'कुशक.....क्रमेभ्यः' **कूर्मपित्तशब्देनोदकशराव-मुच्यते** तदस्याः स्त्रिया उपस्थे कृत्वा स यदि कामयेत वीर्यवान् गर्भः स्यादिति तदा विकृत्यैनमभिमन्त्रयते सुपर्णोऽसीति प्राग्विष्णुक्रमेभ्यः।।१४।।

१. अथ = गर्भ धारण के पश्चात् पुंसवनम् = पुंसवन संस्कार का वर्णन करते हैं।

२. पुरा स्पन्दते इति = यह पुंसवन नामक गर्भ संस्कार कर्म गर्भ स्फुरण (बच्चे के गर्भ में हिलने-डुलने) से पूर्व ही, द्वितीये = दूसरे, तृतीय वा मासे = अथवा तीसरे महीने में करना चाहिये।

३. यदहः = जिस दिन, पुंसा नक्षत्रेण = पुल्लिग वाची नक्षत्र से, चन्द्रमा युज्येत = चन्द्रमा युक्त हो, तदहः = उस दिन (गर्भवती स्त्री को) उपवास्य = उपवास कराकर, आप्लाव्य = (शिखा सहित) स्नान कराकर, अहते वाससी = दो नवीन वस्त्र, परिधाप्य = धारण कराकर, न्यग्रोधावरोहान् = वटवृक्ष की जटाओं, शुङ्गान् च = और नवीन कोंपलों को, निशायाम् = रात्रि में, उदपेषं पिष्ट्वा = जल में पीसकर, पूर्ववत् = पूर्ववत् १३ वीं कण्डिका के अनुसार दाहिनी नासिका में, हिरण्यगर्भोऽद्भ्यः संभृत इत्येताभ्याम् = 'हिरण्यगर्भः' और 'अद्भ्यः संभृत' इन दो मन्त्रों से, आसेचनम् = सिंचन करना चाहिए। मन्त्र—

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यजु० १३.४

ओ३म् अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यैरसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्ततताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमा जानमग्रे॥
यजु० ३१.१७

४. एके कुशकण्टकं = कुछ आचार्य वट की जटाओं एवं नूतन कोपलों के साथ-साथ कुशमूल, सोमांशु च = सोमलता का खण्ड भी मिलाकर आसेचन करना मानते हैं।

५. स = वह (पति), यदि कामयेत = यदि कामना करे कि, वीर्यवान् स्यात् = होने वाली सन्तान शक्तिशाली हो तो, कूर्मपित्तं = जल से भरे शकोरे को, उपस्थे कृत्वा च = स्त्री की गोद में रखकर, प्राग् विष्णुक्रमेभ्यः = विष्णोः क्रमोऽसि' इस मन्त्र से पहले वाले, विकृत्य सुपर्णोऽसीति = विकृति छन्दस्क सुपर्णोऽसि इस मन्त्र से, एवम् अभिमन्त्रयते = गर्भाशय का अभिमन्त्रण-स्पर्श करे मन्त्र निम्न है—

ओ३म् सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोम आत्मा छन्दां स्यङ्गानि यजूँ᳘षि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत॥ यजु० १२.४

टिप्पणी–१. भर्तृयज्ञ के अनुसार—हिरण्यगर्भः और अद्भ्यः सम्भृतः दोनों मन्त्रों से पृथक्-पृथक् आसेचन होना चाहिये।

२. रत्नकोशे **पुन्नक्षत्राणि**—हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुगर्मृगशिरः पुष्यमिति। अनुराधाऽपि पुन्नक्षत्रम्। 'अनुराधान्हविषा वर्द्धयन्त' इतिश्रुतेः।

३. **कूर्मपित्तं**—(क) कूर्मपृष्ठनिर्मितं पात्रं कूर्मपित्तम्-विश्वनाथः। ओल्डेन बर्ग ने भी कछुए का पित्त (खोपड़ी) अर्थ ही किया है। यद्यपि विश्वनाथ ने भी 'उदकपूर्णशरावमित्यन्ये' कहकर अन्य आचार्यों के अनुसार—'जलपूर्ण शराव' अर्थ का भी उल्लेख किया है।

(ख) कूर्मपित्त शब्देनोदकशरावमुच्यते—कर्कः

(ग) कूर्मपित्त शब्देनोदकयुक्तशरावमुच्यते—जयरामः

(घ) उदकपूर्णशरावम्—हरिहरः

(ङ) उदपूर्ण शरावम्—गदाधरः

४. भारद्वाज गृह्यसूत्र १.२२ के अनुसार पुंसवन का काल तृतीय वा चतुर्थ मास है। यहाँ 'शराव' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।

इति प्रथमकाण्डे चतुर्दशी कण्डिका ✪

पञ्चदशीकण्डिका

सीमन्तोन्नयनम्

अथ सीमन्तोन्नयनम्।।१।। पुंꣳसवनवत्।।२।। प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा।।३।। तिलमुद्गमिश्रꣳ स्थालीपाकꣳ श्रपयित्वा प्रजापतेर्हुत्वा पश्चादग्नेर्भद्रपीठ उपविष्टाया युग्मेनसटालुग्रप्सेनौदुम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैस्त्र्येण्या शलल्या वीरतरशङ्कुना पूर्णचात्रेण च सीमन्तमूर्ध्वं विनयति भूर्भुवः स्वरिति।।४।। प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा।।५।। त्रिवृतमाबध्नाति। अयमूर्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनी भवेति।।६।। अथाह वीणागाथिनौ राजानꣳ संगायेतां यो वाऽप्यन्यो वीरतरइति।।७।। नियुक्तामप्येके गाथामुपोदाहरन्ति। सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः। अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यमसाविति यां नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति।।८।। ततो ब्राह्मणभोजनम्।।९।।१५।।

(कर्कः)—'अथसीमन्तोन्नयनम्' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। सीमन्तोन्नयन-मिति संस्कारः स च गर्भस्य तदभावेऽभाव इति अतश्च प्रतिगर्भं क्रिया। 'पुंसवनव-दिति' यदहः पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमसो योगस्तदहरुपवास्याप्लाव्याहते वाससी परिधा-प्येति च भवति न सर्वं लभ्यते। 'प्रथम......ष्टमे वा' द्वितीयादिषु गर्भेष्वनियमः। अपरे तु वर्णयन्ति सीमन्तोन्नयनं प्रथमगर्भ एवेति। अस्मिन्व्याख्यानें द्वितीयादीनां गर्भाणां तत्संस्कारलोपः प्राप्नोति तस्मान्नैतदिष्यते। 'तिलमुद्ग...... स्वरिति' एतदन्तं सूत्रम्।तेनैव स्थालीपाकेन प्राजापत्यो होमः। स चाज्यभागमहाव्याहृत्यन्तराले। तत एव स्विष्टकृत् प्राङ्महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदित्युक्तत्वात्। पश्चादग्नेर्भद्रपीठ' इति। पश्चादग्नेर्भद्रपीठ इत्येवमाद्यन्ते भवति आगन्तुकत्वादन्ते निवेशः। भद्रपीठं मृदुपीठं तत्रोपविष्टायाः स्त्रिया युग्मेन सटालुग्रप्सेनौदुम्बरेण फलस्तबकेन त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैस्त्र्येण्या शलल्या च वीरतरशङ्कुना पूर्णचात्रेण च सीमन्तमूर्ध्वं विनयति भूभुर्वः स्वरित्यनेन मन्त्रेण। विनयामीत्यध्याहारः साकाङ्क्षत्वात्। 'प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा' विनयनम्। वा शब्दो

विकल्पार्थः। 'त्रिवृत............भवेति' त्रिवृतदेशं प्रतिवेण्याख्यं तस्मिन्नेतान्याबध्नाति अयमूर्जावतो वृक्ष इत्यनेन मन्त्रेण। अथाह 'वीणागा..........रतर इति' ततश्च तौ राज-संबधि सोत्साहौ। गायतः यो वाऽप्यन्यः कश्चिद्वीरतरस्तमिति।विकल्पोऽयम्। 'नियुक्ता.... जेमा इति'। एके आचार्या एनां गाथामुपोदाहरन्ति एके नेति विकल्पः। असाविति च नामादेशः। 'यां नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति। ततो ब्राह्मणभोजनम्'॥१५॥

१. अथ = पुंसवन के अनन्तर, सीमन्तोन्नयनम् = सीमन्तोन्नयन का वर्णन करते हैं।

२. पुंसवनवत् = पुंसवन संस्कार के समान ही सीमन्तोन्नयन भी चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र से युक्त होने पर ही होता है। पुंसवन के सदृश ही गर्भवती को उपवास, सशिरस्क स्नान कराकर दो नूतन वस्त्र भी धारण कराने चाहियें।

३. प्रथमगर्भे = प्रथम गर्भ समय में, षष्ठेऽष्टमे वा मासे = छठे अथवा आठवें मास में यह संस्कार करना चाहिए।

४. तिलमुद्गमिश्रं स्थालीपाकं = तिल, मूँग मिश्रितस्थाली पाक (अर्थात् तिल + मूँग + चावल = खिचड़ी) श्रपयित्वा = पकाकर, प्रजापतेर्हुत्वा = प्रजापतये स्वाहा—यह एक प्राजापत्याहुति देकर, पश्चादग्नेः = अग्नि के पश्चिम की ओर (पति के दाहिने भाग में) भद्रपीठे = कोमल पीढे अथवा आसन पर, उपविष्टायां = (पत्नी के) बैठ जाने पर, पति औदुम्बरेण = गूलर के, युग्मेन सटालुग्रप्सेन = कच्चे युग्मफलयुक्त स्तबक, त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैः = और तीन कुशपिञ्जूलों (बालियों), त्र्येण्या शलल्या = तीन स्थानों पर श्वेत (चिन्हयुक्त) साही के कांटे, वीरतरशङ्कुना = अश्वत्थ/खादिर शङ्कु, च पूर्ण चात्रेण = और सूत्र से पूर्ण तकुवे (अर्थात्—(क) युग्म गूलर स्तबक, (ख) तीन दर्भ की बाली, (ग) तीन स्थान पर श्वेत चिन्हयुक्त साही का कांटा, (घ) अश्वत्थ/खादिर शङ्कु और (ङ) सूत के धागे से युक्त तकुआ—इन पाँचों से एक साथ) से भूभुर्वः स्वः इति = भू भुर्वः स्वः व्याहृतिपाठ पूर्वक, सीमन्तम् = केशों को ऊर्ध्व = ऊपर की ओर, विनयति = करता है। पति व्याहृति पाठ निम्न प्रकार करेगा—"भूर्भुवः स्वः विनयामि।"

५. प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा = अथवा तीनों व्याहृतियों का एक साथ उच्चारण न करके प्रत्येक महाव्याहृति द्वारा पत्नी की माँग-सीमन्त को पृथक् करे। मन्त्र पाठ इस प्रकार होगा—(क) ओ३म् भूर्विनयामि, (ख) ओ३म् भुवर्विनयामि, (ग) ओ३म् स्वर्विनयामि।

६. त्रिवृतमाबध्नाति = तीन लडों में गुंथी वेणी में इन पाँचों वस्तुओं को बाँधता है। वेणी गूंथते समय निम्न मन्त्र का पाठ करता है—

'अयमूर्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनी भव'॥

७. अथाह = वेणी ग्रन्थन के अनन्तर पति, वीणागाथिनौ = वीणा वादकों से, आह = कहता है कि—राजानं संगायेतां = राजा की गाथा गाएं, वा = अथवा, योऽप्यन्यः = जो भी कोई दूसरा, वीरतर इति = श्रेष्ठ वीर हो उसकी कथा सुनाएं।

८. एके = कुछ आचार्य "**सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः। अविमुक्त चक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यमसौ॥**" इति—इस नियुक्ताम् गाथाम् अपि = निगमोक्त गाथा को भी, उदाहरन्ति = गाने का विधान करते हैं। गाथा के पश्चात् स्त्री, यां नदीम् = जिस नदी के, उपावसिता भवति = समीप रहने वाली हो, तस्या = उस नदी का, नाम गृह्णाति = नाम कथन करे।

९. ततः = तत्पश्चात्, ब्राह्मणभोजनम् = ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।

टिप्पणी–१. 'प्रथमगर्भे' सूत्र ३ के अनुसार सीमन्तोन्नयन प्रथमगर्भ के समय विहित है। गर्भान्तर के विषय में अनियम है।

२. प्रथमगर्भायाश्चतुर्थे मासि सीमन्तोन्नयनम्—बौ०गृ० १.१०.१ के अनुसार सीमन्तोन्नयन प्रथम गर्भ के चतुर्थ मास में विहित है। भारद्वाज गृ० १. २१ भी। गोभिल २.७.२ के अनुसार प्रथम गर्भ समय ही चतुर्थ, छठे व आठवें मास का विधान है।

३. सूत्रकार सीमन्तोन्नयन को 'गार्भपात्रसंस्कार'—गर्भश्च पात्रञ्च गर्भपात्रे तयोरयं गार्भपात्रः, स चासौ संस्कारश्चेति स तथा। गर्भ उदरस्थमपत्यम्। पात्रं तदाधारः स्त्री' मानते हैं। अतः एक बार संस्कार हो जाने पर आगामी सभी गर्भ संस्कृत हो जाते हैं। तद्यथा—

सकृच्च कृतसंस्काराः सीमन्तेन कुलस्त्रियः।
यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स गर्भः संस्कृतो भवेत्॥ हारीतः

किन्तु भाष्यकार कर्क ने इसे गर्भ का संस्कार मानते हुए प्रतिगर्भ स्वीकार किया है।

४. त्र्येण्या—(क) त्रिषु स्थानेषु श्वेता त्र्येणी तया त्र्येण्या।

(ख) गोभिल २.७.८ में त्रिश्वेतया च शलल्या.....में स्पष्टत: श्वेत विधान है।

इति प्रथमकाण्डे पञ्चदशी कण्डिका ✪

षोडशी कण्डिका

सोष्यन्ती कर्म

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति। एजतु दशमास्य इति प्राग्यस्यैत इति॥ १॥ अथावरावपतनम्। अवैतु पृश्निशेवल शुनेजराय्वत्तवे। नैवमाꣳस सेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायत (न) मवजरायुपद्यतामिति॥२॥ जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति॥३॥ अनामिकया सुवर्णान्तर्हितया मधुघृते प्राशयति घृतं वा भूस्त्वयि दधामि भुवस्त्वयि दधामि स्वस्त्वयि दधामि भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामीति॥४॥ अथास्यायुष्यं करोति॥५॥ नाभ्यां दक्षिणे वा कर्णे जपति अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। ब्रह्मा-युष्मत्तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। देवा आयुष्मन्तस्ते-ऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। ऋषय आयुष्मन्तस्तेव्रतैरा-युष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायु-ष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्माँस्तेन त्वा-ऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमीति॥६॥ त्रिस्त्रिस्त्र्यायुषमिति च॥७॥ स यदि कामयेत सर्वमायुरियादिति वात्सप्रेणैनमभिमृशेत्॥८॥ दिवस्परीत्येतस्यानुवाकस्योत्तमा-मृचं परिशिनष्टि ॥९॥ प्रतिदिशं पञ्च ब्राह्मणानवस्थाप्य ब्रूयादिममनुप्राणि-तेति॥१०॥ पूर्वो ब्रूयात्प्राणेति॥११॥ व्यानेतिदक्षिणः॥१२॥ अपानेत्यपरः॥१३॥ उदानेत्युत्तरः॥१४॥ समानेति पञ्चम उपरिष्टादवेक्षमाणो ब्रूयात्॥१५॥ स्वयं वा कुर्यादनुपरिक्रामममविद्यमानेषु॥१६॥ स यस्मिन्देशे जातो भवति तमभिमन्त्रयते वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतमिति॥१७॥ अथैनमभिमृशत्यश्मा भव

परशुर्भव हिरण्यमस्तुतं भव। आत्मा वै पुत्र नामाऽसि स जीव शरदः शतमिति॥१८॥ अथास्य मातरमभिमन्त्रयत इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः। सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरदिति॥१९॥ अथास्यै दक्षिणꣳ स्तनं प्रक्षाल्य प्रयच्छतीमꣳ स्तनमिति॥२०॥ यस्ते स्तन इत्युत्तरमेताभ्याम्॥२१॥ उदपात्रं शिरस्तो निदधात्यापो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ॥ एवमस्याꣳ सूतिकायाꣳ सुपुत्रिकायां जाग्रथेति॥२२॥ द्वारदेशे सूतिकाग्निमुपसमाधायोत्थानात्संधिवेलयोः फलीकरणमिश्रान्सर्षपानग्नावावपति शण्डामर्क्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा। आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः कुम्भी शत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहेति॥२३॥ यदि कुमार उपद्रवेज्जालेन प्रच्छाद्योत्तरीयेण वा पिताऽङ्क आधाय जपति कूर्कुरः सुकूर्कुरः कूर्कुरो बालबन्धनः। चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेताह्वर तत्सत्यम्। यत्ते देवा वरमददुः स त्वं कुमारमेव वा वृणीथाः। चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेताह्वर तत्सत्यम्। यत्ते सरमा माता सीसरः पिता श्यामशबलौ भ्रातरौ चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वरेति॥२४॥ अभिमृशति न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति यत्र वयं वदामो यत्र चाभिमृशामसीति॥२५॥ १६॥

(कर्कः)—'सोष्यन्ती.....इति'। षूङ् प्राणिगर्भविमोचने।गर्भं विमुञ्चन्तीं विजनयन्तीमित्यर्थः। अद्भिरभ्युक्षति एजतु दशमास्य इत्यनेन मन्त्रेण प्राग्यस्यैत इति चोच्यते। प्रकरणे पाठाभावात् परिसमाप्तत्वाच्च वाक्यस्य। अथावराव-पतन्' मन्त्रं जपतीत्यध्याहारः। अवरेति जरायुविशेषः अभिधानात् तस्याधः पतने जपः पितुः 'अवैतुपृश्निशेवलम्' इत्यस्य। 'जातस्य......दधामीति' अनेन मन्त्रेण। प्रतिवाक्यमित्यपरे। अच्छिन्ने नाले एतत् क्रियते। कुमारग्रहणाच्च स्त्रिया अतः प्रभृति न क्रियते।' अथास्या........ युष्मानिति'। अधिकरणसप्तम्यभावात्समीपसप्तमीयम्। गङ्गायां गावो यथा। त्रिरेतज्जपति। त्र्यायुषमिति च त्रिरेव। यदि दैवान्मानुषादपचारान्मेधाजननं स्वकाले न कृतं तथाप्यायुष्यकरणं भवत्येव। मेधाजननस्य हि कालः श्रूयते—तस्मात्कुमारं जातं घृतं वै वाऽग्रे प्रतिलेहयन्ति स्तनं वाऽनुधापयन्तीति। 'स यदि......शिनिष्ट'। दिवस्परीत्येतस्योत्तमामृचं परिशेषयित्वाऽविशिष्टं वात्सप्रमुच्यते।' प्रतिदिशं.....णितेति'। प्रति-

दिशमेकैकमेवं ब्राह्मणानामवस्थापनं कुमारस्य। तत्र पूर्वं तान्प्रति ब्रूयात् इममनु-प्राणितेति। 'पूर्वो.......द्यमानेषु'। अविद्यमानेषु ब्राह्मणेषु स्वयमेव करोत्यनुपरिक्रम्यानु-परिक्रम्य। 'स यस्मिन्देशे जातो भवति तमभिमन्त्रयते वेद ते भूमीत्यनेन मन्त्रेण। अथैनमभिमृशत्यश्माभव परशुर्भवेति अनेन मन्त्रेण। वात्सप्राभिमर्शनाद्येतदभिमर्शनान्तं कालव्यतिक्रमेणापि क्रियते तत्संकारत्वात्। अथास्य मातरमभिमन्त्रयते इडासीत्यनेन मन्त्रेण। अथास्यै दक्षिणं स्तनं प्रक्षाल्यप्रयच्छति इमꣳ स्तनमित्यनेन मन्त्रेण। यस्ते स्तन इत्युत्तरमेताभ्याम्' ऋग्भ्याम्। द्विवचनोपदेशाच्च इमꣳ स्तनमिति, यस्ते स्तनमिति च द्वितीये। स्तनसमर्पणं च पीतस्तनस्य न भवति। 'उदपात्रं शिरस्तो निदधाति आपो देवेषु जाग्रथेत्यनेन मन्त्रेण। एतच्च प्रागुत्थानाद्भवत्येव। द्वारदेशे सूतिकाग्नि-मुपसमाधायोत्थानात्संधिवेलयोः फलीकरणमिश्रान्सर्षपानग्नावावपति शण्डामर्का इति प्रतिमन्त्रम्। फलीकरणाः कणाः सर्षपाश्च। आवपनोपदेशाच्च होमेतिकर्त्तव्यता न भवति। यदि कुमार उपद्रवेज्जालेन प्रच्छाद्योत्तरीयेण वा पिताऽङ्क आधाय जपति। कूर्कुरः सुकूर्कुर इत्यनेन मन्त्रेण। अभिमृशति, न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति यत्र वयं वदामो यत्र चाभिमृशामसीत्यनेन मन्त्रेण। कुमारशब्देन कुमार-ग्रहोऽभिधीयते'।।१६।।

१. सोष्यन्तीम् = प्रसवशूलयुक्त स्त्री को (पति), अद्भिः = जल से, अभ्युक्षति = अभिषिञ्चित करता है। एजतु दशमास्य इति = एजतु दशमास्य इस मन्त्र से, यस्यैत इति प्राक् = यस्यैत इस मन्त्रांश से पूर्व भाग तक अर्थात् एजतु दशमास्य से लेकर 'अस्रज्जरायुणा सह' तक मन्त्र पाठ कर्त्तव्य है।

मन्त्र निम्न है— **एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह।**

यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति।

एवायं दशमास्योअस्त्रज्जरायुणा सह।। यजु० ८.२८

२. अथ = जल से अभ्युक्षण करने के पश्चात्, अवर = जरायुविशेष (गर्भस्थ शिशु) के अवपतनम् = अधः पतनार्थ (बाहर आने के लिए) पिता अवैतु.... पद्यतामिति = अवैतु......इस मन्त्र का जप करे। मन्त्र—

अवैतु पृश्निशेवलं शुने जराय्वत्तवे।

नैव मांसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतमवजरायु पद्यताम्।।

मेधाजनन कर्म—३. जातस्य कुमारस्य = उत्पन्न हुए कुमार (बालक) के, आच्छिन्नायां नाड्यां = अच्छी प्रकार नाल छेदन करके, मेधाजनन-आयुष्ये = मेधाजनन और आयुष्य (वर्धनार्थ) कर्म, करोति = करता है।

४. सुवर्णान्तर्हितया अनामिकया = बालक का पिता स्वर्णाच्छन्न अनामिका (कनिष्ठका के समीपस्थ की अंगुली) से मधुघृते = मधु और घृत, घृतं वा = अथवा घृत, प्राशयति = प्राशन (खिलावे) कराता है। प्राशन मन्त्र—

भूस्त्वयि दधामि भुवस्त्वयि दधामि स्वस्त्वयि दधामि भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि॥

यह मधु-घृत (विषम मात्रा में मिलाकर) अथवा केवल घृत का चटाना एक बार अथवा चार बार करना चाहिए।

आयुष्य कर्म—५. अथ = मेधाजनन कर्म (घी + शहद/घी चटाने) के पश्चात् अस्य = इस उत्पन्न शिशु के लिए, आयुष्यं करोति = आयुष्य कर्म करे।

६. नाभ्यां = बालक की नाभि, दक्षिणे वा कर्णे = अथवा दाहिने कान के समीप, जपति = बालक का पिता निम्न मंत्रों का जप करे—

१. अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि

२. सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभिरायु०.............

३. ब्रह्मायुष्मत्तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वा०

४. देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वा०

५. ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वा०

६. पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वा०

७. यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन त्वा०

८. समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वा०

७. त्रिः त्रिः = उपर्युक्त मन्त्रों का जप तीन बार करे, त्र्यायुषम् इति च = और 'त्र्यायुषम्' इस मंत्र का भी तीन बार जप करे।

मन्त्र—त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥ यजु० ३.६२

८. स = वह (पिता), यदि कामयेत = यदि यह कामना करे कि उत्पन्न शिशु, सर्वम् आयुः इयादिति = सम्पूर्ण आयु प्राप्त करे तो वह, वात्सप्रेण = वत्सप्री भलन्दन ऋषि दृष्ट अनुवाक का पाठ करते हुए, एनम् = शिशु का, अभिमृशेत = अभिमर्शन-स्पर्श करे।

९. दिवस्परि-इति एतस्य = दिवस्परि० इत्यादि द्वादशर्च, अनुवाकस्य = अनुवाक की, उत्तमाम् ऋचं = अन्तिम ऋचा—'अस्ताव्यग्निः०' को, परिशिनष्टि = छोड़े दे।

वात्सप्र-अनुवाक—

१. दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परिजातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः॥

२. विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद् विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ॥

३. समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाꣳसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन्॥

४. अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः॥

५. श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः।
वसुः सुनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्रऽउषसामिधानः॥

६. विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः।
विडुं चिदद्रिमभिमनत्परायन्जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥

७. उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन्॥

८. दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः।
अग्निरमृतो अभवद् वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः॥

९. यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपंदेव घृतवन्तमग्ने।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभिसुम्नं देवभक्तं यविष्ठ॥

१०. आ तं भज सौश्रवसेष्वग्नऽउक्थऽउक्थऽआ भज शस्यमाने।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेनभिनद्दुज्जनित्वैः॥
११. त्वामग्ने यजमाना अनुद्यून्विश्वावसु दधिरे वार्याणि।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः॥

यजु० १२.१८-२८

१०. प्रतिदिशं पञ्च ब्राह्मणानवस्थाप्य = पाँच ब्राह्मणों को खड़ा करके, ब्रूयाद् = उससे कहे कि, इमम् = इस कुमार को, अनुप्राणित इति = अनुप्राणित-प्राण शक्ति सम्पन्न करो।

पूर्व आदि प्रत्येक दिशा में एक-एक ब्राह्मण तथा इन चारों के मध्य पाँचवाँ ब्राह्मण खड़ा किया जाता है।

११. पूर्वो ब्रूयात् = पूर्व दिशा में स्थित ब्राह्मण कहे, प्राण इति = प्राण अर्थात् तू प्राण शक्ति से सम्पन्न हो।

१२. दक्षिणः = दक्षिण दिशास्थ कहे, व्यान इति = व्यान अर्थात् तू व्यान शक्ति से युक्त हो।

१३. अपरः = दूसरा अर्थात् पश्चिम दिशास्थ कहे, अपान इति = अपान अर्थात् तू अपान शक्ति से युक्त हो।

१४. उत्तरः = उत्तर दिशास्थ कहे, उदान इति = उदान अर्थात् तू उदान संज्ञक प्राण शक्तियुक्त हो।

१५. पञ्चमः = पांचवां, उपरिष्टाद् = ऊपर की ओर, अवेक्षमाणः = देखता हुआ, ब्रूयात् = कहे, समान इति = समान अर्थात् तू समान नामक प्राणशक्ति सम्पन्न हो। बालक पञ्चविध प्राणशक्ति सम्पन्न रहे एतदर्थ यह प्रार्थना रूप विधि की जाती है।

१६. वा = अथवा, अविद्यमानेषु = 'इतने' ब्राह्मणों के अविद्यमान होने पर स्वयं = पिता ही, अनुपरिक्रमाम् = चारों ओर प्रदक्षिणा करता हुआ, कुर्यात् = इस अनुप्राणन विधि को सम्पन्न करे।

१७. स = वह बालक, यस्मिन् देशे = जिस स्थान पर, जातः भवति = जन्म ग्रहण करता है, बालक का पिता, तम् = उस स्थान (भूमि) को निम्न मन्त्र पढ़ते हुए, अभिमन्त्रयते = अभिमन्त्रित करे। मन्त्र—

वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।

वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं

शृणुयाम शरदः शतम्।।

१८. अथ = भूमि अभिमन्त्रण के अनन्तर पिता, एनम् = कुमार का अभिमृशति = अभिमर्शन-स्पर्श करता है। अभिमर्शन मन्त्र—

अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्रुतं भव।

आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतम्।।

१९. अथ = बालक का अभिमर्शन करने के पश्चात्, अस्य = बालक की, मातरम् = माता को, अभिमन्त्रयते = अभिमन्त्रित करे। अभिमन्त्रण मन्त्र—

इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः।

सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरत्।।

२०. अथ = अभिमन्त्रणानन्तर, अस्यै = इस (स्त्री) के, दक्षिणं स्तनं = दाएं स्तन को, प्रक्षाल्य = प्रक्षालित कर 'इमं स्तनम्' इति = 'इमं स्तनम्' इस मन्त्र का पाठ कर बालक को, प्रयच्छति = देता है अर्थात् स्तनपान करावे।

२१. यस्ते स्तन इत्युत्तरम् = इमं स्तनं के पश्चात् 'यस्ते स्तन' इस मन्त्र से उत्तर-बाएं स्तन का पान कराए तथा एताभ्याम् = इन दोनों मन्त्रों का वाचन करें। मन्त्र निम्न हैं—

१. इमꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं ध्यापांप्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये।

उत्सं जषुस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमाविशस्व।। यजु० १७.८७

२. यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।

येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः।

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि।। यजु० ३८.५

दक्षिणस्तनपान के अनन्तर प्रक्षालित करके उक्त मन्त्रद्वय का उच्चारण करते हुए वाम स्तनपान भी कराना चाहिए। यहाँ प्रतीक रूप में ही दक्षिण स्तन का निर्देश है।

२२. सूतिका के, शिरस्तः = सिरहाने की ओर 'आपो देवेषु' मन्त्र का पाठ करते हुए, उदपात्रं = जलपूर्णपात्र घड़ा आदि, निदधाति = स्थापित करना चाहिए। मन्त्र निम्न है—

आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ।

एवमस्याꣳ सूतिकायाꣳ सुपुत्रिकायां जाग्रथ॥

२३. द्वारदेशे = सूतिका कक्ष के द्वार के समीप, सूतिकाग्निमुपसमाधाय = सूतिकाग्नि को स्थापित कर, आ उत्थानात् = उत्थान से पूर्व अर्थात् सूतक काल की समाप्ति तक, संधिवेलयो: = प्रात:-सायं, फलीकरण-मिश्रान् = तण्डुलकणयुक्त, सर्षपान् = सरसों के दाने 'शण्डामर्क०' और 'आलिखन०' मन्त्रपूर्वक, अग्नौ = सूतिकाग्नि में, आवपति = डाले। मन्त्र—

१. शण्डामर्क्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः।
मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥

२. आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः।
कुम्भी शत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्तादितः स्वाहा॥

२४. यदि कुमार: = यदि कुमार = बालग्रह, उपद्रवेत् = बालक को कष्ट दे तब, पिता = बालक का पिता बालक को, जालेन प्राच्छाद्य = जाल से आच्छादित कर, वा उत्तरीयेण = अथवा उत्तरीय से आच्छादित कर, अङ्के = शिशु को गोद में, आधाय = लेकर, जपति = निम्न तीन मन्त्रों का जप करें—

१. कूर्कुरः सुकूर्कुरः कूर्कुरो बालबन्धनः।
चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वर तत्सत्यम्॥

२. यत्ते देवा वरमददुः स त्वं कुमारमेव वा वृणीथाः।
चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वर तत्सत्यम्॥

३. यत्ते सरमा माता सीसरः पिता श्यामशबलौ भ्रातरौ।
चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वर॥

२५. पिता 'न नामयति०' इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक, अभिमृशति = शिशु का अभिमर्षण करे। मन्त्र—

न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति।
यत्र वयं वदामो यत्र चाभिमृशामसि॥

इति जातकर्म विधिः

टिप्पणी–१. (क) कर्क आदि पाँचों भाष्यकार सूत्र–३ में 'पठित' 'कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्याम्' पद का अर्थ 'अच्छिन्ने नाले' करते हैं। यहाँ यह विचारणीय है कि कुमार का 'मेधाजनन' एवं 'आयुष्य कर्म' ये दो विधियाँ सम्पन्न होनी हैं। यदि कुमार का नाल–छेदन नहीं होगा। तब वह जरायु आदि के अंश से निश्चय ही युक्त रहेगा। ऐसी स्थिति में शिशु की नाभि के समीप मन्त्र पाठ कैसे सम्भव है?

महर्षि दयानन्द सरस्वती का मन्तव्य भी इस विषय में द्रष्टव्य है—'जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आँख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिता के गोद में बालक को देवे। पिता जहाँ वायु और शीत प्रवेश न हो वहाँ बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत्र से बाँध के उस बन्धन के ऊपर से नाड़ी छेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा...... सं० विधि, जातकर्म संस्कार

अतः 'कुमारस्य अच्छिन्नायाम्' पदच्छेद न करके 'कुमारस्य आच्छिन्नायाम्' पदच्छेद करने पर अर्थ होगा—आ = समन्तात्, छिन्नायाम् अर्थात् नाल के अच्छी प्रकार छिन्न–कट जाने पर। वस्तुतः नालछेदन के पश्चात् ही शिशु पूर्णतः स्वच्छ होकर अभिमर्शन आदि के योग्य होगा।

(ख) इसी सूत्रस्थ 'जातस्य कुमारस्य' कुमार (पुल्लिग) का कथन होने के कारण वक्ष्यमाण 'मेधाजनन' एवं 'आयुष्यकर्म' केवलकुमार के ही होंगे, कुमारी (स्त्री) के नहीं—ऐसा कर्क, जयराम एवं गदाधर ने 'कुमार ग्रहणाच्च स्त्रिया अतः प्रभृति न क्रियते' स्वीकार किया है।

वस्तुतः मध्यकालीन स्मृतिकारों के 'तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहश्च समन्त्रक,' याज्ञ० १.१३ आदि वचनों के प्रभाव के कारण ऐसी धारणा है। यदि यहाँ 'कुमार' शब्द को उपलक्षक मानें तब कोई प्रश्न ही नहीं रहता है।

२. सूत्र ४ (क) घृत—मधु प्राशन के स्थान पर महर्षि ने सोने की शलाका से बालक की जीभ पर "ओ३म्" अक्षर लिखने तथा कान में "वेदोऽसीति" कथन का विधान किया है।

(ख) "सर्पिर्मधुनी दध्युदके च सन्नीय"। एष एव मधुपर्कः। ब्रीहियवौ वा सन्निकृष्य -कौषी० गृ० १.१६.४–६ के अनुसार—घृत, मधु के साथ दही एवं

जल भी विहित हैं और यही मधुपर्क है। उक्त के अभाव अथवा विकल्प में व्रीहियव का रस वर्णित है।

(ग) गोभिल गृ० २.७.१७–१८ के अनुसार—'इयमाज्ञेदमन्नमिदमायुरिदममृतम्' मं० ब्रा० १.५.८ मन्त्रवाचनपूर्वक मेधाजनन सर्पि प्राशन से पूर्व व्रीहियव का रस बच्चे की जिह्वा पर टपकाना चाहिए। खादिर, द्राह्यायण एवं जैमिनि गृह्य के अनुसार भी व्रीहियव का रस चटाना अभीष्ट है।

३. सूत्र ६—(क) सूत्र ने नाभि अथवा दक्षिण कर्ण में जप विधान किया है। महर्षि दयानन्द ने दोनों कानों में मन्त्र पाठ का आदेश दिया है।

(ख) पलाशस्य मध्यपर्णं प्रवेष्ट्य तेनास्य कर्णयोर्जपेत्—भूस्ते ददामीति दक्षिणे, भुवस्ते ददामीति सव्ये स्वस्ते ददामीति दक्षिणे भूर्भुवः स्वस्ते ददामीति सव्ये''—मानव गृ० १७.६—इस मानव गृह्य वचनानुसार—पलाश का मध्यमपर्ण कान पर लगाकर दोनों ही कानों में मन्त्र जप करे।

(ग) अथास्य दक्षिणे कर्णे जपति—'अग्निरायुष्मान्' इति पञ्चभिः पर्यायैः।। बौधा० गृ० २.१.६—बौधायन ने जप तो दक्षिण कर्ण में ही कहा है, किन्तु पारस्कर विहित 'अग्निरायुष्मान्' आदि ८ मन्त्रों में से पाँच ही कहे हैं।

४. सूत्र १८–अथैनमभिमृशति—अथैनं कुमारं पिताऽभिमृशति हृदि स्पृशति—जयरामः, पिता अभिमृशति समन्ततः सर्वशरीरे स्पृशति-हरिहरः। जयराम ने हृदय स्पर्श, हरिहर ने सम्पूर्ण शरीर का स्पर्श कहा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बालक के शिर को सूंघने का वर्णन किया है।

५. सूत्र २०—'इषं' पिन्वोर्जं पिन्वेति स्तनौ प्रक्षाल्य प्रधापयेत'—मानव गृ० १७.७ के अनुसार दोनों स्तनपान समन्त्रक हैं।

६. सूत्र २३—सूतकाग्नि—'स एष उत्तपनार्थो भवति। नास्मिन्किंचन कर्म क्रियते'—भारद्वाज गृ० १.२६—इस भारद्वाज वचनानुसार सूतकाग्नि में यज्ञादि नहीं होते हैं। इसमें मात्र तण्डुलमिश्रित सरसों ही दश दिन तक प्रातः सायं डालते हैं। तद्यथा—'स एवमेव फलीकरणहोम प्रभृति सायंप्रात दशरात्रं करोति० बौधा० गृ० २.१.२०'

इति प्रथमकाण्डे षोडशी कण्डिका ✪

सप्तदशी कण्डिका

नामकरणम्

दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति॥१॥द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम्॥ २॥ अयुजाक्षरमाकारान्तꣳ स्त्रियै तद्धितम्॥३॥ शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य॥४॥ चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका॥५॥ सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षु-रिति॥६॥१७॥

(कर्कः)—'दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा' दशम्यां रात्र्यामतीतायामेकादशेऽहनि श्राद्धव्यतिरेकेण ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति कुमारस्य। अन्यस्मिन्नपि संस्कारे पितुरेवोत्सर्गात्कर्तृत्वम्। इह पितृग्रहणादन्यत्रापि नियमोऽवगम्यते। तच्च द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा कर्त्तव्यम्। घोषवदादि। घोषवदक्षरमादौ कृत्वा भवति। वर्गाणां प्रथम द्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः। अन्ये घोषवन्तः। तदादि कर्त्तव्यम्। अन्तरन्तस्थम्। अन्तस्था यरलवास्ते नाम्नोऽन्तर्मध्ये कर्त्तव्याः। दीर्घाभिनिष्ठानम्। निष्ठानं समाप्तिरुच्यते सा दीर्घा कर्त्तव्या। कृतं कुर्यात्। कृदिति प्रत्ययसंज्ञा तदन्तं कुर्यात्। अपरे पितामहादिकृतं वर्णयन्ति। न तद्धितम्' अयुग्मैरक्षरैराकारान्तं च स्त्रियै तद्धितान्तं कर्त्तव्यम्। शर्म ब्राह्मणस्य। शर्मशब्दः सुखवाचकः सुखनीयं ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्। यथा शुभङ्करः प्रियंकरः इति।वर्म क्षत्रियस्य। वर्मशब्दश्च शौर्यवचनः। शौर्ययुक्तम् क्षत्रियस्य कर्त्तव्यम्। नरवर्मा। शशि-वर्मा। गुप्तेति वैश्यस्य। गुप्तशब्दश्चाढ्यवचनः। आढ्यत्वाभिधायि वैश्यस्य मणिभद्रः।' चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका कुमारस्य कार्या। तत्र 'सूर्यदीक्षयति तच्चक्षुरिति' अनेन मन्त्रेण॥१७॥

१—पिता = बालक का पिता, दशम्याम् उत्थाप्य = दशमी रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् ग्यारहवें दिन सूतिका गृह से स्त्री तथा बालक को उठाकर, ब्राह्मणान् = तीन ब्राह्मणों को, भोजयित्वा = भोजन कराकर, नाम करोति = बालक का नामकरण संस्कार करता है।

२—द्व्यक्षरं = शिशु का नाम दो अक्षर, वा = अथवा, चतुरक्षरं = चार अक्षर का, घोषवद् आदि = प्रारम्भ में घोष अक्षर (वर्ग के प्रथम, द्वितीय अक्षर

तथा श, ष, स को छोड़कर शेष में से कोई अक्षर हों, अन्तरन्तस्थं = मध्य में अन्तस्थ वर्ण हों (य, व, र, ल में से कोई) दीर्घाभिनिष्ठानं = अन्तिम वर्ण दीर्घ (दो मात्रा वाला अथवा एक मात्रिक वर्ण विसर्ग युक्त हो), कृतं कुर्यात् = कृदन्त (कृत् प्रत्ययान्त) करे, न तद्धितम् = नाम तद्धितान्त (तद्धित प्रत्ययान्त) न करे।

३. स्त्रियै = स्त्री शिशु अर्थात् कन्या का नाम, अयुजाक्षरम् = अयुजाक्षर अर्थात् विषमवर्णी जिसमें ३, ५ अथवा ७ वर्ण हों, आकारान्तम् = आकारान्त और तद्धितम् = तद्धितान्त अर्थात् जिसके अन्त में तद्धित प्रत्यय हो, ऐसा नामकरण करे।

४. ब्राह्मणस्य शर्म = ब्राह्मण बालक के नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रियस्यवर्म = क्षत्रिय के वर्मा और वैश्यस्य गुप्त इति = वैश्य के गुप्त शब्द का प्रयोग करे।

निष्क्रमणम् ५—चतुर्थे मासि = शिशु के जन्म से चतुर्थ मास में, निष्क्र-मणिका = शिशु का निष्क्रमण संस्कार करे।

सूर्यावेक्षणम् ६—शिशु को घर से बाहर निकालने (निष्क्रमण) के पश्चात् पिता तच्चक्षुरिति = 'तच्चक्षु:' इस मन्त्र को बोलकर शिशु को सूर्यम् = सूर्य का, उदीक्षयति = दर्शन कराता है। मन्त्र निम्न है—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँश्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ यजु० ३६.२४

टिप्पणी–१. (क) महर्षि दयानन्द सरस्वती ने नामकरण काल विषयक तीन विकल्प प्रस्तुत किए हैं—११वें दिन, १०१वें दिन अथवा दूसरे वर्ष का प्रारम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो। द्र० गोभिल गृ० २.८.८

(ख) महर्षि दयानन्द चातुर्वर्ण्य का नामकरण संस्कार होना मानते हैं। अत: महर्षि ने शूद्र के नामकरण का भी विधान किया है।

२. सूत्र ४. कर्क आदि भाष्यकारों का मन्तव्य शर्म आदि के विषय में द्रष्टव्य है—

(क) शर्म ब्राह्मणस्य—शर्म शब्दः सुखवाचकः सुखनीयं ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्—

यथा शुभङ्करः प्रियङ्करः इति' कर्कः; 'शर्मसुखवाचकम्' इति जयरामः, विप्रस्य पूर्वोक्तलक्षणनामान्ते शर्मेति...अथवा ब्राह्मणस्य नाम शर्म मङ्गलप्रतिपादकं कुर्यात्'—इति हरिहरः

(ख) 'वर्म क्षत्रियस्य'—वर्म शब्दश्च शौर्यवचनः शौर्ययुक्तं क्षत्रियस्य कर्त्तव्यम्। नरवर्मा। शशिवर्मा'—कर्कः; 'वर्म शौर्यवाचकम्' इति जयरामः। क्षत्रियस्य वर्म शौर्यरक्षावत्ता प्रतिपादकम्' इति हरिहरः।

(ग) गुप्तेति वैश्यस्य—'गुप्तशब्दश्चाढ्यवचनः। आढ्यत्वाभिधायि वैश्यस्य मणिभद्रः'—इति कर्कः, 'गुप्तशब्दश्चाढ्यवचनः' इति जयरामः।

वैश्यस्य गुप्तेति धनवत्ता प्रतिपादकम् इति हरिहरः।

(घ) विश्वनाथ ने—'शूद्रस्यापि प्रेष्यत्वप्रतिपादकं दासादिपदं नामकीर्तनानन्तरं प्रयोक्तव्यमिति' कहकर शूद्र के भी दासान्त नामकरण का वर्णन किया है।

३. 'त्र्यक्षरं दान्तं कुमारीणाम्'—मानवगृ० १.१८.१ के अनुसार कन्या का नाम तीन अक्षरयुक्त दान्त (दा जिसके अन्त में हो) रखना चाहिए। गोभिल गृ० १.२.८.१६

४. भारद्वाज गृह्यसूत्र १.२६ के अनुसार शिशु के दो नाम रखे। सूत्रकार का अभिप्राय वर्तमान में प्रचलित द्वितीय उपनाम से प्रतीत होता है।

५. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गोभिल को उद्धृत कर तिथि नक्षत्र तथा तिथि देवता एवं नक्षत्र देवता हेतु आहुति विधान किया है। इसी विषय में कौषी० गृह्य सूत्र भी द्रष्टव्य है—'एतस्मिन्नेव सूतकेऽग्नौ स्थालीपाकं श्रपयित्वा जन्मतिथिं हुत्वा त्रीणि च भानि सदैवतानि।। तन्मध्ये जुहुयाद् यस्मिन् जातः स्यात्।। १.१७. ३—४

६. सूत्र ५ कौषी० गृह्य १.१८. १; बौधा० गृ० २.२.१ तथा आश्वलायन आदि सूत्रकार निष्क्रमण काल चतुर्थ मास ही स्वीकार करते हैं। मनु ने भी—'चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्' कहकर चतुर्थ मास ही माना है।

७. सूत्र ६. सूर्यावेक्षणानन्तर (क) पारस्कर की अग्रिम कण्डिका में प्रोष्येत्य आदि कहकर प्रतिपादित विधि में आहुति दान की विधि नहीं है, किन्तु मानव गृ० ''चतुर्थे मासि पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा तस्य जुहोति'' १.१९.२ तथा सू० ३ के अनुसार १. आदित्यः शुक्र, उद्गाद २. हंसः शुचिषद् यजु० १०. २४, १२. १४३

यदेनम् ऋ० १०.८८.११ इन तीन मन्त्रों से सूर्य को उद्दिष्ट कर आहुति दान विहित है—

(ख) महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सूर्यदर्शनानन्तर रात्रि में जब चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब, शिशु की माता द्वारा जल को पृथिवी पर छोड़ने का विधान किया है।

(ग) गोभिल गृह्य—'यददश्चन्द्रमसीति सकृद् यजुषा द्विस्तूष्णीमुत्सृज्य यथार्थम्' २.८.७ के अनुसार यह जलोत्सर्जन एक बार समन्त्रक तथा दो बार अमन्त्रक करना अभीष्ट है। भट्टनारायण भाष्यानुसार यह क्रिया शिशु का पिता सम्पन्न करे। उत्सर्जन मन्त्र—

ओ३म् यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳ श्रितम्।

तदहं विद्वाꣳ स्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघꣳ रुदम्।। मं० ब्रा०१.५.१३

(घ) काठक गृह्यसूत्र में निष्क्रमण विधि वर्णित नहीं है, किन्तु सूर्यचन्द्र दर्शन विधि निम्नवत् वर्णित है—'तृतीयेऽर्धमासे दर्शनमादित्यस्य' ३.१३.१ अर्थात् जन्म से दो मास पूर्ण तथा तृतीय मास के आधा व्यतीत हो जाने पर बालक को आदित्य दर्शन करावे। भाष्यकार ब्राह्मवाला का निम्न कथन द्रष्टव्य है—

तृतीये मासि कर्त्तव्यं शिशोः सूर्यस्य दर्शनम्।

चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं तथा चन्द्रस्य दर्शनम्।।

''एवं चन्द्रदर्शनम्'' ३.१४.१

इति प्रथमकाण्डे सप्तदशी कण्डिका ✪

अष्टादशी कण्डिका

प्रोष्यकर्म

प्रोष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पूर्ववत्।।१।। पुत्रं दृष्ट्वा जपति अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतमिति।।२।। अथास्य मूर्द्धानमवजिघ्रति। प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतमिति।।३।। गवां त्वा हिंकारेणेति च त्रिर्दक्षिणेऽस्य कर्णेजपति। अस्मे प्रयन्धि

मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायोशिववारस्य भूरेः। अस्मे शतठं० शरदो जीवसे धा अस्मै वीराञ्च्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्निति॥४॥ इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनाथं स्वात्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नामिति सव्ये॥५॥ स्त्रियै तु मूर्द्धानमेवावजिघ्रति तूष्णीम्॥६॥१८॥

(कर्कः)—'प्रोष्येत्य........पूर्ववत्। पोषितः सन्नेत्य गृहोपस्थानं करोति। पूर्ववद् गृहामाबिभीतेति। पुत्रं दृष्ट्वा जपत्यङ्गादङ्गात्संभवसीत्यमुं मन्त्रम्। अथास्य मूर्द्धानमवजिघ्रति प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणेति मन्त्रेण। असाविति तस्यैव नामग्रहणम्। गवां त्वा हिंकारेणेति च त्रिरवघ्राणं करोति। सहस्रायुषेत्यत्राप्यनुषङ्गः सकृच्च मन्त्रवचनम्। दक्षिणेऽस्य कर्णे जपत्यस्मे प्रयन्धि मघवन्नित्यमुं मन्त्रम्। अस्येति पुत्रोऽभिधीयते। इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहीति सव्ये कर्णे जपति। स्त्रियै तु मूर्द्धानमेवावजिघ्रति तूष्णीम्।'

१. प्रोष्य-एत्य = प्रवास (पुत्र सहित निष्क्रमण कर, घर से बाहर प्रवास कर) से लौटकर, पूर्ववत् = पूर्व की तरह श्रौत विधिपूर्वक (कात्यायन श्रौत सूत्र ४.१२.२२) गृहान् उपतिष्ठते = गृह स्थित भार्या पुत्रादि के समीप खड़े होकर निम्न मन्त्रों का पाठ करें—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज बिभ्रत एमसि।
उर्जं बिभृद् वः सुमनाः सुमेधागृहानैमि मनसा मोदमानः॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसौ बहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः॥
उपहूता इहगाव उपहूता अजावयः।
अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवं शग्मं, शंयोः शंयोः॥ यजु० ३. ४१-४३

२. पुत्रं दृष्ट्वा = पुत्र की ओर देखकर, अङ्गादङ्गात्..... इति—इस मन्त्र का जपति = जप करे। जप मन्त्र—

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतम्॥

३. अथ = उक्त मन्त्र जप के अनन्तर, अस्य = इस शिशु के, मूर्द्धानम् = मस्तक-शिर का, 'प्रजापतेष्ट्वा....इति' = इस मन्त्र से अवजिघ्रति = अवजिघ्रण करे अर्थात् सूंघे।

प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्त्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम्।।

मन्त्रस्थ 'असौ' पद के स्थान पर शिशु का नामोच्चारण करना चाहिए।

४. च = और 'गवांत्वा........इति' = 'गवां त्वा०' इस मन्त्र से त्रिः = तीन बार शिशु का शिर सूंघे। भाष्यकारों ने मन्त्र पाठ एक बार ही माना है। अत: दोबार अमन्त्रक ही शिर सूंघे। मन्त्र—

गवां त्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्त्रायुषाऽसौ जीवः शरदः शतम्।।

अस्य = शिशु के, दक्षिणे कर्णे = दाहिने कान में अर्थात् कान के समीप, 'अस्मे प्रयन्धि....शिप्रिन्निति' = अस्मे प्रयन्धि इस मन्त्र का, जपति = जप करे। जप मन्त्र—

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्ररायो विश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मै वीराञ्च्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्।।

५. शिशु के सव्ये = बाएं कान के समीप 'इन्द्र श्रेष्ठानि......... अह्नामिति' = 'इन्द्र श्रेष्ठानि०' इस मन्त्र का जप करे। जप मन्त्र—

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वात्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्।।

६. तु = किन्तु, स्त्रियै = स्त्री-पुत्री (कन्या) के, तूष्णीम् = चुपचाप-अमन्त्रक, मूर्धानम् एव = शिर को ही, अवजिघ्रति = सूंघता है।

टिप्पणी—१. गोभिल गृ० २. ८. २१–२४ के अनुसार पिता प्रवास से वापिस आकर दोनों हाथों से ज्येष्ठ पुत्र की मूर्धा परिगृहीत कर मन्त्र ब्रा० १.५.१६–१८ इन तीन मन्त्रों का जप करे तथा 'पशूनां त्वा' मन्त्र ब्रा० १.५.१९ मन्त्र से शिर को सूंघे। इस क्रम से अन्य पुत्रों के साथ भी करे, किन्तु कन्या को गोभिल भी अमन्त्रक ही सूंघने की बात करते हैं।

२. सूत्र ४. में पठित 'त्रि' शब्द देहली दीपक न्याय से जहाँ 'गवां त्वां' मन्त्र द्वारा सूंघते समय मन्त्र पाठ के तीन बार का द्योतक है, वहीं 'अस्मे प्रयन्धि' मन्त्र

से दक्षिण कर्ण जप में भी मन्त्र के तीन बार जप का ज्ञापक है। विश्वनाथ ने वामकर्ण में 'इन्द्र श्रेष्ठानि' मन्त्र का पाठ भी तीन बार माना है। जयराम ने 'प्रजापतेष्ट्वा' मन्त्र द्वारा एक बार अवघ्राण तथा दो बार अमन्त्रक एवं 'गवां त्वा' मन्त्र से तीन बार अवघ्राण माना है।

३. मूर्धानम् एव—सूत्र ६ में पठित 'एव' शब्द कन्या के विषय में दर्शन जप एवं कर्ण जप का व्यवच्छेदक है अर्थात् अमन्त्रक मूर्धावघ्राण तो होगा, किन्तु दर्शन एवं कर्ण जप नहीं।

४. कर्ण जप जातकर्म संस्कार में भी होता है। वहाँ 'अग्निरायुष्मान्' आदि मन्त्र हैं।

५. आप गृ० ६.१५.१२ के अनुसार केवल दक्षिण कर्ण में ही जप विहित है। सूत्र १३ में 'सर्वस्मादात्मन सम्भूतासि' से कुमारी का भी अभिमन्त्रण विधान है।

इति प्रथमकाण्डे अष्टादशी कण्डिका ✪

एकोनविंशी कण्डिका

अन्नप्राशनम्

षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम्॥१॥ स्थालीपाकꣳ श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वा-ऽऽज्याहुती जुहोति देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहेति॥२॥ वाजो नो अद्येति च द्वितीयाम्॥३॥ स्थालीपाकस्य जुहोति प्राणेनान्नमशीय स्वाहाऽपानेन गन्धान-शीय स्वाहा चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहेति॥४॥ प्राशनान्ते सर्वान् रसान्त्सर्वमन्नमेकत उद्धृत्याथैनं प्राशयेत्॥५॥ तूष्णीꣳ हन्तेति वा हन्तकारं मनुष्या इति श्रुतेः॥६॥ भारद्वाज्यामाꣳ सेन वाक्प्रसारकामस्य॥७॥ कपिञ्जलमाꣳ सेनान्नाद्यकामस्य॥८॥ मत्स्यैर्जवनकामस्य॥९॥ कृकषाया आयु-ष्कामस्य॥१०॥ आट्या ब्रह्मवर्चसकामस्य॥११॥ सर्वैः सर्वकामस्य॥१२॥ अन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मणभोजनमन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मणभोजनम्॥१३॥१९॥

(कर्कः)—''षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम्'' कुमारस्य कर्त्तव्यमिति सूत्रशेषः। 'स्थाली-पाक..... द्वितीयाम्' चशब्दात्पूर्वया च स्थालीपाकस्य जुहोति। प्राणेनान्नमशीय स्वाहेति

प्रतिमन्त्रं चतुर्भिः। ततः स्विष्टकृदादि। 'प्राशनान्ते.......श्रुतेः' विकल्पोऽयं सर्वे रसाः कटुतिक्तादयः सर्वमन्नं च शालिसूपापूपादि। एकत इत्येकपात्रोद्धरणम्। 'भारद्वा........ कामस्य' भारद्वाजी पक्षिविशेषस्तस्य मांसेन वाग्मीकुमारः स्यादित्येवंकामस्य प्राशनम्। 'कपिञ्जलमाꣳसेनान्नाद्यकामस्य' 'मत्स्यैर्जवनकामस्य' जवनो वेगोऽभिधीयते। 'कृकषाया आयुःकामस्य' कृकषेति कङ्कणहारिकोच्यते। तन्मांसेनायुः कामस्य। 'आट्या ब्रह्मवर्चसकामस्य' आटीनाम जलचरः पक्षी तस्य मांसेन ब्रह्मवर्चसकामस्य प्राशनम्। 'सर्वैः सर्वकामस्य' य एतान्सर्वान्कामान्कामयते तस्य सर्वैरेतैर्मांसैः प्राशनं कारयेत्' अन्नपर्याय वा' अन्नपरिपाट्या वैकीकृत्य सर्वमांसानि प्राशयेत्। 'ततो ब्राह्मणभोजनमित्युक्तार्थम्।'

इति श्रीकर्कोपध्यायकृते गृह्यसूत्रभाष्ये प्रथमकाण्डविवरणं संपूर्णम्।।१९।।

१. षष्ठे मासे = शिशु का जन्म से छठे मास में, अन्नप्राशनम् = अन्नप्राशनाख्य कर्म (शिशु को अन्न प्राशन = खिलाना) करना चाहिए।

२–३. स्थालीपाकं = स्थालीपाक-खीर, श्रपयित्वा = पकाकर, आज्यभागौ इष्ट्वा = आज्यभाग संज्ञक (अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।। सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम।।) दो आहुतियाँ देकर, 'देवीं वाचम०' तथा 'वाजो नो अद्य०' इन दो मन्त्रों से आज्याहुती = दो आज्याहुतियां, जुहोति = देता है। आज्याहुती मन्त्र—

१. देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा।।
२. वाजो नो अद्य प्र सुवाति दानं वाजोदेवां ऋतुभिः कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्।।

यजु० १८.३३

प्रथम मन्त्र के अन्त में द्रव्यत्यागानन्तर—'इदं वाचे इदन्न मम' तथा द्वितीय मन्त्र से स्वाहापूर्वक द्रव्यत्याग करके—'इदं वाचे वाजाय इदन्न मम' का वाचन करना चाहिये।

४. स्थालीपाकस्य = स्थालीपाक-चरु-खीर से, प्राणेन आदि चार मन्त्रों से, जुहोति = आहुति देता है। मन्त्र—

१. प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इदं प्राणाय न मम॥

२. अपानेन गन्धानशीय स्वाहा। इदमपानाय न मम॥

३. चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा। इदं चक्षुषे न मम॥

४. श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय न मम॥

५. प्राशनान्ते = उपर्युक्त चार आहुतियों के पश्चात् स्थालीपाक से स्विष्टकृदाहुति देकर महाव्याहृत्यादि-प्राजापत्यान्त नौ आज्याहुतियाँ देकर संस्रव प्राशन करने के अनन्तर, सर्वान् रसान् = मधुर तिक्त आदि सभी रसों और सर्वम् अन्नम् = सभी (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि) अन्न को, एकत उद्धृत्य = एक पात्र में लेकर, अथैनं = इस शिशु को, प्राशयेत् = खिलाए।

६. यह प्राशन तूष्णीं = चुपचाप अमन्त्रक ही, वा = अथवा हन्तेति = हन्त ऐसा कहकर कराना चाहिये, क्योंकि हन्तकारं मनुष्या इति श्रुतेः = श्रुति शास्त्र में मनुष्यों के लिए हन्तकार का कथन है।

टिप्पणी–१. कण्डिका का वर्ण्य विषय अन्नप्राशन है। सूत्र १ अन्नप्राशन विधि का अधिकार सूत्र है। सूत्र २ से लेकर ६ तक में विधि वर्णन है। सूत्र ७ से लेकर सूत्र १२ तक के छः सूत्र मांस भक्षण विधायक हैं। संस्कार का नाम मांसप्राशन नहीं है। अतः अग्रिम सूत्र प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं अथवा सूत्र ग्रन्थों का रचनाकाल भी वैदिक व्यवस्था के नष्ट होने का काल है। ऐसे समय यह सम्भव है कि मांस भक्षण जैसी कुरीति समाज में मान्य हो चुकी हो, क्योंकि थोड़े बहुत अन्तर के साथ सभी सूत्रकार मांस विधान करते हैं। भारद्वाजी, अज आदि शब्दों से द्राविडी प्राणायाम कर यदि अन्य अर्थ कर भी दिये जायें, तब मत्स्य एवं कपिञ्जल आदि के साथ उनकी पुनः सङ्गति सरल नहीं है। अतः इन सूत्रों को वेद विरुद्ध होने के कारण अप्रमाण ही स्वीकार करना चाहिए। हमने मूल में सूत्र इसी आशय से दे दिए हैं कि विद्वज्जन विचार तो कर सकें।

२. आपस्तम्ब ६.१६.१—२ सूत्र द्रष्टव्य हैं—

जन्मनोऽधि षष्ठे मासि ब्राह्मणान् भोजयित्वाऽऽशिषो वाचयित्वा दधि मधु घृतमोदनमिति संसृज्योत्तरैर्मन्त्रैः कुमारं प्राशयेत्॥ तैत्तिरेण मांसनेत्येके॥

प्रथम सूत्रानुसार—दधि-मधु-घृत एवं ओदन को एक साथ मिलाकर 'भूरपां त्वा' आदि चार मन्त्रों से प्राशन करावे, किन्तु अग्रिम सूत्र में 'एके' कहकर कुछ

आचार्यों का तैत्तिरीमांस विषयक मत दिया है। वस्तुतः प्रथम सूत्र ही आचार्याभिमत अन्नप्राशन विधायक सूत्र है।

३. काठक गृ० ३.१५.१—२ के अनुसार अन्नप्राशन छठे महीने में अथवा दांत निकल आने पर करना चाहिए। द्वितीय सूत्र में सभी हव्य अन्नों को पकाकर आज्यभागान्त यज्ञ कर आयुर्दा देव घृतप्रतीक' से आज्याहुति देकर 'अन्नपते अन्नस्यः' मन्त्रपूर्वक कुमार को प्राशन करावे। यहाँ माँस की चर्चा तक भी नहीं है। सूत्र निम्न हैं—

षष्ठे मासेऽन्नप्राशनं दन्तेषु वा जातेषु।।

सर्वाणि हविष्यान्नानि संयूय। आयुर्दा देव घृत प्रतीक इति हुत्वा अन्नपते अन्नस्येत्येतयैव कुमारमन्नं प्राशयेत्।।

४. मानव गृ० १.२०.१—६ तक अन्नप्राशन विधि है। एतदनुसार पांचवे अथवा छठे महीने में स्थालीपाक तैयार कर शिशु को स्नान करा, नूतन वस्त्र से आच्छादित (पहना) कर स्वर्ण के (चम्मच आदि) पात्र से 'अन्नपते अन्नस्य०' मन्त्रपूर्वक आहुति देकर 'अन्नात्परिस्रुत०' इस मन्त्र से प्राशन कराना चाहिए। सम्पूर्ण खण्ड में मांस का नाम तक भी नहीं है।

५. बौधायन गृ० २.३.१—६ में अन्नप्राशन विधि है। यहाँ भी ओदन, दधि-मधु और घृत ही वर्णित हैं। समग्र अध्याय में मांस चर्चा नहीं है।

६. प्राशनान्ते—स्विष्टकृत् एवं महाव्याहृत्यादि-प्राजापत्यान्त नौ आहुतियाँ निम्न हैं—

स्विष्टकृत्—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम।।

महर्षि दयानन्द सरस्वती यदस्य कर्मणः इस मन्त्र से स्विष्टकृत् विधान करते हैं।

नवाज्याऽऽहुतयः—१. महाव्याहृतयः—

(क) ओ३म् भूः स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम/(इदं भूः इदन्न मम)।।

(ख) ओ३म् भुवः स्वाहा। इदं वायवे " " /(इदं भुव..........)

(ग) ओ३म् स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय " " /(इदं स्वः..........)

२. सर्व प्रायश्चित्ताऽऽहुतय:—

(क) ओ३म् त्वन्नो अग्ने०....प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्याम् इदन्न मम।।

(ख) ओ३म् स त्वन्नो अग्ने०........सुहवो न एधि स्वाहा। " "

(ग) ओ३म् अयाश्चाग्ने०.....धेहि भेषजꣳस्वाहा। इदमग्नये अयसे इदन्न मम।।

(घ) ओ३म् ये ते शतं०....मरुत: स्वर्का: स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्य स्वर्केभ्य: इदन्न मम।।

(ङ) ओ३म् उदुत्तमं वरुण०........अदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणाय।''।।

३. प्राजापत्याहुति:—

(क) ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।

पारस्कर की पञ्चमी कण्डिका के सूत्र ३ द्वारा उपरिवर्णित स्विष्टकृत् १ + महाव्याहृतय: ३ + सर्वप्रायश्चित्ताहुतय: ५ + प्राजापत्य १ = १० तथा आघारा-वाज्यभागाहुतय: २ + २ = ४ कुल १४ आहुतियों को सूत्र 'एतन्नित्यं सर्वत्र' द्वारा सभी यज्ञकर्मों में विहित किया है।

७. सूत्र २ में पठित 'आज्यभागौ' पद से हरिहर ने 'आघारौ' का भी ग्रहण कर चार आहुतियाँ स्वीकार की हैं। शेष भाष्यकार दो आहुति ही मानते हैं।

इति प्रथमकाण्डे एकोनविंशी कण्डिका

समाप्तञ्चेदं

प्रथमकाण्डम्।

अथ द्वितीयकाण्डम्

प्रथमा कण्डिका

चूडाकरणम्

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्॥१॥ तृतीये वाऽप्रतिहते॥२॥ षोडशवर्षस्य केशान्तः॥३॥ यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्॥ ४॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा माता कुमारमादायाप्लाव्याहते वाससी परिधाप्याङ्क आधाय पश्चादग्नेरुपविशति॥५॥ अन्वारब्ध आज्याहुतीर्हुत्वा प्राशनान्ते शीतास्वप्सूष्णा आसिञ्चत्युष्णेन वाय उदेकेनेह्यदिते केशान्वपेति॥६॥ केशश्मश्श्रिति च केशान्ते॥७॥ अथात्र नवनीतपिण्डं घृतपिण्डं दध्नो वा प्रास्यति॥८॥ तत आदाय दक्षिणं गोदानमुन्दति। सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चस इति॥९॥ त्र्येण्या शलल्या विनीय त्रीणी कुशतरुणान्यन्तर्दधात्योषध इति॥१०॥ शिवो नामेति लोहक्षुरमादाय निवर्तयामीति प्रवपति, येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्यञ्जरदष्टि-र्यथासदिति॥११॥ सकेशानि प्रच्छिद्यानडुहे गोमयपिण्डे प्रास्यत्युत्तरतो ध्रियमाणे॥१२॥ एवं द्विरपरं तूष्णीम्॥१३॥ इतरयोश्चोन्दनादि॥१४॥ अथ पश्चात्त्र्यायुषमिति॥१५॥ अथोत्तरतो येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक्चपश्चाद्धि सूर्यम्॥ तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तय इति॥१६॥ त्रिः क्षुरेण शिरः प्रदक्षिणं परिहरति समुखं केशान्ते॥१७॥ यत्क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्त्वा वावपति केशाञ्छिन्धि शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीः॥१८॥ मुखमिति च केशान्ते॥१९॥ ताभिरद्भिः शिरः समुद्य नापिताय क्षुरं प्रयच्छति। अक्षुण्वन्परिवपेति॥२०॥ यथामङ्गलं केशशेषकरणम्॥२१॥ अनुगुप्तमेतꣳसकेशं गोमयपिण्डं निधाय गोष्ठे पल्वल उदकान्ते वाऽऽचार्याय वरं ददाति॥२२॥ गां केशान्ते॥२३॥ संवत्सरं ब्रह्मचर्यमवपनं च केशान्ते द्वादशरात्रꣳषड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः॥२४॥

(कर्क०)—'सांवत्स......रणम्' संवत्सरो यस्य जातः स सांवत्सरिकः। तस्य सांवत्सरिकस्य चूडाकरणाख्यं कर्म कर्त्तव्यम्। 'तृतीये वाऽप्रतिहते' तृतीये वा संवत्स-

संवत्सरेऽप्रपन्ने, वाशब्दो विकल्पार्थः। 'षोडशवर्षस्य केशान्तः' कर्त्तव्य इति शेषः। तुल्यत्वात्तत्कर्मणः केशान्तोऽत्राभिधीयत। 'यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्'। यद्यस्य मङ्गल-मुचितं कुले कस्यचित्तृतीये कस्यचित्संवत्सरे अन्ये तु यथा मङ्गलशब्देन कालान्तरं कल्पयन्ति। 'ब्राह्मणा....विशति' माता कुमारमादायाऽऽप्लाव्य स्नापयित्वाऽहते वाससी परिधाप्याङ्के कृत्वा पश्चादग्नेरुपविशति। 'अन्वार.....प्रास्यति' अत्रेति प्रकृतोदकमुच्यते। 'तत आदाय......दैव्या इति' तत उदकमादाय दक्षिणं गोदानमुन्दति। गोदानशब्देनाङ्गविशेषोऽभिधीयते इति अङ्गमिति शीर्षपार्श्वमुच्यते। उन्दति क्लेदय-तीत्यर्थः। तच्च सवित्रा प्रसूता इत्यनेन मन्त्रेण। 'त्र्येण्या शलल्या विनीय' त्र्येणी शलली प्रसिद्धा तया विनीय केशान् 'त्रीणि.......षध इति' अनेन मन्त्रेण। 'शिवो....... वपति' शिवो नामेति मन्त्रेण ताम्रमयं क्षुरमादाय गृहीत्वा निरवर्तयामीत्यनेन मन्त्रेण कुशतरुणेष्वन्तर्हितेषु संलागयति। **प्रपूर्वो वपतिः संलागने।** येनावपत्सविता क्षुरेणेत्यनेन मन्त्रेण सकेशान्प्रच्छिद्य कुशान्। 'आनडु......तूष्णीम्' एवं द्विरपरं कर्म तूष्णीं भवति। 'इतरयोश्चोन्दनादि' इतरयोश्च गोदानयोः उन्दनाद्येव कर्म भवति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्। 'अथ पश्चात्त्र्यायुषमिति' छेदनमन्त्रः। 'अथोत्तरतो येन भूरिश्चरा दिवमिति' छेदनमन्त्र एव। 'त्रिः क्षुरेण...... यत्क्षुरेण' इत्यनेन मन्त्रेण। 'मुखमिति च केशान्ते' मन्त्रविशेषः। ताभिर.......रिवपेति' ताभिरेवाद्भिः शिरः समुद्य। उन्दयति क्लेदनार्थः तस्य कित्वादनुनासिकलोपः क्रियते समुद्येतिरूपे क्लेदयित्वेत्यर्थः। नापिताय क्षुरं प्रयच्छति। अक्षण्वन्परिवपेत्यनेन मन्त्रेण। यथा मङ्गलं केशशेषकरणम्। यथाशास्त्रं यद्यस्य गोत्रे उचितम्। केचित् त्रिशिखाः केचित्पञ्चशिखाः यथा यस्य प्रसिद्धिः। 'अनुगुप्तमेतठ सकेशं गोमयपिण्डं निधाय गोष्ठे पल्वल उदकान्ते वाऽऽचार्याय वरं ददाति। गां केशान्ते' तस्यैव ह्याचार्यस्य नेतरस्येति। 'संवत्सरं ब्रह्मचर्यमवपनं च केशान्ते' व्रतं भवति। 'द्वादशरात्रँ षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः' स चायं विकल्पः। तुल्यं हि स्मरणमन्यत्रेति॥१॥

१. सांवत्सरिकस्य = बालक के एक वर्ष का हो जाने पर, चूडाकरणम् = चूडाकरण (मुण्डन) संस्कार करना चाहिए।

२. वा = अथवा, अप्रतिहते तृतीये = असंपूर्ण तीसरे वर्ष में चूडाकरण करे।

३—४. वा = अथवा, यथामङ्गलं = अपनी कुलपरंपरा (जिनके कुल में सांवत्सरिक चूडाकर्म होता हो वह बालक के एक वर्ष का होने पर तथा जिनके

कुल में तृतीय वर्ष में इस संस्कार की परम्परा हो वह तृतीय वर्ष में और जिस कुल में कोई नियम न हो वह उक्त दोनों में से किसी भी समय पर शिशु का चूडाकर्म कराये) के अनुसार, सर्वेषाम् = सभी वर्णस्थ बालकों का चूडाकरण होना चाहिए।

षोडशवर्षस्य = सोलह वर्ष व्यतीत होने पर सत्रहवें वर्ष में किशोर का, केशान्तः = केशान्त संस्कार होता है।

५. ब्राह्मणान् = चूडाकरण संस्कार करते समय न्यूनातिन्यून तीन ब्राह्मणों को, भोजयित्वा = भोजन कराकर, माता = शिशु की माता, कुमारम् = चूडाकर्मयोग्य कुमार को, आदाय = लेकर, आप्लाव्य = स्नान कराकर, अहते वाससी = नवीन सकृद्धौत दो वस्त्र, परिधाप्य = पहना कर, अङ्के आधाय = गोद में बैठाकर, अग्नेः पश्चात् = (कुमार की माता) अग्नि के पश्चिम की ओर पति के उत्तर में पूर्वाभिमुख, उपविशति = बैठे।

६. अन्वारब्धः = ब्रह्मा का वरण कर, आज्याहुतीर्हुत्वा = आघारादि स्विष्टकृत् पर्यन्त चौदह आहुतियाँ देकर, प्राशनान्ते = संस्रव प्राशन के पश्चात् शीतासु-अप्सु = शीतल जल में, 'उष्णेन.....वपेति' = उष्णेन......मन्त्रपूर्वक, ऊष्णा = ऊष्ण जल, आसिञ्चति = डाल दे। मन्त्र-उष्णेन वाय उदकेनेह्यदिते केशान्वप।

७. केशान्ते = केशान्त कर्म में, केशश्मश्रिव्रति च = शीतल जल में ऊष्ण जल मिलाते समय 'उष्णेन.....मन्त्र में केशान्वप के स्थान पर 'केशश्मश्रू वप' का पाठ करना चाहिए।

८. अथ = शीतल जल में उष्ण जल प्रक्षेप के अनन्तर, अत्र = इस जल में, नवनीतपिण्डं = नवनीत—मक्खन का पिण्ड, घृतपिण्डं = घृतपिण्ड, वा = अथवा दध्नः = दही का पिण्ड भी, प्रास्यति = डाल दे।

९. ततः = उसी नवनीतादिमिश्रित जल से, आदाय = कुछ जल लेकर शिशु के, दक्षिणं = दाहिने कान के पास के, गोदानम् = शिर के भाग को, सवित्र...... वर्चस इति = सवित्रा .... मन्त्र पाठ पूर्वक, उन्दति = गीला करे। मन्त्र—

सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु, ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥

१०. त्र्येण्या = तीन स्थान पर श्वेत चिह्न युक्त, शलल्या = साही के कांटे से, विनीय = केशराशि को पृथक् करके, ओषध इति = ओषधे इस मन्त्र पूर्वक,

त्रीणि कुशतरुणानि = तीन नवीन कुशाओं को, अन्तर्दधाति = केशों के मध्य रख दे। मन्त्र—

ओषधे त्रायस्व (यजु० ४/१) मात्र इतना मन्त्र ही यहाँ पठितव्य है।

११. शिवो नामेति = शिवो नाम—इस मन्त्र का उच्चारण कर, लोहक्षुरमादाय = लोहे का छुरा—उस्तरा लेकर, निवर्तयामीति–निवर्तयामि इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक उस्तरे को कुशयुक्त केशों में, प्रवपति = संलग्न करे। येनावपत्.......यथासदिति = येनावपवत् इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक—

१२. सकेशानि = केशसहित कुशतृणों को, प्रच्छिद्य = काटकर, उत्तरत: = अग्नि के उत्तर की ओर, ध्रियमाणे = रखे गए, आनडुहे = वृषभ के, गोमयपिण्डे = गोबर के पिण्ड में, प्रास्यति = फेंक दे। मन्त्र—

(१) शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसी:।। यजु० ३.६३

(२) निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।। यजु० ३.६३

(३) येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्राह्मणो वपतेदमस्यायुष्यञ्जरदष्टिर्यथासत्।।

१३. एवं = इसी प्रकार—उन्दन, केशविनयन आदि कर्म, अपरं द्विः = और दो बार, तूष्णीम् = अमन्त्रक ही करना चाहिए।

१४. इतरयो: च = और सिर के उत्तर तथा पश्चिम भागस्थ केशों का, उन्दनादि = उन्दन एवं विनयन आदि कर्म भी एक बार मन्त्रपूर्वक तथा दो बार मौन रहकर करना चाहिए।

१५. अथ = शिर के पश्चिम अर्थात् पीछे के भाग और उत्तर अर्थात् बाएं कान के ऊपर के केशों के उन्दन और विनयन आदि के अनन्तर पश्चात् = पश्चिम भागगत केशों का वपन, त्र्यायुषमिति = त्र्यायुषम् इस मन्त्रपूर्वक करे तथा दो बार मौन रहकर करे। मन्त्र—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्।। यजु ३.६२

१६. अथ = पश्चिम भागस्थ केश वपन के अनन्तर, येन भूरिश्चरा....... स्वस्तय इति = येन भूरिश्चरा—मन्त्रपूर्वक, उत्तरत: = उत्तरभागस्थ केशवपन कर वृषभ के गोबर पिण्ड में फैंक दे। मन्त्र—

येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्।

तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये।।

१७. त्रि: = तीन बार (अग्रिम सूत्रोक्त मन्त्रपूर्वक), शिर: प्रदक्षिणं = प्रदक्षिणाविधि से शिर के चारों ओर, क्षुरेण परिहरति = छुरे-उस्तरे को घुमावे, सम्मुखं = मुखसहित, केशान्ते = केशान्त कर्म में उस्तरे को मुखसहित शिर के चारों ओर घुमाना चाहिए।

१८. क्षुर परिहरण समय निम्न मन्त्र पठितव्य है—

यत्क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्त्वा वावपति केशाञ्छिन्धि शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीः।।

१९. केशान्ते = केशान्त कर्म में, मुखमिति च = मन्त्रान्त में मुखम् शब्द भी पढ़ना चाहिए।

२०. ताभि: = उसी—शीतोष्ण नवनीतादिमिश्रित, अद्भि: =जल से, शिर: = शिर को, समुद्य = गीला करके, अक्षुण्वन्परिवपेति = 'अक्षुण्वन्परिवप्' इन शब्दों का उच्चारण कर, नापिताय = नापित—नाई को, क्षुरं = क्षुर-उस्तरा, प्रयच्छति = देवे।

२१. शिर पर शिखा कितनी रखी जाये? यत: विभिन्न शाखाओं में शिखाविषयक विविध मत प्रचलित हैं, कहीं एक शिखा विहित है तो कहीं तीन शिखाएँ। अत: सूत्रकार एतद्विषयक स्वमन्तव्य प्रकट करते हैं—

यथामङ्गलं = यथा शास्त्र, यथागोत्र—जिस शाखा में जैसा विहित हो एक अथवा तीन आदि उसी प्रकार, केशशेषकरणम् = शिर पर केश शेष (शिखा) रखे।

२२. अनुगुप्तम् = आवृत—ढके हुए, सकेशं = केशसहित, एतं गोमयपिण्डं = इस गोबर के पिण्ड को, गोष्ठे = गोशाला, पल्वले = क्षुद्र जलाशय-तलैया, वा = अथवा, उदकान्ते = जल किनारे, निधाय = डाल दे और आचार्याय = आचार्य—ब्रह्मा को वरं = अभीष्ट वस्तु—दक्षिणा, ददाति = देवे।

२३. केशान्ते = केशान्त कर्म में आचार्य—ब्रह्मा को गां = गो दक्षिणा स्वरूप देवे।

२४. केशान्ते = केशान्त संस्कार के अनन्तर, संवत्सरं = एक वर्ष तक, ब्रह्मचर्यम् अवपनं च = ब्रह्मचर्य का पालन करे और केशवपन न करे अथवा यह व्रत संभव न हो तब, द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः = बारह दिन, छः दिन या न्यूनतम तीन दिन तक ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए केशवपन न कराये।

टिप्पणी-१. चूड़ाकरण एवं केशान्त की विधि समान होने के कारण सूत्रकार ने एक ही कण्डिका में दोनों का कथन साथ ही किया है।

२. 'शब्दक्रमादर्थक्रमो बलीयान्' इस नियम के अनुसार सूत्र ३-४ की व्याख्या संयुक्त रूप से करते हुए पहले सूत्र ४ 'यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्' की व्याख्या की गयी है तदनु सूत्र ३ षोडशवर्षस्य केशान्तः' की।

३. महर्षि दयानन्द ने छुरे—उस्तरे के स्थान पर कैंची का भी विकल्प रखा है।

४. सूत्र १० कुशतरुण—तीन नवीन कुश केशराशि में रखते समय सूत्र में 'ओषधे' यह मन्त्र प्रतीक भी है, किन्तु विनियोग की दृष्टि से यहाँ शेष सम्पूर्ण मन्त्र का उच्चारण न कर मात्र—'ओषधे त्रायस्व' इतना मन्त्र ही पढ़ना चाहिए।

गोभिल गृ० २.९.१४ के अनुसार 'आषधे त्रायस्वैनम्' म० ब्रा० १.६.५ इतना मन्त्र भाग पढ़ा जाना चाहिए।

५. सूत्र ११. प्रवपति—'डुवप, बीजसन्ताने छेदने च' भ्वा० उ० प० प्र० पूर्वक।

वप् धातु को भाष्यकारों ने 'संलग्न करना' इस विशिष्ट अर्थ में स्वीकार किया है। तद्यथा—"प्रपूर्वो वपतिः संलागने"—इति कर्क—जयराम—गदाधरः।

"उपसर्गेण धात्वर्थोबलादन्यत्र नीयते इति न्यायात् धातूनामनेकार्थत्वाच्चेत्यत्र प्रपूर्वो वपतिरभिनिधानार्थः" इति हरिहरः।

गोभिल गृ० २.९.१५ में 'प्रवपति' पद का प्रयोग न होकर अभिनिदधाति' पद उपलब्ध होता है।

आचार्य विश्वनाथ ने 'काकाक्षिगोलकन्याय' से 'प्रवपति' पद के 'निवर्तयामि' एवं 'येनावपत्' इन दोनों मन्त्रों के मध्य पठित होने से इसका अन्वय दोनों मन्त्रों के साथ किया है। तद्यथा—'काकाक्षिगोलकन्यायेन मन्त्रयोरन्तरे वर्तमानस्य प्रवपतेर्मन्त्र-

योरन्वय:' विश्वनाथ:। साथ ही विश्वनाथ ने ताम्रयुक्त क्षुर का वर्णन किया है। किन्तु सांख्यायन गृह्यसंग्रह अ० १ में ताम्रमय क्षुरका छेदनासामर्थ्य प्रतिपादित है।

६. सूत्र २१—गृह्यसूत्र में शिखा विषयक विभिन्न मत उपलब्ध होते हैं। तद्यथा—

(१) दक्षिणत: कपुजा वसिष्ठानाम्—काठक गृ० ३.१६.२ वसिष्ठगोत्रीय की शिखा के शिर के दक्षिण भाग में।

(२) उभयतोऽत्रिकश्यपानाम्—३ कश्यप एवं अत्रिगोत्रीय शिर के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर शिखा रखते हैं।

(३) मुण्डा भृगव:—४ भृगु गोत्रीय नि:शिख

(४) पञ्चचूडा अङ्गिरस:—५ अङ्गिरसगोत्रीय पञ्चशिख हैं।

वस्तुत: जितने ऋषि प्रवर में होते हैं उतनी ही शिखाएँ होती हैं। तीन ऋषि वालों के लिए तीन शिखाएँ होती हैं। पाँच ऋषि वालों के लिए पाँच शिखाएँ होती हैं। नि:शिखित्व अरिष्टहेतु है द्र० ऋ० ६.७५.१७। अत: प्रवर व ऋषित्व आदि के परिज्ञान से शून्य तथा अन्य सभी मङ्गलार्थ शिखा धारण करते हैं। सूत्रकार का 'यथामङ्गलं' पद इसी का ज्ञापक है।

७. केशान्त कर्म को आप० गृ० ६.१६.१२; मानव गृ० १.२१.१३ में गोदान कर्म कहा गया है। कौषी० गृ० १.२१.१७ के अनुसार गोदान कर्म सोलहवें अथवा अठारहवें वर्ष में विहित है।

८. कौषी० गृ० १.२१.१–५ के अनुसार ब्राह्मण का चूडाकर्म प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में क्षत्रिय का पञ्चम और वैश्य का सप्तम वर्ष में कर्त्तव्य है। अथवा सभी वर्णस्थ का प्रथम वर्ष होने पर। वर्ण की दृष्टि से पाँचवें, सातवें का विधान अन्यत्र नहीं हैं। वहाँ सामान्यत: सभी का प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में विहित है।

९. सूत्र २८ में उल्लिखित ब्रह्मचर्य व्रत विधान चूडाकर्म में कुमार के लिए अप्रासंगिक होने के कारण केशान्त कर्म के संदर्भ में जानना चाहिए।

१०. गदाधर भाष्य की निम्न पंक्ति 'कात्यायन—पारस्कर' की अभिन्नता की पोषिका है—''कर्मणस्तुल्यत्वाकेशान्तकथनमत्र भगवता कात्यायनेन कृतम्''

इति द्वितीयकाण्डे प्रथमा कण्डिका

द्वितीया कण्डिका

उपनयनम्

अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वा॥१॥ एकादशवर्षठ-राजन्यम्॥२॥ द्वादशवर्षं वैश्यम्॥३॥ यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्॥४॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्तं च पर्युप्तशिरसमलंकृतमानयन्ति॥५॥ पश्चादग्नेरवस्थाप्य ब्रह्मचर्यमागामिति वाचयति ब्रह्मचार्यसानीति च॥६॥ अथैनं वासः परिधापयति येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतं तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चस इति॥७॥ मेखलां बध्नीते। इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयमिति॥८॥ युवासुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः॥ तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त इति वा॥९॥ तूष्णीं वा॥१०॥ (यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञेपवीतेनोपनह्यामीत्यथाजिनं प्रयच्छति मित्रस्यचक्षुर्ध्दरुणं बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविरठ समिद्धं अनाहनस्यं वसनं जरिष्णुः परीदं वाज्यजिनं दधेऽहमिति) दण्डं प्रयच्छति॥११॥ तं प्रतिगृह्णाति यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्यां तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्च-सायेति॥१२॥ दीक्षावदेके दीर्घसत्रमुपैतीति वचनात्॥१३॥ अथास्याद्भिरञ्जलिं पूरयति आपोहिष्ठेति तिसृभिः॥१४॥ अथैनं सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति॥ १५॥ अथास्य दक्षिणाꣳसमधि हृदयमालभते। मम व्रते ते हृदयं दधामि। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति॥१६॥ अथास्य दक्षिणठ हस्तं गृहीत्वाऽऽह को नामासीति॥१७॥ असावहं भो ३ इति प्रत्याह॥१८॥ अथैनमाह कस्य ब्रह्मचार्यसीति॥१९॥ भवत इत्युच्यमान इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तवासाविति॥२०॥ अथैनं भूतेभ्यः परिददाति प्रजापतये त्वा परिददामि देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्यद्भ्य स्त्वौषाधीभ्यः परिददामि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्या इति॥२१॥२॥

(कर्कः)—'अष्ट......नयेत्' उपनयनसंस्कारं कुर्यादष्टमे वर्षे। 'गर्भाष्टमे वा' 'गर्भसहितं वर्षे गर्भशब्देन साहचर्यादभिधीयते। तथाच गौतमः—गर्भादिसंख्या-वर्षाणामिति। वा शब्दो विकल्पार्थः। 'एका.....जन्यम्' 'द्वाद्......श्यम्' उपनयेत्। 'यथा......वेंषाम्' सर्वेषां ब्राह्मणादीनां यथामङ्गलं वा भवति। मङ्गलशब्दः शास्त्रान्तरवाची। यथा पञ्चमे नवमे वा कार्यमित्येवमादि। 'ब्राह्म......त्तं च' श्राद्धव्यतिरिक्तान् ब्राह्मणान्भोजयेत्। तं चेति कुमारोऽभिधीयते। 'पर्यु......यन्ति' परिपूर्वस्य वपतेः कृतसंप्रसारणस्यैतद्रूपम्। पर्युप्तं शिरोऽस्येति पर्युप्तशिराः तं पर्युप्तशिरसम्। अलंकृतं स्रङ् मालादिना। आनयन्ति ये तदाचार्येणोपनीताः। शिरसश्च परिवपनं भोजनात्पूर्वमेव कर्त्तव्यम्। नेदानीं तदुपदेशो भूतकालनिर्देशात्। 'पश्चा........यति' अग्नेः पश्चात्कुमारमवस्थाप्य ब्रह्मचर्यमागामिति ब्रूहीत्येवं वाचयत्याचार्यः। ब्रह्मचार्यसानीति च। च शब्दाद्वाचयति। 'अथै......न्त्रेण' 'मेख....... वासा' इत्यनेन मन्त्रेण वा। तूष्णीं वा मेखलां बध्नीते। अस्मिन्नवसरे प्रसिद्ध्या यज्ञोपवीतमेवेच्छन्ति। अथ तूष्णीमैणेयमुत्तरीयमजिनं करोति। 'दण्डं......इति' प्रयच्छत्याचार्यः। कुमारः प्रतिगृह्णाति। 'दीक्षा.......चनात्' दीक्षावदेके आचार्याः दण्डं प्रतिग्रहीतुमिच्छन्ति। कुत एतत्। दीर्घसत्रमुपैतीति वचनात्। दीर्घसत्रं वा एष उपैति यो ब्रह्मचर्यमुपैतीति वचनात्। दण्डप्रतिग्रहणसामान्याद्दीर्घसत्रताऽस्योक्ता यद्येवं न दीक्षावत्प्रतिग्रहणं स्मरणाभावात्। या अत्र दीर्घसत्रसंस्तुतिः सा दीर्घकालसामान्यात्। 'अथास्या.....सृभिः' अथास्य कुमारस्याञ्जलिं पूरयत्यद्भिराचार्यः स्वेनाञ्जलिना आदाय आपोहिष्ठेति तिसृभिर्ऋग्भिः। 'अथैनं.....रिति' इत्यनेन मन्त्रेणावेक्षते। सूर्यमुदीक्षस्वेत्याचार्यप्रैषः। 'अथास्य.....लभते मम व्रते ते' इत्याचार्यः। अथैनमाह कस्य ब्रह्मचार्यसीत्याचार्य मन्त्रमाहाचार्यः। असाविति नामादेशः 'अथैनं.....रिष्ट्या' इत्यनेन मन्त्रेण॥२॥

१. अष्टवर्षं = आठ वर्ष व्यतीत हो जाने पर, गर्भाष्टमे वा = अथवा गर्भसहित आठ वर्ष व्यतीत होने पर, ब्राह्मणं = ब्राह्मण का, उपनयेत् = उपनयन संस्कार करना चाहिए।

२. एकादशवर्षं = ग्यारह वर्ष पूर्ण होने पर, राजन्यम् = राजन्य-क्षत्रिय का उपनयन संस्कार करना चाहिए।

३. द्वादशवर्षं = बारह वर्ष व्यतीत होने पर, वैश्यम् = वैश्य का उपनयन करना चाहिए।

४. यथामङ्गलं वा = अथवा स्व-स्वशास्त्र अथवा कुल परम्परानुसार, सर्वेषाम् = सभी ब्राह्मण आदि का उपनयन करना चाहिए।

५. ब्राह्मणान् = न्यनातिन्यून तीन ब्राह्मणों, तं च = और उस कुमार को, भोजयेत् = भोजन करा, पर्युप्तशिरसमलंकृतम् = मुण्डितशिर एवं माला आदि से अलंकृत उस कुमार को, आनयन्ति = आचार्य के समीप ले आवे। यहाँ यह स्मरणीय है कि कुमार का मुण्डन भोजन से पूर्व किया जाना चाहिए।

६. आचार्य स्वयं अग्नि के दक्षिण की ओर बैठकर कुमार को अग्नेः = अग्नि के, पश्चात् = पश्चिम की ओर, अवस्थाप्य = बैठाकर ब्रह्मचर्यमागाम् इति ब्रह्मचार्यसानीति च = 'ब्रह्मचर्यमागाम्' और 'ब्रह्मचार्यसानि' ये दो वाक्य कुमार से, वाचयति = कहलवाए अर्थात् प्रथम आचार्य प्रथम वाक्य का उच्चारण करे तदनु कुमार उस वाक्य को दोहरावे। इसी प्रकार आचार्य दूसरे वाक्य का उच्चारण करे तथा कुमार उस वाक्य को दोहरावे।

७. अथ = उक्त वाक्य वाचन के अनन्तर आचार्य, येनेन्द्रायः........ वर्चस इति = येनेन्द्राय..... मन्त्रपूर्वक, एनं = इस कुमार को, वासः = वस्त्र परिधापयति = धारण कराये। मन्त्र—

येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्।
तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥

८. आचार्य बालक की कटि पर मूंज आदि की, मेखलां = मेखला को, बध्नीते = बाँधे। बालक निम्न मन्त्र पढ़े—

इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥

मं०ब्रा० १.६.२७

९. युवासुवासाः.......देवयन्त इति वा = अथवा मेखला धारण करते समय 'इयं दुरुक्तं' मन्त्र के स्थान पर 'युवा सुवासाः'..... इस मन्त्र का पाठ करे। मन्त्र—

युवा युवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥

१०. तूष्णीं वा = अथवा अमन्त्रक ही मेखला धारण कर ले।

११. सूत्रकार ने जिस प्रकार सूत्र ७ में 'वासः परिधापयति'—वस्त्र धारण कराये तथा सूत्र ८ में 'मेखलां बध्नीते'—मेखला बांधता है आदि कहकर वस्त्र एवं मेखला धारण का निर्देश किया है इस प्रकार यहाँ सूत्र ११ में यज्ञोपवीत धारण करने के विषय में कुछ नहीं कहा है। साथ ही प्रकृतसूत्र में यज्ञोपवीत धारण मन्त्र के साथ ही अजिन प्रदान मन्त्र तथा दण्ड प्रदान का निर्देश एकत्र ही किया है। रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित कात्यायन गृह्य सूत्र का सूत्र विभाजन (जिसमें यह सूत्र तीन सूत्रों में विभक्त है।) युक्तियुक्त प्रतीत होता है। यज्ञोपवीत धारण मन्त्र की उपलब्धता के आधार पर सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत है—

यज्ञोपवीतं...... तेजः।। यज्ञोपवीतमसि....... उपनह्यामीति = वस्त्र एवं मेखला धारण करने के अनन्तर बालक यज्ञोपवीत हाथ में लेकर 'यज्ञोपवीतं' तथा 'यज्ञोपवीतमसि' इन दो मन्त्रों का पाठ करे और आचार्य बालक के बाएं कन्धे के ऊपर से दाहिने हाथ के नीचे की ओर करते हुए यज्ञोपवीत धारण करावे। एतद्विषयक निम्नब्राह्मण वचन बौधायनीयगृहशेष सूत्र २.११.३ पर उद्धृत है—"अजिनं वासो वा दक्षिणत उपवीय दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवीतम् 'इति ब्राह्मणम्।" मन्त्र—

(१) यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।

बौधा० गृ० २.५.७

(२) यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।

शांखायनगृ० २.२.३

अथ = बालक के यज्ञोपवीत धारणानन्तर आचार्य, अजिनं = मृगचर्म, प्रयच्छति = देवे तथा यज्ञोपवीति 'मित्रस्य....दधेऽहमिति' = मित्रस्य.... इस मन्त्रपूर्वक अथवा कात्यायन गृह्य २.३.१२ के अनुसार मन्त्रपूर्वक अथवा मौन होकर उस मृगचर्म को धारण करे। समग्र मन्त्र—

मित्रस्य चक्षुर्द्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविरं समिद्धं
अनाहनस्यं वसनं जरिष्णुः परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम्।

दण्डं = आचार्य बालक को दण्ड, प्रयच्छति = देवे।

१२. तं = बालक आचार्य प्रदत्त दण्ड को, यो मे दण्डः .... वर्चसायेति = 'यो मे दण्डः'—मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रतिगृह्णाति = ग्रहण करे। मन्त्र—

यो मे दण्डः परापतद् वैहायसोऽधि भूम्यां तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥

१३. एके = कुछ आचार्य, दीक्षावत् = सोमयाग की दीक्षा के सदृश ही अमन्त्रक दण्ड ग्रहण स्वीकार करते हैं। दीर्घसत्रमुपैतीति वचनात् = जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह दीर्घसत्र की समानता प्राप्त करता हैं इस वचनानुसार।

१४. अथ = दण्डप्रदानानन्तर आचार्य, अञ्जलिना = अपनी अञ्जलि द्वारा, अद्भिः = जल से, आपोहिष्ठेति तिसृभिः = आपोहिष्ठा आदि तीन मन्त्रों का पाठ करते हुए, अस्य = इस बालक की, अञ्जलिं = अञ्जलि को पूरयति = भर दे। मन्त्र—

(१) आपोहिष्ठा मयो भुवस्ता न ऽ ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥

(२) यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥

(३) तस्माऽअरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥

१५. अथ = अञ्जलिपूरणानन्तर आचार्य, एनं = इस बालक को, तच्चक्षुरिति = तच्चक्षुः इस मन्त्रपूर्वक, सूर्यमुदीक्षयति = सूर्य-दर्शन करावे। सूर्यदर्शन मन्त्र—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ यजु० ३६.२४

१६. अथ = सूर्य दर्शनानन्तर आचार्य, अस्य = इस बालक के दक्षिणां समधि = दाहिने कंधे के ऊपर से अपना दाहिना हाथ ले जाकर, 'ममव्रते..... मह्यमिति' = मम व्रते...... इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक, हृदयम् = हृदय का, **आलभते = स्पर्श करे।** आलभन मन्त्र—

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु।

मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

१७. अथ = हृदय स्पर्शनानन्तर आचार्य, अस्य = बालक के, दक्षिणं = दाहिने, हस्तं = हाथ को, गृहीत्वा = पकड़कर, आह = बालक से पूछे, को नामासि = तुम्हारा क्या नाम है?

१८. असौ = यह (अपना नाम—यज्ञदत्त आदि), अहं = मैं हूँ, भो = हे आचार्य! इति प्रत्याह = इस प्रकार वह बालक उत्तर देवे।

१९. अथ = बालक द्वारा नाम कथन के अनन्तर आचार्य, एनम् = बालक से, आह = पूछे कि तू, कस्य = किसका, ब्रह्मचार्यसि = ब्रह्मचारी है।

२०. भवत: = आपका, इत्युच्यमाने = बालक के ऐसा उत्तर देने पर आचार्य बालक—ब्रह्मचारी से कहे, इन्द्रस्य = हे ब्रह्मचारी तू इन्द्रपरमैश्वर्यसंपन्न प्रजापति का, ब्रह्मचार्यसि = ब्रह्मचारी है। तब = तुम्हारा (प्रथम), आचार्य = आचार्य, अग्नि: = अग्नि है। अहं = मैं, तव = तेरा (दूसरा), आचार्य = आचार्य हूँ। असौ—इति = असौ पद के स्थान पर ब्रह्मचारी का नामोच्चारण करना चाहिए। मन्त्र—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तवासौ।।

२१. अथ = तदनन्तर आचार्य, एनं = ब्रह्मचारी को उसकी रक्षा की कामना करते हुए, भूतेभ्य: = प्रजापति आदि को, परिददाति = समर्पित कर दे। समर्पण मन्त्र—

प्रजापतये त्वा परिददामि। देवाय त्वा सवित्रे परिददामि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि। द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामिसर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्टयै।।

टिप्पणी-१. उपनयन काल—(१) गृह्यसूत्रकारों ने उपनयन काल का विधान करते समय अपर सीमा का भी संकेत किया है। ब्राह्मण के लिए यह सीमा सोलह वर्ष, क्षत्रिय के लिए बाईस और वैश्य के लिए चौबीस वर्ष है। इसके पश्चात् यह सावित्री पतित हो जाते हैं। आश्वलायन गृ० १.१९.७के अनुसार इनके साथ न तो व्यवहार करे और न ही इन्हें पढ़ाए तथा इनके यहाँ यज्ञादि न कराने का भी निर्देश है। गोभिल गृ० २.१०.५ द्र०—बौधायन गृ० २.५.१–७२; कौषी० गृ० अ० २ खं १–८; गोभिल गृ० २.१०.३; बौधा० २.५.६ के अनुसार ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म, वैश्य का शरद् और रथकार का वर्षा में उपनयन होना चाहिए अथवा वसन्त में सभी वर्णस्थ का उपनयन किया जा सकता है।

(२) बौधायन गृह्यसूत्र में काम्य यज्ञोपवीत काल निर्देश निम्नवत् है—

अथापि काम्यानि भवन्ति-सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकामं त्रयोदशे मेधाकामं चतुर्दशे पुष्टिकामं पञ्चदशे भ्रातृव्यवन्तं षोडशे सर्वकाममिति।। २.५.५

पारस्कर की उपनयन विधि बौधायन, गोभिल, कौषीतक तथा आश्वालायन आदि की अपेक्षा संक्षिप्त एवं अस्पष्ट है। उक्त सूत्रग्रन्थों में सविस्तार विधि वर्णित है। वहाँ माणवक आचार्य से सवित्री मन्त्र का उपदेश देने की प्रार्थना करता है। तदनन्तर आचार्य उसे सावित्री मन्त्र (तत्सवितुर्वरेण्यं) का उपदेश करता है। इसी प्रकार उस यज्ञाग्नि को भी ब्रह्मचारी तीन दिन धारण करता है और उसी अग्नि में सायं प्रात: व्याहृति पूर्वक समिदाधान करता है। आदि-आदि।

२. सूत्र ५. पर्युप्तशिरसम्—परि उपसर्गपूर्वक डुवप् बीजसन्ताने छेदने च (भ्वा० उ० प०) धातु से क्त प्रत्यय और सम्प्रसारण होकर 'पर्युप्त' शब्दनिष्पन्न हुआ है। पर्युप्तं शिरोऽस्येति पर्युप्तशिरा: तं पर्युप्तशिरसम्।

३. सूत्र ६. ब्रह्मचर्यमागामिति मन्त्र ब्राह्मण १.६.१६ तदनुसार—बालक ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व—मन्त्र पाठ करे।

४. सूत्र ८. मेखला—गृह्यसूत्रानुसार यह मेखला—तगडी मूंज, शण और कपास की तीन लडयुक्त होनी चाहिए। वैसे गृह्यसूत्रों में कुश (काश) क्षौम और ऊन की भी मेखलाएँ वर्णित हैं।

५. सूत्र ११. दण्ड—पारस्कर में किस वर्णस्थ ब्रह्मचारी को किस वृक्ष का दण्ड दिया जाए इसका उल्लेख नहीं है। अन्य गृह्यसूत्रों में एतद्विषयक विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। तद्यथा—'पलाशं बैल्वं वा ब्राह्मणस्य।' नैयग्रोधं स्कन्धजमवाङग्रं रौहीतकं वा राजन्यस्य। बादरमौदुम्बरं वा वैश्यस्य। सर्वेषां वा वार्क्षम्।।—बौधा० गृ० २.५.१७; 'पार्णवैल्वाश्वत्था दण्डा:'—गोभिल गृ० २.१०.१०; आप० गृ० ३.११.१५ में बौधायन के तुल्य ही है, वहाँ—बैल्ब और रोहीतक का विकल्प नहीं है।

६. सूत्र १६. **आलभते**-हरिहर ने हृदयमालभते का अर्थ स्पृशति किया है। आलभते पर विस्तृत टिप्पणी का. १. क. ३ सूत्र २७ पर देखें।

७. सूत्र २०. **आचार्य**—(१) महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि उपनयन प्रकरण में आचार्य का निम्न लक्षण प्रस्तुत किया है—'आचार्य उसको कहते हैं कि साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ संबंधी और क्रिया का जानने हारा छल कपट रहित, अतिप्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी, तन, मन और धन से सबको सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे।'

(२) सत्यवाक् धृतिमान्दक्षः सर्वभूतदयापरः।
आस्तिको वेदनिरतः शुचिराचार्य उच्यते।।—यमस्मृति

इति द्वितीयकाण्डे द्वितीया कण्डिका ✪

तृतीया कण्डिका

प्रदक्षिणमग्निं परीत्योपविशति॥१॥ अन्वारब्ध आज्याहुतीर्हुत्वा प्राशनान्तेऽथैनꣳ सꣳशास्ति ब्रह्मचार्यस्यपोशान कर्म कुरु मा दिवा सुषुप्था वाचं यच्छ समिधमाधेह्यपोशानेति॥२॥ अथाऽस्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायोपसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय ॥३॥ दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके॥४॥ पच्छोर्द्धर्चशः सर्वां च तृतीयेन सहानुवर्तयन्॥५॥ संवत्सरे षण्मास्ये चतुर्विंशत्यहे द्वादशाहे षडहे त्र्यहे वा॥६॥ सद्यस्त्वेव गायत्रीं ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण इति श्रुतेः॥७॥ त्रिष्टुभꣳ राजन्यस्य॥८॥ जगतीं वैश्यस्य ॥९॥ सर्वेषां वा गायत्रीम्॥१०॥ ॥३॥

(कर्कः)—प्रदक्षिणमग्निं परीत्योपविशति कुमारः। अन्वारब्ध आज्याहुतीर्हुत्वा प्राशनान्तेऽथैनꣳ सꣳशास्ति। आचार्यः कुमारं ब्रह्मचार्यसीत्येवमादिभिः प्रैषवाक्यैः। ब्रह्मचार्यसीत्युक्ते भवामीति प्रत्याह कुमारः। अपोऽशानेत्युक्ते अश्नानीति प्रत्याह कुमारः। कर्म कुर्वित्युक्ते करवाणीति प्रत्याह कुमारः। मा दिवा सुषुप्था इत्युक्ते न स्वपानीति। वाचं यच्छेत्युक्ते यच्छानीति। समिधमाधेहीत्युक्ते आदधामीति। अपोऽशानेत्युक्ते अश्नानीति कुमारः। एतदनुशासनम्। 'अथास्मै.....ताय' गुरुं समीक्षमाणाय कुमाराय। उपसदनं च पादोपसंग्रहणपूर्वकम्। सवितृदेवत्यां गायत्री-छन्दस्कां सावित्रीम्। तस्मादेतां गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयादिति वचनात्। 'दक्षिण...... वैके' एके आचार्याः सावित्रीमन्वाहुः। एकीयशब्दाद्विकल्पः। 'पच्छो.... र्तयन्' पच्छ इति पादं पादं पुनरर्द्धमर्द्धं तृतीयेन सर्वां सहानुवर्तयन्। 'संवत्स..... त्र्यहे वा' सावित्र्युच्यते एवमेव हि श्रूयत इति। 'सद्य .....इति श्रुतेः' आग्नेयो वै ब्राह्मणः सद्यो वा अग्निर्जायते तस्मात्सद्य एव ब्राह्मणायानुब्रूयादिति। इतरेषां त्विच्छया कालः। 'त्रिष्टुभꣳराजन्यस्य' सावित्रीमनुब्रूयात्। 'जगतीं वैश्यस्य' सावित्रीमनु ब्रूयात्। 'सर्वेषां वा गायत्रीमनुब्रूयात्' वा शब्दो विकल्पार्थः।।३।।

१. आचार्य द्वारा वस्त्रादि से विभूषित माणवक, प्रदक्षिणमग्निं = अग्नि की प्रदक्षिण क्रम से, परीत्य = परिक्रमा कर (अग्नि के पश्चिम तथा आचार्य के उत्तर), उपविशति = बैठे।

२. अन्वारब्धः = ब्रह्मा का वरण कर, आज्याहुतीः = आघारावाज्याभागादि स्विष्टकृदन्त चतुर्दश आहुति, हुत्वा = देकर, प्राशनान्ते = संस्रवप्राशन के अनन्तर, अथैनं = आचार्य माणवक को, संशन्ति = अनुशासित करे। अनुशासनार्थ सात प्रैष वाक्य हैं। प्रथम आचार्य अनुशासित करता है, तदनु माणवक उत्तर देता है। सूत्र में अनुशासन वाक्य दिए हैं। उत्तर वाक्य भी यहाँ व्याख्या में शास्त्रानुसार दिए जा रहे हैं—

(१) ब्रह्मचार्यसि = ब्रह्मचारी हो, माणवक उत्तर दे—असानि

(२) अपोऽशान = (भोजन के पूर्व और पश्चात्) जल पियो, माणवक—अश्नानि

(३) कर्म कुरु = शास्त्रोक्त वर्णाश्रमविहित कर्म करो, माणवक—करवाणि

(४) मा दिवा सुषुप्था = दिन में शयन न करना, माणवक = न स्वपानि।

(५) वाचं यच्छ = वाणी का संयम करना, माणवक = यच्छानि

(६) समिधमाधेहि = अग्नि में समिदाधान करना, माणवक = आदधानि।

(७) अपोऽशान = आचमन करना, माणवक = अश्नानि।

३. अथ = उक्त अनुशासन के अनन्तर, अग्नेः उत्तरतः = अग्नि के उत्तर की ओर, प्रत्यङ् मुखाय = पश्चिमाभिमुख, उपविष्टाय = बैठे हुए, उपसन्नाय = आचार्य की चरणस्पर्शपूर्वक सेवा करते हुए, समीक्षमाणाय = आचार्य को सम्यक् प्रकार देखते हुए तथा समीक्षिताय = आचार्य द्वारा अच्छी प्रकार देखे जाते हुए, अस्मै = इस माणवक को, सावित्रीम् = सावित्री/गायत्री मन्त्र का, अन्वाह = उपदेश करे।

४. एके = कतिपय आचार्यों की मान्यता है कि, दक्षिणतः = अग्नि के दक्षिण की ओर, तिष्ठते = खड़े हुए, वा = अथवा, आसीनाय = बैठे हुए माणवक को आचार्य सावित्री मन्त्र का उपदेश करे।

५. **सावित्री उपदेश की विधि**—पच्छः = पाद-पाद करके, अर्द्धर्चशः = आधा मन्त्र करके पुनः, तृतीयेन सर्वां च = तीसरी बार संपूर्ण सावित्री मन्त्र का, सहानुवर्तयन् = ब्रह्मचारी से अनुवर्तन कराते हुए उपदेश करे। अर्थात् प्रथम बार—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्।

दूसरी बार—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

तीसरी बार—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्।

६. आचार्य ब्रह्मचारी की योग्यता को दृष्टिगत कर उसे, संवत्सरे = पूर्ण वर्ष में, षण्मास्ये = छः महीने में, चतुर्विंशत्यहे= चौबीसवें दिन, द्वादशाहे = बारहवें दिन, षडहे = छठे दिन, वा = अथवा, त्र्यहे = तीसरे दिन सावित्री का अर्थसहित उपदेश करें।

प्रस्तुत सूत्र में सावित्री प्रदान के काल विकल्प दिए हैं। यह विकल्प ब्रह्मचारी की योग्यता को ध्यान में रखकर है। विकल्प काल से प्रतीत होता है कि यहाँ अर्थ सहित उपदेश अभीष्ट है अन्यथा शब्दोपदेश में काल विकल्प की अपेक्षा नहीं थी।

७. आचार्य, ब्राह्मणाय = ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए, सद्यस्त्वेव = उपनयन के समय ही, गायत्रीम् अनुब्रूयात् = गायत्री मन्त्र का उपदेश करे। यतः ब्राह्मणः = ब्राह्मण, वै = निश्चय ही, आग्नेयः = अग्निदैवत्य तेजस्वी होता है—इति श्रुतेः = ऐसा श्रुति—शास्त्र वर्णित है।

८. राजन्यस्य = क्षत्रिय के लिए, त्रिष्टुभम् = त्रिष्टुप् छन्द में निबद्ध सावित्री (सविता देवताक) मन्त्र का उपदेश करे।

जयराम, गदाधर और विश्वनाथ के अनुसार क्षत्रिय के उपदेशार्थ **त्रिष्टुप् सावित्री** निम्न है—

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु स्वाहा।। यजु० ९.१

९. वैश्यस्य = वैश्य के लिए, जगतीं = जगती छन्द में निबद्ध सावित्री का उपदेश करे। भाष्यकारों के अनुसार **जगती सावित्री** मन्त्र—

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।

वि नाकमख्यत्सविता वेरण्योऽनुप्रयाणमुषसो विराजति।। यजु० १२.३

१०. वा = अथवा, सर्वेषां = सभी वर्णस्थ के लिए, गायत्रीम् = गायत्री छन्द में निबद्ध सावित्री (तत्सवितुर्वरेण्यम् ......) मन्त्र का उपदेश करे।

टिप्पणी–१. माणवक—बालक को जब तक वेद का उपदेश नहीं दिया जाता, तब तक उसकी माणवक संज्ञा है। तद्यथा—'अनृचो माणवको ज्ञेय......' कर्म प्रदीप ३.८.११

२. सूत्र २ (१) आज्याहुतीर्हुत्वा—होतव्य चतुर्दश आहुतियाँ निम्न हैं—आघार २ + आज्यभाग २ + व्याहृत्याहुतयः ३ + प्रायश्चित्ताहुतयः ५ + प्राजापत्याहुति १ + स्विष्टकृत् १ = १४।

(२) संशास्ति—आचार्य द्वारा अनुशासित करते समय माणवक 'असानि' आदि पदों द्वारा प्रत्युत्तर देता है। कर्म प्रदीप ३.६.१३ के अनुसार—'ओ३म् बाढम्' ऐसा कहे। तद्यथा—

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि।
बाढमोमिति वा ब्रूयात् तत्तथैवानुपालयेत्॥

३. सूत्र ३. उपसन्नाय—आपस्तम्ब गृह्य ३.११.८ के अनुसार—कुमार अपने दाहिने हाथ से आचार्य के दाहिने चरण को पकड़कर कहता है—श्रीमन्, सावित्री का उपदेश कीजिए। तद्यथा—'पुरस्तात् प्रत्यङ्ङासीनः कुमारो दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं पादमन्वारभ्याह 'सावित्रीं भो!' अनुब्रूहीति॥'

४. सूत्र ५. सावित्री—उपदेश—यजुः संहिता में तीन स्थानों ३.३५; २२.९; ३०.२ पर 'तत्सवितुर्वरेण्यम्'—इस सावित्री मन्त्र का पाठ व्याहृति रहित है। एक स्थान ३६.३ पर 'भूर्भुवः स्वः' व्याहृतिपूर्वक पाठ है। हमने व्याख्या में शास्त्रानुरोध की दृष्टि से व्याहृतिपूर्वक पाठ उद्धृत किया है। स्वयं सूत्रकार का इस विषयक कोई संकेत उपलब्ध नहीं है।

'महाव्याहृतीश्च विहृता ओङ्कारान्ताः' गोभिल २.१०.३६ इस गोभिल वचनानुसार महाव्याहृतिपूर्वक सावित्री का उपदेश करना चाहिए। साथ ही प्रत्येक व्याहृति के अन्त में 'ओ३म्' भी पढ़ा जाना चाहिए। तद्यथा—भूः ओम्, भुवः ओम्, स्वः ओम्।

मन्त्र ब्राह्मण १.६.३० में व्याहृतिपाठ के अन्त में एक बार ही 'ओम्' पढ़ा जाना विहित है। तद्यथा—"भूर्भुवः स्वरोम्"।

व्याहृतीर्विहृताः पादादिष्वन्तेषु वा तथार्धर्चयोरुत्तमां कृत्स्नायाम्—आप० गृ० ३.११.११ इस आपस्तम्बीय वचनानुसार—एक-एक पाद की आवृत्ति करते समय कुमार पादों के आरम्भ या अन्त में व्याहृतियों का उच्चारण करे। इसी प्रकार अर्धर्चों के आरम्भ या अन्त में प्रथम और द्वितीय व्याहृति का भी उच्चारण करे। इसका प्रयोग प्रकार सुदर्शनाचार्य की 'तात्पर्यदर्शन' टीका में द्रष्टव्य है। बौधायन गृ० २.५.४० के अनुसार भी व्याहृतिपाठ ही आदिष्ट है।।

व्याहृतियों के प्रयोग से पूर्व 'ओ३म्' का प्रयोग भी शास्त्रानुरोध से करना अभीष्ट है। तद्यथा—"**तत्सवितुर्वरेण्यम्" इत्येतां सप्रणवां सव्याहृतीं पच्छोऽर्धर्चशोऽनवाम्।** कौषी० गृ० २.३.८, **ओंकारं च**—खादिर गृ० २.४.२४ **ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह**—तै० उ० १.८; **ओंकारस्स्वर्गद्वारं तस्माद् ब्रह्माध्येष्यमाण एतदादिप्रतिपद्येत'** आप० धर्मसूत्र १.१३.६ **तथा न मामनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत्स्यात्'** गोपथ ब्रा० १.१.२३ आदि।

४. सूत्र ८—१० सूत्रकार ने सावित्री उपदेश में क्षत्रिय के लिए 'त्रिष्टुप्' छन्दोबद्ध एवं वैश्य के लिए जगती छन्द में निबद्ध सवितृ देवताक मन्त्र का उपदेश देने की बात कही है और विकल्प रूप में—'सर्वेषां वा गायत्रीम्' सभी के लिए गायत्री की बात भी कही है।

बौधायन, आपस्तम्ब, गोभिल, भारद्वाज, आश्वलायन, काठक एवं खादिर गृह्यसूत्र में मात्र 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' इस गायत्री/सावित्री मन्त्र के उपदेश का ही वर्णन है।

कौषीतक गृह्य २.३. २—५ का मन्तव्य पारस्कर के ही समान है। यहाँ सप्रणवा एवं सव्याहृती का उपदेश विहित है। वाराह गृह्य सूत्रकार ने सभी वर्णों के लिए पृथक् सावित्री विधान करते हुए स्वाशाखीय मन्त्र प्रतीक भी दिए हैं। यहाँ सभी के लिए पारस्कर तथा कौषीतक के समान गायत्री मन्त्र का विकल्प नहीं है। तद्यथा—

तत्सवितुर्वरेण्यमिति गायत्री ब्राह्मणाय। आ देवो यातु सविता सुरत्न इति त्रिष्टुभं क्षत्रियाय। युञ्जते मन इति जगतीं वैश्याय। पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वामन्ततः। ५.२६

मैत्रायणी संहिता में उक्त मन्त्र निम्न स्थल पर द्रष्टव्य हैं—

(१) तत्सवितुर्—४.१०.३

(२) आ देवो यातु—४.१४.६; युञ्जते मन—१.२.९

प्रतीत होता है कि—ब्राह्मण ग्रन्थों के 'ब्रह्म गायत्री', 'क्षत्रं त्रिष्टुप्'; 'जगतीच्छन्दो (जागतो) वै वैश्यः' आदि वचनों को दृष्टिगत कर ही सूत्रकार ने ब्राह्मण के लिए गायत्री, क्षत्रिय के लिए त्रिष्टुप् तथा वैश्य के लिए जगती छन्दोबद्ध सावित्री (सवितृ देवताक) मन्त्र का विधान किया है।

इति द्वितीयकाण्डे तृतीया कण्डिका ✪

चतुर्थी कण्डिका

समिदाधानम्

अत्र समिदाधानम् ॥१॥ पाणिनाऽग्निं परिसमूहति अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं माꣳ सुश्रवः सौश्रवसं कुरु यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा अस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासमिति॥२॥ प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्योत्तिष्ठन्त्समिधमादधाति अग्नये समधिमहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्च्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकारिष्णु र्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासं स्वाहेति॥३॥ एवं द्वितीयां तथा तृतीयाम्॥४॥ एषा त इति वा समुच्चयो वा ॥५॥ पूर्ववत्परिसमूहनपर्युक्षणे॥६॥ पाणी प्रतप्य मुखं विमृष्टे तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि व्वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥७॥ मेधां मे देवः सविता आदधातु मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजाविति॥८॥४॥ (अङ्गान्यालभ्य जपत्यङ्गानि च म आप्यायन्तां वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं यशोबलमिति त्र्यायुषाणि करोति भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणेꣳसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम्)॥४।

(कर्कः)—'अत्र...... नम्' अत्रावसर इति केचित् तत्र पाठादेव तत्प्राप्तेः। तेनात्रशब्दोऽग्निपरो द्रष्टव्यः। 'पाणिना.....असीति' एवमादिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं परिसमूहनं च संधुक्षणम्। पाणिनेत्येकवचनमेकत्वनियमार्थम्। उभाभ्यामपि

संधुक्षणप्रसिद्धिरस्ति। 'प्रदक्षि.....धाति' अग्निं पर्युक्ष्य तिष्ठन् समिधमादधाति।' अग्नये.... मिति' स्वाहाकारान्तेन। 'एवं .....तृतीयां' समिधमादधाति। 'एषा त इति वा' मन्त्रेण समिदाधानम्। समुच्चयो वा द्वयोरपि मन्त्रयोः।' पूर्वव.....क्षणे' अग्नेः कर्त्तव्ये। 'पाणी.......ऽसीति' वाक्यभेदाच्च प्रतिवाक्यं पाणी प्रतप्य मुखविमार्जनम्। मेधां मे देवः सविता मेधां मे देवी सरस्वती इत्यनयोरादधात्वित्यध्याहारः साकाङ्क्षत्वात्। अत्र प्रसिद्ध्या त्र्यायुषकरणानन्तरं गोत्रनामपूर्वकं वैश्वानरादीनामभि- वादनम्। त्र्यायुषकरणमनुक्तमपि सूत्रकारेण।।४।।

१. अत्र = आचार्य द्वारा ब्रह्मचारी को सावित्री प्रदान के अनन्तर अग्नि (सावित्री प्रदान से पूर्व जिस अग्नि में चतुर्दश आहुतियाँ दी थीं) में प्रसंगप्राप्त समिदाधानम् = समिदाधान विधि का वर्णन किया जा रहा है।

२. ब्रह्मचारी, अग्ने सुश्रवः.....भूयासमिति = अग्ने सुश्रवः...... इत्यादि मन्त्र पढ़कर, पाणिना = दाहिने हाथ से, अग्निं = अग्नि का, परिसमूहति = परिसमूहन-संधुक्षण करे।

भाष्यकारों ने 'अग्ने सुश्रवः' आदि पांच मन्त्र स्वीकार कर प्रत्येक मन्त्र से संधुक्षण तथा समित् प्रक्षेपण स्वीकार किया है। गदाधर ने सूखे गोमयखण्ड—गोबर के उपले आदि प्रक्षेपण कर संधुक्षण विधान किया है। हरिहर ने 'केचित्' कहकर तथा गदाधर ने 'कारिकायां विशेषः' कहकर मन्त्र के तीन मन्त्र मानकर प्रत्येक मन्त्र से तीन काष्ठ प्रक्षेपण का विकल्प प्रतिपादित कर संधुक्षण = अग्नि प्रदीप्त करने का निर्देश किया है। समग्र मन्त्र—

अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा अस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्।।

पांच मन्त्रों में विभाजन—

(१) अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु,

(२) यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि

(३) एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु

(४) यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि

(५) एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्

विकल्प पक्ष—तीन मन्त्रों में विभाजन—

(१) अग्ने सुश्रव: सुश्रवसं मा कुरु

(२) यथा त्वमग्ने सुश्रव: सुश्रवा अस्येवं मां सुश्रव: सौश्रवसं कुरु

(३) यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य........निधिपो भूयासम्।

३. अग्निं = अग्नि के (चारों ओर), प्रदक्षिणं = प्रदक्षिण क्रम से, पर्युक्ष्य = जल सिंचन कर, अग्नये समिधम्.....स्वाहेति = अग्नये समिधम्.......इस मन्त्रपूर्वक उत्तिष्ठन् = खड़े होकर, समिधम् = समित्, आदधाति = आधान करे।

समिदाधान मन्त्र—

अग्नये समिधमहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासं स्वाहा॥

४. एवं = इसी प्रकार, द्वितीयां = दूसरी, तथा तृतीयाम् = तथा तीसरी समिधा भी 'अग्नये समिधम्' मन्त्रपूर्वक अग्नि में प्रक्षेप करे।

५. वा = अथवा, एषा त इति = 'एषा ते' इस मन्त्रपूर्वक समिदाधान करे, समुच्चयो वा = अथवा दोनों मन्त्रों 'अग्नये समिधम्' तथा 'एषा ते' से एक समिधा पुन: इन्हीं दोनों मन्त्रों से दूसरी तथा तीसरी समिधा भी दोनों मन्त्रों से ही अग्नि में रखे। अर्थात् 'अग्नये समिधम्' मन्त्रपूर्वक तीन समिधाएं रखें। अथवा 'एषा ते' मन्त्रपूर्वक समिदाधान करे। तृतीय पक्ष है—दोनों मन्त्रों को पढ़कर एक पुन: दूसरी और मन्त्रपूर्वक ही तीसरी समिधा भी रखे।

समग्र मन्त्र—

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व।

वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। यजु० २.१४

६. पूर्ववत् = पूर्व की तरह अग्नि के, परिसमूहनपर्युक्षणे = परिसमूहन = संधुक्षण और पर्युक्षण—जल सिंचन (सूत्र २ व ३ में वर्णित विधि के अनुसार) करे।

७–८. पाणी = दोनों हाथ, प्रतप्य= अग्नि में तपाकर—तनूपा......आपृण; मेधां मे......स्त्रजाविति = तनूपा आदि मन्त्रपूर्वक, मुखं विमृष्टे = मुख का (ललाट

के चिबुक पर्यन्त) विमार्जन—स्पर्श करे। तनूपा प्रभृति सात मन्त्र—वाक्यों से सात ही बार हाथ तपाकर स्पर्श करना चाहिए।

स्पर्शमन्त्र—

(१) तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥

(२) मेधां मे देवः सविता आदधातु मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु मेधामश्विनौ देवावाधात्तां पुष्करस्त्रजौ॥

इसके पश्चात् अङ्गस्पर्श कर 'वाङ्मे आप्यायताम्' आदि जप तथा त्र्यायुष करण का वर्णन है। यह सूत्र सूत्रकार द्वारा अनुक्त किन्तु शिष्ट परम्परानुसार यहाँ उल्लिखित है—ऐसा कर्क आदि भाष्यकारों का मत है।

टिप्पणी-१. समिदाधान—काल—प्रातः उपनयन—सावित्री उपदेश आदि होता है। प्रसंग प्राप्त सांय समिदाधान का काल है। पुनः प्रातः भी होता है। तद्यथा—

अस्तमिते समिधामादधात्यग्नये समिधमहार्षमिति-गोभिल गृ० २.१०.४२

आश्वलायन गृ० १.२०.१० तथा १.२१.१ के अनुसार समिदाधान अमन्त्रक होता है, किन्तु कुछ आचार्य समन्त्रक मानते हैं।

कौषीतक गृ० २.६.६ के अनुसार समन्त्रक चार समिधाएं विहित हैं। यह समिदाधान इन्धनार्थ है। इसे क्षिप्रहोम भी कहा जाता है। गृह्यसंग्रह के अनुसार यहाँ स्वाहाकार भी अभिष्ट नहीं है। तद्यथा—

समिदादिषु होमेषु मन्त्रदैवतवर्जिता।
पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च इन्धनार्थं समिद्भवेत्॥ कर्मप्रदीप १.८.२१
सर्वेषामेव होमानां समिदादौ विधीयते।
कर्मान्ते चैवमेव स्यात् स्वाहां तत्र न कारयेत्॥ गृ० सृ० १.९७

समिल्लक्षण—उत्कृष्ट समिधाएं—

अकृशा चैव न स्थूला अशाखा चाऽपलाशिनी।
सक्षीरा नाधिका न्यूनाः समिधः सर्वकामदाः॥ गृ० स० १.३२
नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित् स्थूलतया क्वचित्।

न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता।।

प्रादेशान्नाधिका नोना तथा न स्यात् द्विशाखिका।

न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता।। का० सं० ८.१७-१८

ब्रह्मपुराण के अनुसार—पलाश (ढाक), अश्वत्थ (पीपल), न्यग्रोध (वटवृक्ष), गूलर, बिल्व, चन्दन, देवदारु और खादिर की होनी चाहिए।

त्याज्य समिधा—विशीर्ण, विदल, बहुत छोटी, टेढ़ी-मेढ़ी, बहुत मोटी तथा घुणी हुई समिधा प्रयोग में नहीं लेनी चाहिए।

२. त्र्यायुषकरण में भाष्यकारों ने शिष्ट परम्परा आचरित कहकर तिलक का विधान किया है।

विश्वनाथ ने यहाँ त्रिपुण्ड्र का भी विधान कर दिया है। साथ ही 'शिवो नामासि' मन्त्रजप भी निर्दिष्ट किया है। विश्वनाथ का यह त्रिपुण्ड तथा 'शिवो नामासि' मन्त्र जप सूत्रमूलक न होकर तत्कालीन सामाजिक (अवैदिक) प्रथा का बलात् आरोपण है।

३. श्रौतसूत्रों में सर्वत्र बैठकर ही समिदाधान होता है, किन्तु यहाँ खड़े होकर समिदाधान का वर्णन है। गदाधर का मत है कि—यह होम नहीं है समित् (समिध्यते दीप्यते अग्निरनयेति समित्) आधान है। इसी की सूचनार्थ खड़े होकर कथन करने में कोई दोष नहीं है।

इति द्वितीयकाण्डे चतुर्थी कण्डिका ✪

पञ्चमी कण्डिका

भिक्षाचरणम्

अत्र भिक्षाचर्यचरणम्।।१।। भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत।।२।। भवन्मध्यां राजन्यः।।३।। भवदन्त्यां वैश्यः।।४।। तिस्रोऽप्रत्याख्यायिन्यः।।५।। षड्द्वादशा-परिमिता वा।।६।। मातरं प्रथमामेके।।७।। आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वा वाग्यतोऽहःशेषं तिष्ठेदित्येके।।८।। अहिंसन्नरण्यात्समिध आहृत्य तस्मिन्नग्नौ पूर्ववदाधाय वाचं विसृजते।।९।। अधः शाय्यक्षारालवणाशी स्यात्।।१०।।

दण्डधारणमग्निपरिचरणं गुरुशुश्रूषा भिक्षाचर्या॥११॥ मधुमांसमज्जनोपर्यासनस्त्रीगमनानृतादत्तादानानि वर्जयेत्॥१२॥ अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत्॥१३॥ द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम्॥१४॥ यावद्ग्रहणं वा॥१५॥ वासांसि शाणक्षौमाविकानि॥१६॥ ऐणेयमजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य॥१७॥ रौरवं राजन्यस्य॥१८॥ आजं गव्यं वा वैश्यस्य॥१९॥ सर्वेषां वा गव्यमसति प्रधानत्वात्॥२०॥ मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य॥२१॥ धनुर्ज्या राजन्यस्य॥२२॥ मौर्वी वैश्यस्य॥२३॥ मुञ्जाभावे कुशाश्मन्तकबल्वजानाम् ॥२४॥ पालाशो ब्राह्मणस्य दण्डः॥२५॥ बैल्वो राजन्यस्य॥२६॥ औदुम्बरो वैश्यस्य॥२७॥ (केशसंमितो ब्राह्मणस्य, ललाटसंमितः क्षत्रियस्य, घ्राणसंमितो वैश्यस्य) सर्वे वा सर्वेषाम्॥२८॥ आचार्येणाहूत उत्थाय प्रतिशृणुयात्॥२९॥ शयानं चेदासीन आसीनं चेत्तिष्ठँस्तिष्ठन्तं चेदभिक्रामन्नभिक्रामन्तं चेदभिधावन्॥३०॥ स एवं वर्तमानोऽमुत्राद्य वसत्यमुत्राद्य वसतीति तस्य स्नातकस्य कीर्तिर्भवति॥३१॥ त्रयः स्नातका भवन्ति विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति॥३२॥ समाप्य वेदमसमाप्य व्रतं यः समावर्तते स विद्यास्नातकः॥३३॥ समाप्य व्रतमसमाप्य वेदं यः समावर्तते स व्रतस्नातकः॥३४॥ उभयꣳ समाप्य यः समावर्तते स विद्या व्रतस्नातक इति॥३५॥ आ षोडशद्वर्षाद्ब्राह्मणस्य नातीतः कालो भवति॥३६॥ आ द्वाविꣳशाद्राजन्यस्य॥३७॥ आचतुर्विꣳशाद्वैश्यस्य॥३८॥ अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति॥३९॥ नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न चैभिर्व्यवहरेयुः॥४०॥ कालातिक्रमे नियतवत्॥४१॥ त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकाणामपत्ये संस्कारो नाध्यापनं च॥४२॥ तेषाꣳसंस्कारे प्सुर्व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन्व्यवहार्या भवन्तीति वचनात्॥४३॥ ॥५॥

(कर्कः)—'अत्र....रणम्' कर्तव्यमिति सूत्रशेषः। अत्रेतिशब्दोऽवसरार्थः। 'भव....वैश्यः' 'तिस्रो.........यिन्यः' भिक्षेत। यत्र प्रत्याख्यानं न क्रियते। 'षट्....ता वेति' विकल्पः। 'मात.....मेके' भिक्षन्ते। अयं च प्रथमाहर्धर्मः। 'आचा.....त्येके' आचार्याय भिक्षानिवेदनं कृत्वा वाग्यतोऽहःशेषमासीत नवेति विकल्पः। 'अहिꣳ.... जते' अहिंसन्निति स्वयंभग्नाः समिधः तस्मिन्नग्नौ पूर्ववदाधानं कृत्वा वाग्विसर्गं करोति यदि वाग्यमो गृहीतः। 'अध..... चर्या' एतानि कर्तव्यानि। दण्डधारणं सर्वदा। अग्निपरिचरणं सायं प्रातः। उभयकालमग्निं परिचरेदिति स्मृत्यन्तरात्। गुरुशुश्रूषा

स्वाध्यायानुरोधेन। भिक्षाचर्या स्थित्यर्था। 'मधु...... जयेत्' मज्जनं ह्रददेवतीर्थस्नानं प्रतिषिध्यते। उद्धृतोदकेन न वार्यते। उपर्यासनमासनस्योपरि मसूरिकादि। स्त्रीगमनं स्त्रीणां मध्येऽवस्थानम्। वक्ष्यति हि ब्रह्मचर्यमुपरिष्टात्। अनृतमदत्तादानं चेति प्रसिद्धमेव। 'अष्टा......रेत्' अस्मिन्पक्षे चतुर्णामपि वेदानामेक एव व्रतादेशः सर्वा वेदाहुतयो हूयन्ते। 'द्वाद.....वेदम्' ब्रह्मचर्यचरणम्। अत्र यथास्वं वेदाहुतयः। 'यांव..... वा' वेदस्य वेदयोर्वेदानां वा ब्रह्मचर्यचरणम्। 'वासा...... कानि' ब्रह्मचारिणां भवन्ति। 'ऐणे...... णस्य। ऐणेयं हारिणं चर्म तद्ब्राह्मणस्योत्तरीयं भवति। 'रौर..... न्यस्य' रुरुर्नाम आरण्यः सत्वविशेषः तदीयं राजन्यस्य भवति। 'आजं...... श्यस्य' उत्तरीयं भवति।' सर्वे......त्वात्' असति यथाचोदिते चर्मणि सर्वेषां वा गव्यं भवति। 'धनु.... न्यस्य' ज्याशब्देन गुणोऽभिधीयते। 'मौर्वी वैश्यस्य' मुरुरिति तृणविशेषः। 'मुञ्जा....... जानाम्' संबन्धिनी रशना भवति। 'पाला........ दण्ड' भवति। 'बैल्वो......र्वेषाम्' सर्वेषामनियमेन भवन्ति। 'आचा..... णुयात्' आचार्येणासीन आहूत आसनादुत्थाय प्रतिश्रृणुयात्। 'शया..... सीनः' शयानं चेदाहूयते आसीनः प्रतिश्रृणुयात् 'आसी..... तिष्ठन्' प्रतिश्रृणुयात्। 'तिष्ठ..... क्रामन्' 'अभि....... धावन्' अस्यार्थवादोऽयम् 'स ए.... स्नातकः' उच्यते। 'समा...... वति' अर्वाक् षोडशवर्षाद् ब्राह्मणस्य नातीत एवोपनयनस्य कालः।' आद्वा...... न्यस्य' नातीतः कालो भवति। 'आच...... श्यस्य' नातीतः कालो भवति। 'अत..... भवन्ति।' अतश्च 'नेना..... वत्' कालव्यतिक्रमे सति यन्नियतेषु विहितं श्रौतेषु अनाम्नातं नैमित्तिकेषु यद्विहितं स्मार्तं तदेव भवति। तच्च प्रतिमहाव्याहृति सर्वाभिश्चतुर्थं सर्वप्रायश्चित्तमिति। कालव्यतिक्रमादन्यत्रापि भ्रेषे उत्पन्ने एतदेव भवति। नैमित्तिकान्तराविधानात्। 'त्रिपु..... यीरन्' संस्कारमिच्छन्व्रात्यस्तोमे-नेष्ट्वा आद्रियेत अधीयीत च। 'व्यव ..... चनात्'।।५।।

१. अत्र = समिदाधान के अनन्तर, भिक्षाचर्यचरणम् = भिक्षा वृत्ति का अनुष्ठान करना चाहिए। अर्थात् उपनयन विधि के अङ्गभूत भिक्षाचर्या-भिक्षा प्राप्ति के लिए माता आदि से प्रार्थना की विधि वर्णित है।

२. ब्राह्मणः = ब्राह्मण ब्रह्मचारी, भवत्पूर्वां = भवत् शब्द का प्रयोग भिक्षा शब्द से पूर्व करते हुए, भिक्षेत = भिक्षा मांगे।

३. राजन्यः = क्षत्रिय ब्रह्मचारी, भवन्मध्याम् = भवत् शब्द का प्रयोग वाक्य के मध्य में करते हुए भिक्षा मांगे।

४. वैश्य: = वैश्य ब्रह्मचारी, भवदन्त्याम् = वाक्य के अन्त में भवत् शब्द का प्रयोग करते हुए भिक्षा मांगे।

तीन वर्णों के लिए भिक्षार्थ वाक्य यथाक्रम निम्नवत् होंगे—

(१) भवति भिक्षां देहि; (२) भिक्षां भवति देहि; (३) भिक्षां देहि भवति।

५. तिस्र: = सर्वप्रथम उन तीन स्त्रियों से भिक्षा मांगे जो अप्रत्याख्यायिन्य: = निषेध न करें।

६. वा = अथवा, षट् = छ:, द्वादश = बारह या, अपरिमिता = और भी अधिक स्त्रियों से भिक्षा प्राप्त करे।

७. एके = कुछ आचार्यों का मत है कि—प्रथमाम् = प्रथम भिक्षा, मातरम् = माता से प्राप्त करे।

आचार्य कर्क के अनुसार—'अयं च प्रथमाहर्धर्म:'—यह प्रथम दिवस के लिए ही नियम है। हरिहर के अनुसार—'एते भिक्षाविकल्पा: आहारपर्याप्त्यपेक्षया' —भिक्षा प्राप्ति के ये विकल्प (तीन, छ:, बारह अथवा अपरिमित स्त्रियों से भिक्षायाचना) आहार की पर्याप्तता की दृष्टि से है।

८. ब्रह्मचारी भैक्षं = भिक्षा में प्राप्त द्रव्य—धान्यादि, आचार्याय = आचार्य को, निवेदयित्वा = निवेदन करके, अह: शेषं = दिन के शेष भाग में, वाग्यत: = वाणी को संयत कर—मौन, तिष्ठेत् = रहे, इत्येके = ऐसा (मौन विषयक) कुछ आचार्यों का मत है। जयराम के अनुसार यह 'मौन' फलातिशयार्थ है।

९. ब्रह्मचारी, अरण्यात् = वन—जंगल से, अहिंसन् = वृक्ष को बिना काटे, स्वयं सूखकर नीचे पड़ी हुई, समिध: = समिधा, आहृत्य = लाकर, तस्मिन्नग्नौ = उसी परिसमूहित एवं पर्युक्षित अग्नि में, पूर्ववदाधाय = पूर्व (चतुर्थ कण्डिका) सूत्र ३—५ के समान ही) की तरह समिदाधान कर, वाचं विसृजते = वाक् विसर्जन—मौन त्याग करे।

पूर्वसूत्र ८ में 'एके' कहकर मौन धारण का विकल्प वर्णित है। यदि ब्रह्मचारी मौन धारण करेगा तभी वह प्रस्तुत सूत्र ९ के अनुसार वाक् विसर्जन करे। वाग्यमन न करने पर वाग्विसर्जन का प्रसङ्ग ही नहीं। समिदाधान में कोई विकल्प नहीं है। वाग्यमन करे अथवा नहीं समिदाधान अवश्य कर्त्तव्य है।

ब्रह्मचारी के लिए नियम—

१०. अधः शायी = भूमि पर शयन करे, अक्षारालवणाशी स्यात् = क्षार युक्त तथा लवणयुक्त पदार्थों का भोजन न करे।

११. दण्डधारणम् = सदैव दण्ड (अजिन, यज्ञोपवीत एवं मेखला का भी यहाँ ग्रहण अभीष्ट है।) धारण करे, अग्निपरिचरणं = प्रतिदिन सायं प्रातः अग्नि के परिचर्या—परिसमूहन, पर्युक्षण, समिदाधानादि करे, गुरुशुश्रूषा = गुरु शुश्रूषा और नित्यप्रति, भिक्षाचर्या = भिक्षाचरण भी करे।

१२. मधु..... वर्जयेत् = मधु, मांस, (नदी जलाशय आदि गहरे जल में डुबकी लगाकर) स्नान, चारपाई आदि पर बैठना, स्त्रीगमन, मिथ्याभाषण और बिना दिए परद्रव्य का ग्रहण—स्तेय को छोड़ दे।

सूत्र १०—११ में ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य कर्मों का विधान कर प्रकृत सूत्र १२ में त्याज्य कर्मों का वर्णन किया गया है।

१३. अष्टाचत्वारिंशद् वर्षाणि = ४८ वर्ष तक, वेद ब्रह्मचर्य = वेदाध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य का, चरेत् = आचरण करे। यहाँ चारों वेदों के अध्ययनार्थ एक ही व्रत ग्रहण करते हुए ४८ वर्ष का ग्रहण किया है।

१४. द्वादश द्वादश वा = अथवा बारह-बारह वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक, प्रतिवेदम् = प्रत्येक वेद के अध्ययनार्थ व्रत ग्रहण करे अर्थात् प्रत्येक वेद के हिसाब से बारह वर्ष का अनुष्ठान करे।

१५. वा = अथवा, यावद्ग्रहणं = जितना सामर्थ्य हो या जितने एक, दो, तीन अथवा चारों वेद ग्रहण करना चाहे उतने काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य का आचरण करे।

१६. ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य ब्रह्मचारी के यथाक्रम, वासाꣳसि = वस्त्र, शाण क्षौमाविकानि = शण (पटसन से निर्मित), रेशमी और ऊन से बने हुए हों। अर्थात् ब्राह्मण के पटसन, क्षत्रिय के रेशमी और वैश्य के ऊनी वस्त्र हों।

१७. ब्राह्मणस्य = ब्राह्मण ब्रह्मचारी का, ऐणेयमजिनमुत्तरीयम् = मृगचर्म का उत्तरीय होता है।

१८. राजन्यस्य = क्षत्रिय ब्रह्मचारी का उत्तरीय, रौरवं = रुरु—चित्र मृग चर्म—निर्मित हो।

१९. वैश्यस्य = वैश्य ब्रह्मचारी का उत्तरीय, आजं गव्यं वा = बकरी अथवा गोचर्म का हो।

२०. वा असति = अथवा उपर्युक्त ऐणेय आदि के अनुपलब्ध होने पर, प्रधानत्वात् = प्रधान—मुख्य होने के कारण, गव्यं = गोचर्म निर्मित उत्तरीय, सर्वेषाम् = सभी वर्णस्थ ब्रह्मचारियों के लिए विहित है।

२१. ब्राह्मणस्य = ब्राह्मण की, रशना = मेखला (तगडी), मौञ्जी = मूंज की बनी हुई होती है।

२२. राजन्यस्य = क्षत्रिय की मेखला, धनुर्ज्या = धनुष की प्रत्यञ्चा की बनी हुई होगी।

२३. वैश्यस्य = वैश्य की मेखला, मौर्वी = मुरु नामक तृण विशेष की होनी चाहिए।

२४. मुञ्जाभावे = मेखलार्थ मूँज आदि के अनुपलब्ध होने पर, कुशाश्मन्तक बल्वजानाम् = कुश, अश्मन्तक और बल्वज की बनी मेखला ब्राह्मणादि धारण करें।

२५. ब्राह्मणस्य = ब्राह्मण के लिए, दण्डः = दण्ड, पालाशः = पलाश—ढाक की लकड़ी का होगा।

२६. राजन्यस्य = क्षत्रिय के लिए दण्ड, बैल्वः = बिल्व की लकड़ी का हो।

२७. वैश्यस्य = वैश्य के लिए दण्ड, औदुम्बरः = उदुम्बर अर्थात् गूलर का होना चाहिए।

यह दण्ड कितना लंबा हो—इस विषय में सूत्रकार ने कोई उल्लेख नहीं किया है, किन्तु परम्परया परशाखीय मन्तव्य कोष्ठकान्तर्गत रूप से स्व विरोधी न होने से दिया गया है जिसके अनुसार—ब्राह्मण का दण्ड केश तक, क्षत्रिय का मस्तक और वैश्य का नासिका तक ऊँचाई युक्त होना चाहिए।

२८. वा = अथवा, सर्वेषाम् = सभी वर्णस्थ ब्रह्मचारियों के लिए सर्वे = सभी अर्थात् पलाश आदि का कोई भी दण्ड धारण किया जा सकता है।

२९. आचार्येण = आचार्य द्वारा, आहूतः = आहूत (बुलाया) किया गया ब्रह्मचारी, उत्थाय = उठकर, प्रतिश्रृणुयात् = उत्तर दे।

३०. आचार्य के द्वारा आहूत करते समय यदि ब्रह्मचारी, शयानं चेत् = यदि शयन कर रहा हो तब, आसीनः = बैठकर उत्तर दे। आचार्य आसीनं चेत् = यदि बैठे हुए को पुकारे तब ब्रह्मचारी, तिष्ठन् = खड़े होकर उत्तर दे। तिष्ठन्तं चेत् = यदि खड़े हुए को पुकारे तब, अभिक्रामन् = आचार्य की ओर आगे बढ़कर उत्तर दे। अभिक्रान्तं चेत् = यदि आचार्य अभिक्रमण करते हुए को पुकारे तब अभिधावन् = दौड़कर उत्तर दे।

प्रस्तुत सूत्र द्वारा स्पष्ट है कि ब्रह्मचारी सदैव गुरु शुश्रूषा एवं विद्याध्ययनार्थ समुद्यत रहे। वह आलस्य एवं तन्द्रा आदि से दूर रहे।

३१. सः = वह गुरुशुश्रूषारत ब्रह्मचारी, एवं वर्तमानः = इस प्रकार का व्यवहार करता हुआ, अद्य = यहाँ रहता हुआ ही, अमुत्र वसति = स्वर्ग में निवास करता है अर्थात् सुख विशेष प्राप्त करता है। अमुत्राद्य वसति = यह द्विरुक्ति पुनः कथन स्तुत्यर्थक है। तस्य स्नातकस्य = उस ब्रह्मचारी के स्नातक होने पर उसकी, कीर्ति भवति = कीर्ति—यश होता है।

३२. त्रयः = तीन, स्नातका भवन्ति = स्नातक होते हैं। अर्थात् स्नातक तीन प्रकार के होते हैं। १. विद्यास्नातकः = विद्यास्नातक, २. व्रतस्नातकः = व्रतस्नातक और ३. विद्याव्रतस्नातक इति = विद्याव्रतस्नातक।

३३. समाप्यवेदम् = वेदाध्ययन समाप्त—पूर्ण कर, असमाप्य व्रतं = व्रत को समाप्त न कर, यः समावर्तते = जो समावृत्त होता है, स विद्यास्नातकः = वह विद्यास्नातक है।

३४. समाप्यव्रतम् = व्रत को पूर्ण कर, किन्तु, असमाप्य वेदं = वेदाध्ययन को पूर्ण न कर, यः समावर्तते = जो समावृत्त होता है, सः व्रतस्नातकः = वह व्रतस्नातक है।

३५. उभयं समाप्य = उभय अर्थात् वेदाध्ययन एवं व्रत इन दोनों को यथाविधि पूर्ण कर, यः समावर्तते = जो समावृत्त होता है, स विद्याव्रतस्नातक इति = वह विद्याव्रतस्नातक होता है।

३६. आ षोडशाद्वर्षाद् = सोलह वर्ष के पूर्व तक, ब्राह्मणस्य = ब्राह्मण का, नातीतः कालो भवति = सावित्री उपदेश का काल रहता है। अर्थात् ब्राह्मण का उपनयन सोलह वर्ष की अवस्था के पूर्व हो जाना चाहिए।

३७. राजन्यस्य = क्षत्रिय का, आ द्वाविंशात् = बाइसवें वर्ष से पूर्व तक सावित्री उपदेश का समय है।

३८. वैश्यस्य = वैश्य का, आ चतुर्विंशात् = चौबीसवें वर्ष से पूर्व तक सावित्री उपदेश का समय है।

३९. अत ऊर्ध्वं = इससे आगे अर्थात् ब्राह्मण सोलह, क्षत्रिय बाईस और वैश्य चौबीस वर्ष के पश्चात्, पतितसावित्रीका भवन्ति = पतितसावित्रीक—सावित्री से पतित-रहित हो जाते हैं।

४०. एनान् = इन पतितसावित्रीक का, न उपनयेयुः = उपनयन न करावे, न अध्यापयेयुः = न अध्ययन करावे, न याजयेयुः = न इनके यहाँ यज्ञ करावे और न चैभिर्व्यवहरेयुः = न इनके साथ व्यवहार करे।

४१. कालातिक्रमे = काल का अतिक्रमण होने पर (गर्भाधान से उपनयन पर्यन्त सभी संस्कारों का समय नियत है। यदि किसी कारणवश संस्कार समय तक न हो सका हो तब) नियतवत् = श्रौतसूत्र प्रतिपादित नियत विधि से प्रायश्चित्त करे। प्रायश्चित्त के अनन्तर ये व्यवहार योग्य हो जाते हैं। यह विधि कात्यायन श्रौतसूत्र अ० २२, कण्डिका ४ में द्रष्टव्य है।

४२. त्रिपुरुषं = तीन पुरुष अर्थात् तीन पीढ़ियों तक, पतितसावित्रीकाणाम् = पतितसावित्रीक—जिन्हें सावित्री का उपदेश न हुआ हो उनकी, अपत्ये = सन्तान का, संस्कारो न = संस्कार नहीं होता, अध्यापनं च = और न ही वेद का अध्यापन।

४३. तेषां = उन पतित सावित्रीक पुरुषों में यदि कोई, संस्कारेप्सुः = अपना संस्कार कराना चाहे तो वह, व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा = व्रात्यसतोम से यज्ञ करके काममधीयीरन् = यथेच्छ वेदादि का अध्ययन करे। व्यवहार्या भवन्तीति वचनात् = वह पुरुष व्यवहार्य—व्यवहार करने योग्य होते हैं—इस श्रौतवचनानुसार।

टिप्पणी-१. वेदाध्ययन—हरिहर एवं गदाधर ने वेदाध्ययन प्रारम्भ करते समय कतिपय विशिष्ट आहुतियाँ देने का वर्णन किया है। तदनुसार—

पञ्चभूसंस्कारपूर्वक लौकिक (गार्हपत्य) अग्नि स्थापित कर जिस वेद का अध्ययन प्रारम्भ करे तत्सम्बन्धी दो विशिष्ट आहुतियाँ देकर ९ नौ आज्याहुतियाँ दें। यदि चारों वेदों का अध्ययन करना हो तब प्रति वेद दो-दो आहुतियाँ देकर शेष नौ आहुतियाँ दे। ये निम्न हैं—

(१) ऋग्वेद के अध्ययनार्थ—(१) **पृथिव्यै स्वाहा (२) अग्नये स्वाहा।**

(२) यजुर्वेद के अध्ययनार्थ—(१) **अन्तरिक्षाय स्वाहा (२) वायवे स्वाहा।**

(३) सामवेद के अध्ययनार्थ—(१) **दिवे स्वाहा (२) सूर्याय स्वाहा**

(४) अथर्ववेद के अध्ययनार्थ—(१) **दिग्भ्यः स्वाहा (२) चन्द्रमसे स्वाहा।**

(५) सामान्य नौ आज्याहुतियाँ—

(१) ब्रह्मणे स्वाहा (२) छन्दोभ्यः स्वाहा (३) प्रजापतये स्वाहा (४) देवेभ्यः स्वाहा (५) ऋषिभ्यः स्वाहा (६) श्रद्धायै स्वाहा (७) मैधायै स्वाहा (८) सदस्पतये स्वाहा (९) अनुमतये स्वाहा

उक्त ११ या १७ आहुतियां देकर महाव्याहृत्यादि स्विष्टकृदन्त होम भी कर्त्तव्य है।

२. (१) **व्रात्यस्तोम**—व्रात्य के प्रायश्चित्तार्थ यज्ञ—क्रतु व्रात्यस्तोम है। व्रात्य चार प्रकार के होते हैं—**१. निन्दित, २. कनिष्ठ, ३. ज्येष्ठ, ४. हीनाचार।** एतद्विषयक अधिक जानकारी के लिए कात्यायन श्रौतसूत्र २२.४.१—३३; लाट्यायन श्रौतसूत्र ८.६; तथा ताण्ड्य ब्राह्मण १७.१.१४—१५.२.१.४; ४.३ द्रष्टव्य हैं।

(२) **व्यवहार्या भवन्ति**—कात्यायन श्रौतसूत्र के निम्न दो सूत्र द्रष्टव्य हैं—

व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा व्रात्यभावाद्विरमेयुः।

व्यवहार्या भवन्ति॥ २२.४.२९-३०

इति द्वितीयकाण्डे पञ्चमी कण्डिका ✪

षष्ठी कण्डिका

समावर्तनम्

वेदं समाप्य स्नायात्॥१॥ ब्रह्मचर्यं वाऽष्टाचत्वारिंशकम्॥२॥ द्वादशकेऽप्येके ॥३॥ गुरुणाऽनुज्ञातः ॥४॥ विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः ॥५॥ षडङ्गमेके ॥६॥ न कल्पमात्रे ॥७॥ कामं तु याज्ञिकस्य ॥८॥ उपसंगृह्य गुरुं

समिधोऽभ्याधाय परिश्रितस्योत्तरतः कुशेषु प्रागग्रेषु पुरस्तात्स्थित्वाऽष्टानामुदकुम्भानाम्॥९॥ ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहातान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येकस्मादपो गृहीत्वा॥१०॥ तेनाभिषिञ्चते। तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति॥११॥ येन श्रियमकृणुतां येनावमृशताꣳसुराम्। येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यश इति॥१२॥ आपोहिष्ठेति च प्रत्यृचम् ॥१३॥ त्रिभिस्तूष्णीमितरैः॥१४॥ उदुत्तममिति मेखलामुन्मुच्य दण्डं निधाय वासोऽन्यत्परिधायादित्यमुपतिष्ठते॥१५॥ उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय। उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय। उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्सायंयावभिरस्थात्सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन्मागमयेति॥१६॥ दधितिलान्वा प्राश्य जटालोमनखानि संहृत्यौदुम्बरेण दन्तान्धावेत। अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाऽयमागमत्। स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन चेति॥१७॥ उत्साद्य पुनः स्नात्वाऽनुलेपनं नासिकयोर्मुखस्य चोपगृह्णीते प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पयेति॥१८॥ पितरः शुन्धध्वमिति पाण्योरवनेजनं दक्षिणानिषिच्यानुलिप्य जपेत्॥ सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासमिति॥१९॥ अहतं वासो धौतं वाऽमौत्रेणाच्छादयीत। परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूचीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्य इति॥२०॥ अथोत्तरीयम्। यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च माविन्दद्यशो मा प्रतिपद्यतामिति॥२१॥ एकञ्चेत्पूर्वस्योत्तरवर्गेण प्रच्छादयीत॥२२॥ सुमनसः प्रतिगृह्णाति॥ या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय। ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन चेति॥२३॥ अथावबध्नीते यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु। तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशोमयीति॥२४॥ उष्णीषेण शिरो वेष्टयते युवा सुवासा इति॥२५॥ अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयादिति कर्णवेष्टकौ॥२६॥ वृत्रस्येत्यङ्क्तेऽक्षिणी॥२७॥ रोचिष्णुरसीत्यात्मानमादर्शे प्रेक्षते॥२८॥ छत्रं प्रतिगृह्णाति। बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मा मन्तर्धेहि तेजसो यशसो माऽन्तर्धेहीति॥२९॥

प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मा पातमित्युपानहौ प्रतिमुञ्चते॥३०॥ विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वत इति वैणवं दण्डमादत्ते॥३१॥ दन्तप्रक्षालनादीनि नित्यमपि वासश्छत्रोपानहश्चापूर्वाणि चेन्मन्त्रः॥३२॥६॥

(कर्कः)—'वेदं.....यात्' एवं हि श्रूयते वेदमधीत्य स्नायादिति। ब्रह्मचर्यं वेति वर्षे विकल्पः। 'द्वादशकेऽप्येके' स्नानमिच्छन्ति। 'गुरुणाऽनुज्ञातः' स्नायादित्यनुवर्तते। गुर्वनुज्ञा च कर्माङ्गतया, स्नानस्य कालान्तरमेतत्। **वेदशब्देन किमभिधीयत इत्यत आह 'विधि.....वेदः' विधिर्विधायकं ब्राह्मणं, विधेया मन्त्राः, तर्कशब्देनार्थ-वादोऽभिधीयते। तर्क्यते ह्यनेन संदिग्धोऽर्थः।** यथा अक्ताः शर्करा उपदधाति तेजो वै घृताक्ता। अञ्जनं च तैलवसादिनाऽपि संभवति। तत्र तेजो वै घृतमिति घृतसंस्तवात् तर्क्यते घृताक्ता इति। तेन **विध्यर्थवादमन्त्रा वेदशब्देनाभिधीयन्त** इत्युक्तम्। 'षडङ्गमेके' शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षड्भिरङ्गैरुपेतमेक आचार्या वेदमिच्छन्ति। एतस्मिन्हि अधिगते स्नानार्हो भवति। **स्नानशब्देन द्वितीयाश्रमप्रतिपत्तिरुच्यते।** तदनुष्ठानयोग्यता च षडङ्गेऽप्यधिगते वेदे भवति। अत एवोक्तम् 'न कल्पमात्रे' कल्पशब्देन च ग्रन्थमात्रमभिधीयते। न ग्रन्थमात्रेऽधिगते स्नायीत। न ह्येतावता तदनुष्ठानयोग्यता भवति तस्मादर्थतो ग्रन्थतश्चाधिगम्य। स्नानमिति। 'काम..... कस्य' यज्ञं वेदेति याज्ञिकः तस्य कामं स्नानं भवति। षडङ्गम-र्थतोऽनधिगम्यापि। 'उपसंगृह्य गुरुं समिधोऽभ्याधाय इत्यत आरभ्य 'यद्वां तदश्विना यश इत्येवमन्तं सूत्रम्। उपसंगृह्य गुरुमिति गुरोः पादोपसङ्ग्रहणं कृत्वा समिधोऽभ्या-धायेति अग्निपरिचरणं कृत्वेत्यर्थः। अतश्च पूर्वं वेदाहुतिहोमः। एतदेव व्रतादेशन-विसर्गेष्वित्युक्तम्। ननु च समिदाधानस्य पश्चात्कस्माद्वेदाहुतयो न भवन्ति। एवं च सूत्रानन्तर्यमनुगृहीतं भवति। न चेह वेदाहुतीनां क्रमान्तरविधानमस्ति। उपसंगृह्य गुरु समिधोऽभ्याधायेति च पाठानुग्रहः। नैतदेवम्। वेदाहुतीनां समिदाधानमेव पश्चाद्भवति। एवं हि श्रूयते। स **यामुपयन्त्समिधमादधाति सा प्रायणीया या स्नास्यन्सोदय-नीयेति।** स्नानं चाष्टभिरुदकुम्भैः समिदाधानसमनन्तरमेव भवति उत्तरतः परिश्रित-स्याष्टानामुदकुम्भानां पुरस्तात् स्थित्वा कुशेषु प्रागग्रेषु येऽप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्य इत्यनेन मन्त्रेण एकस्मादुदकुम्भादपो गृहीत्वा तेनाभिषञ्चते तेन मामभिषि-ञ्चामि इत्यनेन मन्त्रेण। अथ द्वितीयेन येन श्रियमकृणुतामित्यनेन मन्त्रेण। 'आपोहिष्ठेति च प्रत्यृचं' त्रिभिरुदकुम्भैरभिषिञ्चति। तूष्णीमितरैरुदकुम्भैरभिषेकः।

'उदु......ष्ङ्गत' उद्यन्भ्राजभृष्णुरित्यनेन मन्त्रेण। 'दधि.... वेत' अन्नाद्य व्यूहमित्यनेन मन्त्रेण दधितिलयोरन्तरप्राशनं कृत्वा जटालोमनखानां संहारं च औदुम्बरेण दन्तान्प्रक्षालयेदन्नाद्याय व्यूहध्वमित्यनेन मन्त्रेण। 'उत्सा... येति' उत्सादनमङ्गोद्वर्तनं कृत्वा पुनः स्नात्वाऽनुलेपनं नासिकयोर्मुखस्य चोपगृह्णीते प्राणापानौ मे तर्पयेत्यनेन मन्त्रेण। 'पित......जपेत्' सुचक्षा अहमक्षीभ्यामिति। 'अहतं.....यीत' परिधास्यै० इत्यनेन मन्त्रेण। 'अथोत्तरीयं' यशसा मा द्यावापृथिवी० इत्यनेन मन्त्रेणाच्छादयति। 'एकं.... यीत' एकं चेद्वासो भवति तस्यैवोत्तरवर्गेण प्रच्छादयति। तत्रापि मन्त्रो भवति। क्रियान्तरत्वात्। 'सुम......ह्णाति' या आहरज्जमदग्नि० इत्यनेन मन्त्रेण। 'अथाव-बध्नीते' यद्यशोऽप्सरसामिन्द्र० इत्यनेन मन्त्रेण। 'उष्णी..... यते' युवा सुवासा इत्यनेन मन्त्रेण। 'अल.....ष्टकौ' आबध्नाति। वृत्रस्येत्यनेन मन्त्रेणाङ्क्त अक्षिणी। रोचिष्णु-रसीत्यनेन मन्त्रेणात्मानमादर्शे प्रेक्षते। 'छत्रं प्रतिगृह्णाति' बृहस्पतेश्छदिरसि० इत्यनेन मन्त्रेण। 'प्रति.......ञ्चते' युगपत् शक्यत्वाद् द्विवचनान्तत्वाच्च मन्त्रस्य। 'विश्वाभ्यो मेति वैणवं दण्डमादत्ते'। 'दन्त..... मपि' मन्त्रवन्ति भवन्तीति सूत्रशेषः। 'वास..... न्मन्त्रः' वासआदिषु नवेष्वेव मन्त्रो भवति।।६।।

१. वेदं समाप्य = वेद को समाप्त कर अर्थात् विधिवत् पाठतः और अर्थतः वेदाध्ययन समाप्त कर, स्नायात् = वक्ष्यमाण विधि से स्नान करे अर्थात् समावर्तन संस्कार करे।

२. वा = अथवा, अष्टाचत्वारिंशकं ब्रह्मचर्यम् = ४८ वर्षीय ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके (भले ही वेदाध्ययन समाप्त न कर सका हो) स्नान—समावर्तन करे।

३. एके = कुछ आचार्यों का मत है कि—द्वादशकेऽपि = बारह वर्ष के व्रत—एक वेद का अध्ययन को समाप्त करके भी समावर्तन—स्नान करे।

४. गुरुणा = गुरु आचार्य की, अनुज्ञातः = अनुज्ञा—अनुमति प्राप्त कर उपर्युक्त किसी भी स्थिति में समावर्तन—स्नान करे।

५. वेदाध्ययन समाप्त—पूर्ण करने की बात कही गयी है। वेद का स्वरूप—परिभाषा क्या है? इस स्वाभाविक जिज्ञासा के समाधानार्थ वेद—परिभाषा प्रस्तुत है—

विधिः = 'अग्निहोत्रं जुहुयात्', 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि विधायक ब्राह्मण—वाक्य, विधिपद वाच्य हैं, विधेयः = विधिः विनियोज्यः मन्त्रः—

ब्राह्मणवाक्यों द्वारा कर्माङ्ग रूप में विनियुक्त 'इषे त्वोर्जे त्वा'—(यजु० १.१) इत्यादि मन्त्र—विधेय हैं, तर्कश्च = और तर्क—तर्क्यते ह्यनेन संदिग्धोऽर्थ इति तर्कः—जिससे संदिग्ध अर्थ का निर्धारण हो वह तर्क है। 'तर्कः कल्पसूत्रमिति भर्तृयज्ञः'—भर्तृयज्ञ के अनुसार तर्क पद वाच्य हैं—कल्पसूत्र। कल्पतरु के अनुसार तर्क का अभिप्राय है—मीमांसा। **वेदः–यह विधि—विधेय और तर्कात्मक भाग वेद पद वाच्य है।**

६. एके = कुछ आचार्यों का मत है कि–षडङ्गम् = छहों अङ्गों (१. शिक्षा, २. कल्प, ३. व्याकरण, ४. निरुक्त, ५. छन्द, ६. ज्योतिष) सहित वेदाध्ययन कर स्नान करना चाहिए।

७. न कल्पमात्रे = केवल कल्प का अध्ययन कर स्नान नहीं करे।

भाष्यकारों ने 'कल्प' पद से ग्रन्थ मात्र का ग्रहण किया है। तदनुसार वेद का अध्ययन पाठतः और अर्थतः करने के पश्चात् ही स्नान करे, मात्र पाठतः अध्ययन के पश्चात् नहीं। यदि 'कल्प' पद से कल्पसूत्र/साहित्य ग्रहण करें तब अर्थ होगा—मात्र कल्प साहित्य का ही अध्ययन नहीं, अपितु छहों अङ्गों का अध्ययन करके ही स्नान करे।

८. याज्ञिकस्य तु = अथवा यज्ञ विद्या का जिज्ञासु यज्ञ विद्या का अध्ययन कर (भले ही उसने वेद का अध्ययन पाठतः ही किया हो।), कामम् = अपनी इच्छा से स्नान कर सकता है।

९. स्नातक, गुरुम् = गुरु का, उपसंगृह्य = पादोपसंग्रहण—चरण स्पर्श कर, समिधोऽभ्याधाय = अग्नि में (पूर्व वर्णित २.४ विधिपूर्वक) समिदाधान कर, परिश्रितस्य = सर्वतः परिवेष्टित (वस्त्रादि द्वारा) समावर्तनस्थानस्थ अग्नि के, उत्तरतः = उत्तर की ओर स्थापित, अष्टानामुदकुम्भानाम् = जलपूर्ण आठ घड़ों कलशों के, पुरस्तात् = सामने, प्रागग्रेष कुशेषु = प्रागग्र कुशों पर, स्थित्वा = बैठकर।

१०. ये अप्स्वन्तर्....गृह्णामीति = ये अप्स्वन्तर्—मन्त्रपूर्वक, एकस्मात् = एक घट/कलश से, अपो गृहीत्वा = जल ग्रहण कर।

जल ग्रहण मन्त्र—

ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहातान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि॥

११. तेन माम्...... ब्रह्मवर्चसायेति = 'तेन माम्०' मन्त्रपूर्वक, तेनाभिषिञ्चते = उस घड़े के जल से स्नान करे।

स्नान मन्त्र—

तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय।

१२. येन श्रियम् ....यश इति = येन श्रियम्—मन्त्रपूर्वक दूसरे घड़े के जल से स्नान करे। सभी घड़ों से जल लेते समय पूर्वसूत्र १० में वर्णित—ये अप्स्वन्तर, मन्त्र ही पढ़ना चाहिए। स्नान मन्त्र पृथक्-पृथक् हैं।

द्वितीय घट जल स्नान मन्त्र—

येन श्रियमकृणुतां येनावमृशतां सुराम्।
येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चता यद्वां तदश्विना यशः॥

१३. आपो हिष्ठेति च प्रत्यृचम् = आपोहिष्ठा आदि प्रत्येक मन्त्रपूर्वक तीन अर्थात् तीसरे चौथे पांचवें घड़े के जल से स्नान करे।

तृतीय घटजल स्नान मन्त्र—

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥

चतुर्थघटजलस्नान मन्त्र—

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥

पञ्चमघटजलस्नान मन्त्र—

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथः।
आपो जनयथा च नः॥ यजु० ११.५०-५२

१४. इतरैः त्रिभिः = शेष तीन घड़ों के जल से, तूष्णीम् = मन्त्र रहित ही स्नान करना चाहिए।

१५. उदुत्तममिति = उदुत्तमम्—इस मन्त्रपूर्वक, मेखलाम् = मेखला को, उन्मुच्य = खोलकर, दण्डं = उपनयन के समय गृहीत दण्ड को, निधाय = त्यागकर, अन्यत् वासः = दूसरे नवीन (सकृद्धौत) वस्त्र, परिधाय = धारण कर, आदित्यमुपतिष्ठते = आदित्योपस्थान—(अग्रिम सूत्रवर्णित मन्त्रों से) सूर्य की स्तुति करे।

मेखला त्याग मन्त्र—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।

अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम॥ यजु० १२.१२

१६. उद्यन्भ्राजभृष्णुः.... गमयेति = इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सूर्योपस्थान—आदित्यस्तुति करे—

(१) उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय।

(२) उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय।

(३) उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्सायं यावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय।

कर्क, जयराम एवं गदाधर ने इसे एक ही मन्त्र स्वीकार किया है। हरिहर तथा विश्वनाथ ने तीन मन्त्र स्वीकार किये हैं।

१७. दधितिलान्वा = दधि अथवा तिल (ग्रीष्म ऋतु में दधि और शरद ऋतु में तिल), प्राश्य = खाकर, जटालोमनखानि = जटाएं, रोम तथा नाखून, संहृत्य = कटवाकर, अन्नाद्याय...भगेन चेति = अन्नाद्याय....... मन्त्रपूर्वक, औदुम्बरेण = गूलर की दन्तधावन द्वारा, दन्तान् = दाँतों को, धावेत = साफ करे।

दन्तधावन मन्त्र—

अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाऽयमागमत्।

स मे मुखं प्रमाक्ष्यते यशसा च भगेन च॥

१८. उत्साद्य = उद्वर्तन—उबटन द्वारा अंगों से मैल उतारकर, पुनः स्नात्वा= पुनः स्नान करके, प्राणापानौ.... तर्पयेति = प्राणापानौ..... मन्त्रपूर्वक, अनुलेपनं= सुगन्धित चन्दनादि, नासिकयोर्मुखस्य = नासिका और मुख के समीप, उपगृह्णीते= लगावे। मन्त्र—

प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय।

१९. पितरः शुन्धध्वमिति = पितरः शुन्धध्वम्...... मन्त्रपूर्वक, पाण्योरवनेजन = हाथों में लिए प्रक्षालन—जल को, दक्षिणा निषिच्य = दक्षिण दिशा में फैंककर,

अनुलिप्य = सुगन्धित चन्दनादि द्रव्य अंगों पर लगाकर, सुचक्षा अहम्..... भूयासमिति = सुचक्षा अहम्—इत्यादि मन्त्र का, जपेत् = जप करे।

पाण्यवनेजन मन्त्र—

पितरः शुन्धध्वम्।

जपमन्त्र—

सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन। सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम्॥

२०. अहतं वासः = नूतन एवं निश्छिद्र वस्त्र, धौतं वा = अथवा धुला हुआ वस्त्र हो तब वह, अमौत्रेण = रजक—धोबी द्वारा धुला हुआ न हो उसे, परिधास्यै ...... संव्ययिष्य इति = परिधास्यै० मन्त्रपूर्वक, आच्छादयीत = धारण करे।

वस्त्र धारण मन्त्र—

परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये॥

२१. अथ = वस्त्र धारण के अनन्तर, यशसा मा.... प्रतिपद्यतामिति = यशसा मा....मन्त्रपूर्वक, उत्तरीयम् = उत्तरीय वस्त्र धारण करे।

उत्तरीय धारण मन्त्र—

यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती।
यशो भगश्च माविन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम्॥

२२. एकं चेत् = यदि एक ही वस्त्र हो तो, पूर्वस्य = उसी वस्त्र के, उत्तरवर्गेण = आधे अंश से ऊपर के अंग, प्रच्छादयीत = ढक ले।

२३. या आहरत्.......भगेन चेति = या अहरत् .... मन्त्रपूर्वक् सुमनसः = पुष्प, प्रतिगृह्णाति = ग्रहण करे।

पुष्पग्रहण मन्त्र—

या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय। ताअहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च॥

२४. अथ = पुष्प ग्रहणानन्तर, यद्यशः.....यशोमयीति = यद्यशोऽप्सरसाम् — इत्यादि मन्त्रपूर्वक उन पुष्पों को, अवबध्नीते = शिर में लगा ले।

पुष्पधारण मन्त्र—

यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु।

तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशोमयि॥

२५. युवा सुवासा इति = युवा सुवासा—मन्त्रपूर्वक, उष्णीषेण = पगड़ी को, शिरो वेष्टयते = शिर पर लपेटे/बांधे।

उष्णीष वेष्टन मन्त्र—

युवा सुवासाः परिवीत आगात्, स उ श्रेयान् प्रतिजायमानः।

तान्धीरासः कवयो नयन्ति, स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥

२६. अलङ्करणमसि....भूयादिति =अलङ्करणम् असि मन्त्रपूर्वक, कर्णवेष्टकौ = कानों में कुण्डल धारण करे।

कुण्डलधारण मन्त्र—

अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात्।

२७. वृत्रस्येति = वृत्रस्य—इत्यादि मन्त्रपूर्वक, अक्षिणी = दोनों नेत्रों को, अङ्क्ते = अञ्जन से संस्कृत करे। मन्त्र—

वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि।

२८. रोचिष्णुरसीति = "रोचिष्णुरसि" मात्र इतने ही मन्त्रपूर्वक, आदर्शे = दर्पण में, आत्मानम् = अपने मुख को, प्रेक्षते = देखे।

२९. बृहस्पतेः.... धेहीति = बृहस्पते०—इत्यादि मन्त्रपूर्वक, छत्रं प्रतिगृह्णाति = छाता ग्रहण करे।

छत्रग्रहण मन्त्र—

बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो माऽन्तर्धेहि॥

३०. प्रतिष्ठे ..... पातमिति = प्रतिष्ठे.... इत्यादि मन्त्रपूर्वक, उपानहौ = जूता, प्रतिमुञ्चते = धारण करे। मन्त्र—

प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्।

३१. विश्वाभ्यः...... सर्वत इति = विश्वाभ्यः—इत्यादि मन्त्रपूर्वक, वैणवं = बांस की, दण्डम् = छड़ी, लाठी, आदत्ते = ग्रहण करे।

दण्डधारण मन्त्र—

विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः।

३२. दन्तप्रक्षालनादीनि नित्यमपि = स्नातक दन्तप्रक्षालन आदि कर्म नित्य ही मन्त्रपूर्वक करे, वासश्छत्रोपानहश्चापूर्वाणि चेत् = यदि वस्त्र, छत्र और जूता नये हों अर्थात् इनके प्रथम प्रयोग समय ही, मन्त्रः = मन्त्र पढ़ें।

टिप्पणी–१. ब्रह्मचारी के लिए छत्र, जूता आदि सभी संस्कारक सामग्री वर्जित है। विद्याध्ययन समाप्ति के पश्चात् स्नातक बनने के बाद वह गृहस्थ में प्रवेश करता है। अतः समावर्तन के समय प्रतीक रूप में सभी संस्कारक सामग्री का प्रथम प्रयोग संपन्न कराया जाता है। तद्यथा—द्विवस्त्रोऽत ऊर्ध्वम्।

तस्माच्छोभनं वासो भर्तव्यमिति श्रुतिः।। काठक गृ० ३.९–१०

२. सूत्र-५-**तर्क**—यहाँ 'तर्क' पद तर्क शास्त्र का बोधक नहीं है, अपितु तर्क का अभिप्राय है—अर्थवाद। यथा—अक्ताः शर्करा उपदधाति—यहाँ अञ्जन तेल, वसा आदि द्वारा भी संभव है, किन्तु 'तेजो वै घृतम्' आदि ब्राह्मण वाक्यों द्वारा घृतसंस्तवन से तर्कना द्वारा अक्ता का अभिप्राय होता है—घृताक्ता। यह शक्ति ही तर्क है। यतः कल्पसूत्र एवं मीमांसा में एतद्विषयक चिंतन किया गया है। अतः दोनों ही तर्क पद ग्राह्य हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती वेद पद से ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इस संहिता चतुष्टय का ही ग्रहण करते हैं। शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ ऋषि प्रणीत होने से परतः प्रमाण हैं। अर्थवाद भी ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य है। दूसरे शाखा ग्रन्थ वेद नहीं हैं। इस पर पृथक्शः प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाएगा।

३. सूत्र १५. मेखलामुन्मुच्य—में 'उत्' उपसर्ग के प्रयोग से ज्ञापित होता है कि स्नातक मेखला शिर के ऊपर की ओर करके उतारे।

इति द्वितीयकाण्डे षष्ठी कण्डिका

सप्तमी कण्डिका

स्नातकयमाः

स्नातस्य यमान्वक्ष्यामः॥१॥ कामादितरः॥२॥ नृत्यगीतवादित्राणि न कुर्यान्न च गच्छेत्॥३॥ कामं तु गीतं गायति वैव गीते वा रमत इति श्रुतेर्ह्यपरम्॥४॥ क्षेमे नक्तं ग्रामान्तरं न गच्छेन्न च धावेत्॥५॥ उदपानावेक्षण-वृक्षारोहणफलप्रपतनसंधिसर्पणविवृतस्नानविषमलङ्घनशुक्तवदनसंध्यादित्यप्रेक्ष णभैक्षणानि न कुर्यात् न ह वै स्नात्वा भिक्षेतापह वै स्नात्वा भिक्षां जयतीति श्रुतेः॥६॥ वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत् अयं मे वज्रः पाप्मानमपहनदिति॥७॥ अप्स्वा-त्मानं नावेक्षेत॥८॥ अजातलोम्नीं विपुंसी षण्ढं च नोपहसेत्॥९॥ गर्भिणीं विजन्येति ब्रूयात्॥१०॥ सकुलमिति नकुलम्॥११॥ भगालमिति कपालम्॥१२॥ मणिधनुरितीन्द्रधनुः॥१३॥ गां धयन्तीं परस्मै नाचक्षीत॥१४॥ उर्वरायामनन्त-र्हितायां भूमावुत्सर्पं ँ् स्तिष्ठन्न मूत्रपुरीषे कुर्यात्॥१५॥ स्वयं प्रशीर्णेन काष्ठेन गुदं प्रमृजीत॥१६॥ विकृतं वासो नाच्छादयीत॥१७॥ दृढव्रतो वधत्रः स्यात् सर्वत आत्मानं गोपायेत् सर्वेषां मित्रमिव (शुक्रियमध्येष्माणः)॥१८॥ ॥७॥

(कर्कः)—'स्नात.....क्ष्यामः' प्रतिज्ञासूत्रम्। 'कामादितरः' इतरः शूद्रोऽभि-धीयते स हि स्नातको न भवति। एवं च सति इच्छया शूद्रस्यापि यमेषु अधिकारो भवति। 'नृत्य......गच्छेत्' नृत्यादीनि क्रियमाणानि प्रति। 'कामं तु गीतं' कुर्यात् गच्छेच्च। कर्मण्यौपयिकत्वाद्गीतस्य। दृश्यते हि क्वचित्कर्मविशेषे गानम्। ब्राह्मणोऽन्यो गायति। राजन्योऽन्य इति न चाक्रियमाणं शक्यते गातुमिति। 'गाय.....परं' वचनमस्ति। अपरग्रहणाच्च पूर्वे न्यायप्राप्तमभिहितम्। 'क्षेमे.....च्छेत्' अक्षेमे तु नक्तमपि गच्छेत्। 'नच धावेत्' क्षेम एवेति वर्तते। 'उद....र्यात्' उदपानशब्देन कूपोऽभिधीयते। संधिशब्देन कुद्वारम्। विवृतस्नानशब्देन नग्नस्नानमुच्यते। विषमलङ्घनं प्रसिद्धमेव। शुक्तवदनमश्लीलवदनम्। संध्यादित्यप्रेक्षणं प्रसिद्धमेव। एतानि न कुर्यात्। भैक्षण-प्रतिषेधस्य वाक्यमुदाह्रियते। 'न ह........ श्रुतेः' अत्र यो दृष्टार्थविषयः प्रतिषेधस्तत्र दृष्टार्थत्वादेवाकरणे प्राप्ते प्रतिषेधविधानसामर्थ्याददृष्टार्थत्वमनुमीयते। 'वर्ष..... हसेत्'। अजातानि लोमानि यस्याः सेयमजातलोम्नी तां विपुंसी या पुमांसं विकरोति कूर्चादिना। षण्ढः प्रसिद्ध एव। एतानि नोपहसेत्। उपहासशब्देनाभिगम उच्यते। न गच्छेदेतानि

प्रति। 'गर्भि..... यात्' न गर्भिणीमिति। 'सकु..... क्षीत' धयन्तीमित्युक्ते धीयमानां नाचक्षीत। तस्या हि प्रतिषेधः स्मृत्यन्तरेऽपि। 'उर्व......... यात्' उर्वरा सस्यवती भूमिः तस्यां मूत्रपुरीषे न कुर्यात् अनन्तर्हितायां च तृणादिना मूत्रपुरीषे न कुर्यात्। उत्सर्पंस्तिँष्ठश्च न कुर्यादिति वर्तते। 'स्वयं..... यीत' विकृतं नील्यादिना न कषाय-प्रतिषेधः। कषायरक्तं तु प्रशस्यत एवेति। 'दृढ..... स्यात्' यद्व्रतमङ्गीकृतं मयैतत्कर्त-व्यमिति तत्र दृढव्रतः स्यान्न चञ्चल 'सर्वेषां मित्रमिव' संव्यवहरेत्। मैत्रो हि ब्राह्मण उच्यते।।७।।

१. स्नातस्य = स्नातक द्वारा पालनीय, यमान् = यमों का, वक्ष्यामः = कथन करते हैं।

२. कामात् = यदि इच्छा हो तो, इतरः = स्नातक से इतर व्यक्ति भी इन यमों का पालन कर सकता है।

कर्क आदि भाष्यकारों ने 'इतरः' पद से शूद्र स्नातक का ग्रहण किया है।

३. नृत्यगीतवादित्राणि = नृत्य, गीत और गान यन्त्रों का बजाना, न कुर्यात् = न करे, न च = और न ही जहाँ नृत्यादि हों वहाँ, गच्छेत् = जावे।

४. कामं तु = यदि इच्छा हो तो, गीतम् = गीत-गान गा भी सकता है, क्योंकि ''गायति वैव गीते वा रमते'' इतिश्रुतेः = गायति वैव गीते वा रमते' यह श्रुतिवचन है, ह्यपरम् = यदि कोई अन्य गा रहा हो तो उसमें भी सम्मिलित हो सकता है।

अश्वमेध प्रसङ्ग में—ब्राह्मणोऽन्यो गायति राजन्योऽन्यः' इत्यादि वाक्यों में बाह्मण व क्षत्रिय द्वारा गान का आदेश है। साथ ही साम गान के भी अनेक भेद हैं, इसके अभ्यासार्थ भी गान तो होगा ही। पुनः स्नातक के गान निषेध का तात्पर्य स्यात् शृंगार मूलक गान का निषेध करना है।

५. क्षेमे = क्षेम—कल्याण—शान्ति की स्थिति में, नक्तं = रात्रि के समय, ग्रामान्तरं = दूसरे ग्रम्र को, न गच्छेत् = न जावे, न च = और न ही, धावेत् = दौड़े। विषम (अक्षेम) स्थिति में रात्रि में भी ग्रामान्तर गमन और और धावन का निषेध नहीं है।

६. उदपानावेक्षण = मुण्डेर पर स्थित हो नीचे झुककर कुए में झांकना, वृक्षारोहण = पेड़ पर चढ़ना, फलप्रपतन = (कच्चे) फल तोड़ना,

संधिसर्पण = संधिवेला में गमन, विवृतस्नान = विवस्त्र-नग्नस्नान, विषमलङ्घन = विषम-उबड़-खाबड़ भूमि का लांघना, शुक्तवदन = अश्लील भाषण, सन्ध्यादित्यप्रेक्षण = प्रातः सायं उदय एवं अस्त होते सूर्य का दर्शन, भैक्षणानि = भिक्षा मांगना, न कुर्यात् = स्नातक होकर उक्त कार्य न करे। क्योंकि श्रुति का कथन है—न ह वै स्नात्वा भिक्षेत = स्नान—समावर्तन के पश्चात् भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए, ह वै स्नात भिक्षाम् अप जयति = क्योंकि स्नातक निश्चय ही समावर्तन संस्कार के समय भिक्षा वृत्ति को दूर कर देता है।

७. वर्षति = वर्षा होने पर, अप्रावृत्तः = बिना छाता लगाए हुए निम्न मन्त्र पढ़ते हुए, व्रजेत = चले। मन्त्र—

अयं मे वज्रः पाप्मानमपहनत्।

जयराम द्वारा उद्धृत—'अयं चातपवृष्टि विषय इत्येके'—वचनानुसार कुछ आचार्य ग्रीष्म ऋतु की वर्षा के समय ही छाता न लगाने की बात मानते हैं। वस्तुतः पूर्व कण्डिका के सूत्र २९ में 'छत्रं प्रतिगृह्णाति' द्वारा छत्र ग्रहण का विधान है। छत्र की उपयोगिता धूप और वर्षा के ही समय है। यदि वर्षा में न लगाएं, तब ग्रहण की सार्थकता ही क्या है? अतः 'वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत्'—यह नियम ग्रीष्म ऋतु में होने वाली वर्षा विषयक स्वीकार करना ही उचित है।

यदि 'वर्षत्यप्रावृतः' के स्थान पर 'वर्षत्याप्रावृतः'—ऐसा पाठान्तर मान लें तब पूर्व आदिष्ट छत्र ग्रहण की सार्थकता होती है, यतः-वर्षति = वर्षा होने पर, आप्रावृतः = अच्छी प्रकार प्रावृत होकर—छत्र लगाकर, व्रजेत = चले।

८. अप्सु = जल में, आत्मानं = अपना प्रतिबिम्ब, नावेक्षेत = न देखे।

९. अजातलोम्नीं = केशहीन (जिसके शरीर में रोएं न उगे हों), विपुंसी = श्मश्रु आदि पुरुष चिह्नों से युक्ता स्त्री, षण्ढं च = और नपुंसक को देखकर, न उपहसेत् = उनका उपहास न करे।

१०. गर्भिणीं = गर्भिणी स्त्री को, विजन्या इति ब्रूयात् = 'विजन्या' कहे।

११. नकुलम् = नकुल-नेवले को, सकुलम् इति = सकुल कहे।

१२. कपालम् = कपाल (कर्पर) को, भगालम् इति = भगाल कहे।

१३. इन्द्रधनुः = इन्द्रधनुष को, मणिधनुः इति = मणिधनु कहे।

१४. धयन्तीं गाम् = यदि गो अपने बछड़े को दूध पिला रही हो तो, परस्यै = उस 'गो' के स्वामी को, नाचक्षीत = न बतलावे।

१५. उर्वरायाम् = उर्वरा-उपजाऊ, अनन्तर्हितायां = तृणादि (फसल) से न ढकी हुई अर्थात् खाली, भूमौ = भूमि पर, उत्सर्पन् तिष्ठन् = खड़े होकर, मूत्र पुरीषे न कुर्यात् = मल-मूत्र विसर्जन न करे।

यद्यपि सूत्र में 'तिष्ठन्'—खड़े होकर से पूर्व 'उत्सर्पन्'—चलते हुए पद प्रयुक्त है, किन्तु यहाँ तिष्ठन् पद उत्सर्पन् का ही विवरण मानकर एक ही अर्थ 'खड़े होकर' किया गया है।

१६. स्वयं प्रशीर्णेन = स्वयं टूटकर गिरे हुए, काष्ठेन = काष्ठ-खण्ड लकड़ी के टुकड़े से, गुदं प्रमृजीत = मल द्वार को पोंछे।

१७. विकृतं =फटे हुए अथवा नील—मञ्जिष्ठादि से विकृत—(भदरंग), वासः = वस्त्र, नाच्छादयीत = धारण न करे।

१८. दृढ़व्रतः = दृढ़संकल्प युक्त, वधत्रः = वधात् घातादात्मानं परं वा त्रायते स वधत्रः = अपना तथा दूसरे का रक्षक, स्यात् = होवे, सर्वतः = सभी संभव एवं उचित उपायों से, आत्मानं = अपनी, गोपायेत् = रक्षा करे तथा सर्वेषां = सभी के प्रति, मित्रमिव = मित्र के तुल्य आचरण करे।

टिप्पणी–१. गोभिल गृ० ३.५.१–३८ में विस्तारपूर्वक स्नातकव्रत वर्णित हैं। वहाँ 'न समानर्ष्या'—६ कहकर समान ऋषि-प्रवर—गोत्र युक्ता के साथ भी उपहास का निषेध है। स्वर्णमाला के अतिरिक्त गन्धरहित माला भी निषिद्ध है १५-१६

२. पारस्कर के 'सर्वेषां मित्रमिव' १८ के सदृश गोभिल सूत्र है—'भद्रमिति ब्रूयात्'—२० भद्रविषयक निम्नवचन द्रष्टव्य है—

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह॥ मनु० ४.१३९

इति द्वितीयकाण्डे सप्तमी कण्डिका ✪

अष्टमी कण्डिका

तिस्रो रात्रिर्व्रतं चरेत्॥१॥ अमा ँ् साश्यमृण्मयपायी॥२॥ स्त्रीशूद्रशव-कृष्णशकुनिशुनां चादर्शनमसंभाषा च तैः॥३॥ शवशूद्रसूतकान्नानि च नाद्यात्॥४॥ मूत्रपुरीषे ष्ठीवनं चातपे न कुर्यात्सूर्याच्चात्मानं नान्तर्दधीत॥५॥ तप्तेनोदकार्थान्कुर्वीत ॥६॥ अवज्योत्य रात्रौ भोजनम्॥७॥ सत्यवदनमेव वा॥८॥ दीक्षितोऽप्यातपादीनि कुर्यात्प्रवर्ग्यवाँश्चेत्॥९॥८॥

(कर्कः)—'तिस्रो.....रेत्' स्नातस्यातो रात्रित्रयं व्रतचर्योच्यते। 'अमा..... पायी' भवतीति शेषः। 'स्त्रीशू...... नम्' कृष्णशकुनिः काकः। एषामदर्शनम् 'असं..... तैः' तैः स्त्र्यादिभिर्यस्य येन यादृक् संभाषणम् तादृक् प्रतिषिध्यते। 'शव.......द्यात्' शवान्नं क्रीत्वा लब्ध्वा वा यदद्यते तत्प्रतिषेधः। शूद्रान्नं भोज्यान्नस्यापि नापितादेः प्रतिषिध्यते। सूतकान्नम् अर्वाक् दशाहात्प्रसवे सति। 'मूत्र.... र्यात्' मूत्रादेरातपे करणप्रतिषेधः। 'सूर्या....धीत' छत्रादिना। 'तप्ते....र्वीत' उदकेन। 'अव.... जनम्' कर्त्तव्यं प्रदीपोल्का-दिनाऽन्यतरेण। 'सत्य....वा' कर्त्तव्यम्। नाधस्तना नियमाः। 'दीक्षितस्ततोऽत्र मूत्रपुरीषे' ष्ठीवनं चातपे न कुर्यादित्येवमादीनि करोति॥८॥

१. समावर्तन संस्कार के दिन से, तिस्रः = तीन, रात्रीः = रात्री—अहर्निश, व्रतं = वक्ष्यमाण व्रत का, चरेत् = आचरण करे।

२. अमांसाशी = मांस भक्षण न करे तथा, अमृण्मयपायी = मृण्मय—मिट्टी से बने पात्र में जलादि न पिये।

३. स्त्री = स्त्री, शूद्र = शूद्र, शव = शव, कृष्णशकुनि = काक (कौआ), शुनां च = और कुत्ता—इन पांच को, अदर्शनं = न तो देखे, असंभाषा च तैः = और न ही इनके साथ संभाषण करे।

४. शवशूद्रसूतकान्नानि च = शवान्न—मरणानन्तर खरीदकर अथवा प्राप्त कर जो अन्न सम्बन्धियों द्वारा भक्षण किया जाये, शूद्रान्न = अवरवर्ण का भोज्य अन्न भी तथा सूतकान्न = प्रसव शुद्धि से पूर्व सूतिका युक्त गृह का अन्न, न अद्यात् = भक्षण न करे।

५. आतपे = धूप में, मूत्रपुरीषे = मल-मूत्र विसर्जन, ष्ठीवनं च = और थूकना, न कुर्यात् = न करे, सूर्यात् च = और सूर्य से अर्थात् सूर्य के प्रकाश से

आत्मानं = अपने आप को, न अन्तर्दधीत = छाता आदि प्रयुक्त कर अन्तर्हित न करे।

६. उदकार्थान् = जल साध्य शौच—आचमनादि क्रियाएं, तप्तेन = उष्ण जल द्वारा, कुर्वीत = सम्पन्न करे।

७. रात्रौ = रात्रि में, अवज्योत्य = दीपक—उल्का आदि द्वारा प्रकाश करके, भोजनम् = भोजन करे।

८. वा = अथवा, सत्यवदनमेव = सत्यभाषण ही करे।

९. प्रवर्ग्यवान् चेत् = यदि प्रवर्ग्यवान् हो तो, दीक्षितोऽपि = दीक्षित होने पर भी, आतपादीनि कुर्यात् = सूत्र ५ से ७ तक कहे आतप आदि नियमों का, कुर्यात् = पालन करे।

टिप्पणी–१. सूत्र-४-शवान्न—मृत्यु के अनन्तर अनेक स्थानों पर अन्त्येष्टि क्रिया के पश्चात्, वहीं भोजन आदि करना (जैसे—पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गंगा के किनारे ब्रजघाट आदि स्थानों पर अन्त्येष्टि करके—कार्यकर्त्ता व साथ जाने वाले व्यक्ति वहीं मृतक के आश्रितों द्वारा ले जायी गई अथवा क्रय की गई सामग्री से तैयार भोजन करते हैं। तथा त्रयोदशाह—तेरहवीं आदि के नाम पर होने वाले मृतक भोज (ब्रह्मभोज नाम से प्रसिद्ध) भी शवान्न है। यहाँ सूत्रकार ने इस प्रकार के अन्न के भक्षण का स्पष्ट निषेध किया है।

२. सूत्र-८-सत्यवदनमेव वा—भाष्यकारों ने यहाँ प्रयुक्त 'वा' से विकल्प रूप में सत्यभाषण अथवा सूत्र ९ में कहे नियम में से कोई एक करे—माना है। वस्तुतः यहाँ 'वा' को विकल्पार्थक न मानकर समुच्चयार्थक स्वीकार करना चाहिए। सत्यभाषण तो अवश्य हो तब सत्यभाषण ही चुनना चाहिए—ऐसा 'एव' शब्द के प्रयोग से ध्वनित है।

३. सूत्र-९-सोमयाग में दीक्षित व्यक्ति यदि प्रवर्ग्य—महावीर (यज्ञपात्र) युक्त हो तो वह सत्यभाषण और पूर्व ५—७ में कहे नियम साथ-साथ पालन करे।

४. हरिहर का मत है कि सूत्रकार ने जितने व्रत कहे हैं मात्र इतने ही अनुष्ठेय नहीं हैं, अपितु इनके साथ मन्वादि स्मृति प्रतिपादित व्रत भी अनुष्ठेय हैं। तद्यथा—'अत्र सूत्रकारेण यावन्ति स्नातकव्रतान्युक्तानि न तावन्त्येवानुतिष्ठेत् अपितु मन्वादिस्मृतिप्रणीतान्यपि इति सूत्रार्थः।'

इति द्वितीयकाण्डे अष्टमी कण्डिका ✪

नवमी कण्डिका

पञ्चमहायज्ञाः

अथातः पञ्च महायज्ञाः॥१॥ वैश्वदेवादन्नात्पर्युक्ष्य स्वाहाकौरर्जुहुयाद्-ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतय इति॥२॥ भूतगृह्येभ्यो मणिके त्रीन् पर्जन्यायाद्भ्यः पृथिव्यै॥३॥ धात्रे विधात्रे च द्वार्ययोः॥४॥ प्रतिदिशं वायवे दिशां च॥५॥ मध्ये त्रीन्ब्रह्मणेऽन्तरिक्षाय सूर्याय॥६॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वेभ्यश्च भूतेभ्यस्तेषामुत्तरतः॥७॥ उषसे भूतानां च पतये परम्॥८॥ पितृभ्यः स्वधा नम इति दक्षिणतः॥९॥ पात्रं निर्णिज्योत्तरापरस्यां दिशि निनयेद्यक्ष्मैतत्त इति॥१०॥ उद्धृत्याग्रं ब्राह्मणायावनेज्य दद्याद्धन्तत इति॥११॥ यथाऽर्हं भिक्षुकानतिथींश्च संभजेरन्॥१२॥ बालज्येष्ठा गृह्या यथार्हमश्नीयुः॥१३॥ पश्चाद्गृहपतिः पत्नी च॥१४॥ पूर्वो वा गृहपतिः। तस्मादु स्वा (दि?द्वि) ष्टं गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुतेः॥१५॥ अहरहः स्वाहा कुर्यादन्नाभावे केनचिदाकाष्ठाद्देवेभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यश्चोदपात्रात्॥१६ ॥९॥

(कर्कः)—'अथातः........यज्ञाः' व्याख्यास्यन्त इति सूत्रशेषः। महायज्ञा इति च कर्मनाधेयम्। तत्रैको देवयज्ञो ब्रह्मणे स्वाहेत्येवमादयो होमाः। मणिके त्रीनित्येवमादिर्भूतयज्ञः। पितृभ्यः स्वधा नम इति पितृयज्ञः हन्तकारोऽतिथिपूजादिनृयज्ञः। पञ्चग्रहणाच्च पञ्चमो ब्रह्मयज्ञः॥ 'वैश्वदे.......यात्' **विश्वे देवा देवता अस्येति वैश्वदेवमन्नं ते च देवपितृमनुष्यादयः। कथमेषां देवतात्वमिति चेत्। येन स्मृतावेषां दानं विहितम्।** एभ्यो दत्त्वा शेषभुजा गृहपतिना भवितव्यम्। तस्माद्वैश्वदेवमन्नं यदहरहः पच्यते तत आदाय पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयात्। पर्युक्ष्यग्रहणाच्च कुशकण्डिकोक्तेतिकर्त्तव्यताव्युदासः। स्वाहाकारैर्जुहुयादिति जुहोति तत्स्वाहाकारैः। शेषे नमस्काराः। आचरन्ति हि बलिकर्माणि नमस्कारान्। यद्वा स्वाहाकारैर्जुहुयादिति संस्रवव्युदासार्थम्॥ 'ब्रह्म......तय इति' एते पञ्च होमाः। 'भूतगृह्येभ्यः' भूतानि च तानि गृह्याणि च भूतगृह्याणि तेभ्यो ददाति। तान्याह 'मणि.......पृथिव्यै' ददातीति शेषः। 'धात्रे....र्ययोः' ददाति। 'प्रतिः.....यवे' ददाति। 'दिशां च' यत्संबन्धि दानं तत्प्रतिदिशं ततश्चैतत्सिद्धं भवति। प्राच्यै दिशे नम इत्येवमादि। 'मध्ये......र्याय' मध्ये च प्रति दिशं यद्दत्तं तन्मध्ये। 'विश्वे.....रतः' आनन्तर्यात् त्रयाणाम्।

'उष......परम्' परमिति तयोरप्युत्तरतः। 'पितृ......णतः' तेषामेव त्रयाणां पित्र्यत्वाच्चात्र दक्षिणामुखः प्राचीनावीति भवति। नमस्कारश्चात्र प्रदर्शित आचार्येण स सर्वबलिहरणेषु प्रत्येतव्यः समाचारादित्युक्तमेव। 'पात्रं.......त्त इति' अनेन मन्त्रेण निर्णेजनमित्यध्याहारः। उत्तरापरा च दिक् त्रयाणामेव।' उद्धृ.....त इति' तत एव वैश्वदेवादन्नादुद्धृत्यान्नं ब्राह्मणायावनेज्य दद्याद्धन्त त इत्यनेन मन्त्रेण। हन्तकाराच्च पूर्वं ब्रह्मयज्ञस्यावसरः। नृयज्ञो हि हन्तकारादिरास्वापात्। रात्रावपि ह्यतिथिपूजा स्मर्यते। अतिथिं प्रकृत्य नास्यानश्नन् गृहे वसेदिति। तस्माद् ब्रह्मयज्ञोऽनिर्दिष्टकालोऽपि नृयज्ञात्पूर्व एव। 'यथा........रन्' यथार्हमिति उपकुर्वाणब्रह्मचारिणोऽक्षारालवणं च। इतरेषां भिक्षुकाणां यद्यस्योचितमिति। 'बाल......म श्नीयुः' यद्यस्यार्हमिति 'पश्चा..... पत्नी च' अश्नीतः। 'पूर्वो.......पति' पत्न्या अश्नाति। एवं हि श्रूयते—'तस्मा..... दिति' तस्मात्स्वाद्वन्नाद्यदिष्टतमं तद् गृहपतिरश्नाति। अतिथिभ्योऽशितेभ्यः पूर्वं पत्न्या इति। 'अह.....वेभ्यः' **देवयज्ञोऽयमाकाष्ठादप्यहरहः कार्यः।** 'पितृ....त्रात्' पितृयज्ञो मनुष्ययज्ञश्च उदपात्रादप्यहरहः कर्त्तव्यः। एवं पञ्चमहायज्ञक्रिया अहरहरेवेति गम्यते।। इति नवमी कण्डिका।।९।।

१. अथ = समावर्तन संस्कार के अनन्तर विवाहित-गृहस्थ पञ्च महायज्ञ करने का अधिकारी हो जाता है, अतः = इसीलिए, पञ्चमहायज्ञाः = पञ्चमहायज्ञों का विधान किया जा रहा है।

पञ्चमहायज्ञ—१. देवयज्ञ, २. भूतयज्ञ = बलिवैश्वदेव यज्ञ, ३. पितृयज्ञ, ४. मनुष्य यज्ञ = अतिथि यज्ञ, ५. ब्रह्मयज्ञ = संध्या और स्वाध्याय।

देवयज्ञ

२. वैश्वदेवात् = वैश्वदेव (विश्वे देवा देवता अस्येति वैश्वदेवम्—अन्नम् —जिसे सभी देव—पितृ—मनुष्य आदि को देकर स्वयं उपभोग किया जाये वह शालाग्नि में पककर तैयार होने वाला भोज्यान्न—वैश्वदेव अन्न है।), अन्नात् = अन्न से अन्न गृहीत कर, पर्युक्ष्य = अग्नि का पर्युक्षण कर (अग्नि के चारों ओर जल के छींटे देकर), ब्रह्मणे.... अनुमतय इति = ब्रह्मा आदि के चतुर्थ्यन्त नामों से, स्वाहाकारैः = 'स्वाहा' शब्द लगाकर, जुहुयात् = पूर्व गृहीत वैश्वदेव अन्न से पाँच आहुतियाँ दें। आहुति मन्त्र—

(१) ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे इदन्न मम

(२) प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये इदन्न मम

(३) गृह्याभ्यः स्वाहा, इदं गृह्याभ्य इदन्न मम

(४) कश्यपाय स्वाहा, इदं कश्यपाय इदन्न मम

(५) अनुमतये स्वाहा, इदम् अनुमतये इदन्न मम

भूतयज्ञः

३. भूतगृह्येभ्यः = गृह स्थित भूतों के लिए—(भूतानि च तानि गृह्याणि च भूत गृह्याणि तेभ्यः), मणिके = मणिक—जलपूर्ण कलश या घट (जो पूर्व या उत्तर की ओर स्थापित हो) के समीप, त्रीन् = तीन आहुतियाँ (पूर्वगृहीत किये गये वैश्व देव अन्न की ही विश्वनाथ के मतानुसार इस अन्न में अर्धाहुति प्रमाण जल मिलाकर), पर्जन्याय.......पृथिव्यै = पर्जन्याय आदि मन्त्रपूर्वक रखे।आहुति मन्त्र—

(१) पर्जन्याय नमः, इदं पर्जन्याय इदन्न मम

(२) अद्भ्यो नमः, इदं अद्भ्य इदन्न मम

(३) पृथिव्यै नमः, इदं पृथिव्यै इदन्न मम

४. द्वार्ययोः = द्वार के दक्षिण एवं उत्तर के किनारे उसी वैश्वदेव अन्न की क्रमशः, धात्रे विधात्रे च = धात्रे और विधात्रे पूर्वक दो बलि रखे। मन्त्र—

दक्षिण की ओर—**धात्रे नमः, इदं धात्रे**

उत्तर की ओर—**विधात्रे नमः, इदं विधात्रे**

गदाधर ने यह दोनों बलियां द्वार के मध्य देना स्वीकार किया है।

५. प्रतिदिशं = प्रत्येक-प्राची आदि दिशा में, वायवे दिशां च = वायु और दिशा का चतुर्थ्यन्त पूर्वक नाम लेकर (उसी वैश्वदेव अन्न की) बलि रखे। तद्यथा—

(१) पूर्व दिशा में-**(क) वायवे नमः, इदं वायवे इदन्न मम; (ख) प्राच्यै दिशे नमः इदं प्राच्यै दिशे इदन्न मम।**

(२) दक्षिण-**(क) वायवे नमः, इदं.....; (ख) दक्षिणायै दिशे नमः, इदं दक्षिणायै....।**

(३) पश्चिम-**(क) वायवे नमः, इदं ......; (ख) प्रतीच्यै दिशे नमः, इदं प्रतीच्यै......।**

(४) उत्तर-(क) **वायवे नमः, इदं ....; (ख) उदीच्यै दिशे नमः, इदम् उदीच्यै.......।**

६. मध्ये त्रीन् = पूर्व में दी गई वायु एवं दिग्बलियों के मध्य में तीन, ब्रह्मणे.......सूर्याय = ब्रह्मा आदि के लिए तीन बलियां रखे। मन्त्र—

(१) ब्रह्मणे नमः, इदं ब्रह्मणे इदन्न मम

(२) अन्तरिक्षाय नमः, इदम् अन्तरिक्षाय इदन्न मम

(३) सूर्याय नमः, इदं सूर्याय इदन्न मम

७. तेषामुत्तरतः = उन ब्रह्मा आदि को सम्बन्धित कर मध्य भाग में दी गई आहुतियों के उत्तर में, विश्वेभ्यः.......भूतेभ्यः = विश्वेभ्यः आदि कहकर दो बलि रखे।

(१) विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्य इदन्न मम

(२) विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्य इदन्न मम

८. पूर्वोक्त 'विश्वेभ्यः' आदि दो बलियों के, परम् = उत्तर में, उषसे = उषा के लिए, च = और, भूतानां पतये = भूत-पति के लिए दो बलि रखे। मन्त्र—

(१) उषसे नमः, इदमुषसे इदन्न मम

(२) भूतानां पतये नमः, इदं भूतानां पतये इदन्न मम

इस प्रकार सूत्र ३ में वर्णित पर्जन्य बलि से प्रारम्भ करके सूत्र ८ द्वारा प्रतिपादित भूतानां पतये पर्यन्त २० बलि प्रमाणात्मक भूतयज्ञ वर्णित है।

पितृयज्ञः

९. भूतयज्ञ के अनन्तर गृहस्थ ब्रह्मा आदि को समर्पित बलि के, दक्षिणतः = दक्षिण की ओर, पितृभ्यः स्वधा नम इति = पितृभ्यः स्वधा नमः—ऐसा कहकर पात्रावशिष्ट अन्न की एक बलि दे।

१०. पात्रं निर्णिज्य = उद्धरण पात्र (जिसमें यज्ञार्थ—वैश्वदेव अन्न समुपाहृत किया था।) को प्रक्षालित कर उस जल को, उत्तरापरस्यां दिशि = उत्तर पश्चिम की दिशा—वायव्य कोण की ओर, यक्ष्मैतत्त इति = यक्ष्मैतत् मन्त्रपूर्वक निनयेत् = फैंक दे। निर्णेजन मन्त्र—

यक्ष्मैतत् ते निर्णेजनं नमः, इदं यक्ष्मणे इदन्न मम।

मनुष्ययज्ञः

११. उद्धृत्याग्रं = वैश्वदेव अन्न से १६ ग्रास या ४ ग्रास अन्न उठाकर—निकालकर, अवनेज्य = जल से छींटे देकर, हन्त त इति = हन्त तेऽन्नमिदं मनुष्याय—ऐसा संकल्प कर, ब्राह्मणाय दद्यात् = ब्राह्मण को दे दे।

मनुष्य यज्ञ की यह क्रिया मात्र प्रतीकात्मक है। यदि अतिथि को भरपेट भोजन कराने का सामार्थ्य न हो तब सोलह ग्रास भर और यदि यह भी संभव न हो तब चार ग्रास मात्र ही प्रतीक रूप में देवे।

१२. भिक्षुकान् अतिथीन् च = भिक्षुकों और अतिथियों को, यथाऽर्हं = यथायोग्य भिक्षा एवं भोजनादि से, संभजरेन् = तृप्त करे।

१३. बालज्येष्ठा गृह्या = जिन गृहों में बालक हों वहाँ प्रथम बालकों को भोजन करा कर अवशिष्ट गृहजन, यथाऽर्हम् अश्नीयुः = जिसके योग्य—रुचिकर जो पदार्थ हो वह खायें।

१४. पश्चात् = समस्त गृहजनों के भोजन कर लेने पर, गृहपतिः पत्नी च = गृहपति—स्वामी और उसकी पत्नी—गृहस्वामिनी भोजन करे।

१५. वा = अथवा, गृहपतिः पूर्वः = गृहपति अपनी पत्नी से पूर्व भोजन करे तदनन्तर पत्नी भोजन करे। कहा भी है—तस्मादु.... इति श्रुतेः = जो स्वादिष्ट अन्न (भोजन) तैयार हुआ हो, अतिथियों के भोजनानन्तर गृहपति पत्नी से पूर्व उसका अशन—भक्षण करे।

१६. अहरहः स्वाहा कुर्यात् = गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन स्वाहा (अर्थात् देवयज्ञ) करे, अन्नाभावे = यदि अन्न—वैश्वदेव की उपलब्धता न हो तब, केनचित् आकाष्ठात् देवेभ्यः = यदि कुछ भी यज्ञीय पदार्थ उपलब्ध न हो तो काष्ठ (समिधा मात्र) तक से भी देवों के लिए हवन किया जा सकता है तथा पितृभ्यो मनुष्येभ्यश्च = पितृ और मनुष्यों के लिए (क्रमशः पितृयज्ञ और मनुष्य यज्ञ) वैश्वदेव की अनुपलब्धता पर, उदपात्रात् = मात्र जल पात्र अर्थात् केवल जल द्वारा ही प्रतीक रूप में ये दोनों यज्ञ भी गृहस्थ प्रतिदिन करे।

टिप्पणी–१. (१) पञ्चमहायज्ञ—**पञ्चैव महायज्ञाः। तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञऽइति**—श० प० ११.५.६.१

ब्राह्मणकार ने इन्हें महायज्ञ के साथ-साथ महासत्र भी कहा है।

(२) महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि के गृहाश्रम प्रकरण एवं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के पञ्चमहायज्ञ प्रकरण में पञ्चमहायज्ञों की चर्चा एवं विधि प्रस्तुत की है। साथ ही 'पञ्चमहायज्ञविधि' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी इन्हीं पाँच महायज्ञों के विधानार्थ रचा है। महर्षि भूतयज्ञ को बलिवैश्वदेव भी कहते हैं। महर्षि देवयज्ञ एवं अग्निहोत्र को एक ही मानते हैं। तद्यथा—'अथ द्वितीयोऽग्निहोत्रं देवयज्ञः प्रोच्यते'—पञ्चमहायज्ञविधिः।

(३) समस्तयज्ञ संस्था—हवि, सोम एवं पाक इन तीन भागों में विभक्त है। पाकयज्ञों की विधि गृह्यसूत्रों में वर्णित है। हवि एवं सोम यज्ञों का विधान श्रौतसूत्रों में उपलब्ध है। श्रौतसूत्रों में अग्निहोत्र का परिगणन हर्वियज्ञों में होता है। अतः पाक संस्थान्तर्गत देवयज्ञ एवं हवि संस्थान्तर्गत अग्निहोत्र दोनों के हव्य की भिन्नता है। महर्षि ने श्रौत यज्ञान्तर्गत अग्निहोत्र को नित्य कर्त्तव्य मानकर उसका देवयज्ञ के साथ तादात्म्य प्रतिपादित किया है। इसलिए महर्षि प्रतिपादित देवयज्ञ विधिगृह्यसूत्रीय देवयज्ञ विधि से भिन्नता लिए है।

२. **पाकयज्ञ**—(१) **लौकिकानां पाकयज्ञशब्दः** आप०गृ० १.२.९ इस आपस्तम्ब वचन के अनुसार लौकिक जीवन से सम्बद्ध औपासन होम आदि कर्मों के लिए 'पाकयज्ञ' शब्द का प्रयोग होता है।

(२) **ह्रस्वत्वात्पाकयज्ञः ह्रस्वँ हि पाक इत्याचक्षते**—वाराह गृ० १.३ इस वाराह वचन के अनुसार ह्रस्वत्व के कारण ये पाकयज्ञ कहलाते हैं। सूत्रकार ने यहाँ पाक शब्द 'अल्प' अर्थ में स्वीकार किया है। पाकयज्ञों में प्रयुक्त भौतिक संसाधनों—समय एवं द्रव्य की दृष्टि से विचार करें तो अन्य श्रौतयज्ञों की अपेक्षा ये अल्प ह्रस्व ही हैं, किन्तु 'पाक' शब्द प्रशस्त अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। तद्यथा—'तं पाकेन मनसाऽपश्यम्'; 'यो मा पाकेन मनसा'। इन पाँच महायज्ञों के पीछे छिपी मूल भावना पर विचार करें तब यह निश्चय ही प्रशस्त यज्ञ कहलाने के अधिकारी हैं।

अतः 'पाकयज्ञ' का अर्थ हुआ—भौतिक संसाधनों—समय एवं द्रव्य आदि की दृष्टि से ह्रस्व-अल्प होते हुए भी समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रशस्त-प्रशंसनीय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण यज्ञ।

(३) गृह्यसूत्रों में पाकयज्ञों को हुत, प्रहुत, ब्रह्मणिहुत अथवा आहुत आदि भेदों में विभक्त कर विश्लेषित किया गया है। पाठकगण विस्तार के लिए मूल सूत्र ग्रन्थ देखें।

३. सूत्र—१५ गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुतेः—प्रकृत सूत्र का अर्थ सभी भाष्यकार अतिथियों के पश्चात् पत्नी से पूर्व गृहपति भोजन करे इस प्रकार करते हैं। वस्तुतः सूत्र अस्पष्ट है, इसीलिए यह खींचातानी हुई है। यदि सूत्र....... 'पूर्वोऽतिथिभ्यो नाश्नीयात्' इस प्रकार होता तब अर्थ सुव्यक्त होता। अथर्ववेद के नवमकाण्ड के छठे सूक्त में छः पर्याय हैं, जिनमें अतिथियज्ञ की देवयज्ञ से तुलना/साम्य उपलब्ध है। इसी सूक्त के तृतीय पर्याय में अतिथि से पूर्व भोजन करने से 'इष्टापूर्त' आदि के नष्ट होने का वर्णन है। सप्तम मन्त्र—"एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्"-में अतिथि से पूर्व भोजन का निषेध तथा अष्टम मन्त्र—"अशितावत्यतिथावश्नीयाद्०" में स्पष्टतः अतिथि के भोजन करने के अनन्तर भोजन करने का विधान है।

४. प्रकृत कण्डिका में 'अथातः पञ्चमहायज्ञाः' कहकर पांच यज्ञ के वर्णन का संकेत है, किन्तु कण्डिका में चार यज्ञ ही वर्णित है। भाष्यकारों ने सूत्रस्थ 'पञ्च-ग्रहण से शास्त्रान्तर प्रतिपादित पञ्चम 'ब्रह्मयज्ञ' का ग्रहण किया है।

इति द्वितीयकाण्डे नवमी कण्डिका ✪

दशमी कण्डिका

उपाकर्मविधिः

अथातोऽध्यायोपाकर्म॥१॥ ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावण्यां पौर्णमास्याꣳश्रावणस्य पञ्चमीꣳहस्तेन वा॥२॥ आज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति॥३॥ पृथिव्या अग्नय इत्यृग्वेदे॥४॥ अन्तरिक्षाय वायव इति यजुर्वेदे॥५॥ दिवे सूर्यायेति सामवेदे॥६॥ दिग्भ्यश्चन्द्रमस इत्यथर्ववेदे॥७॥ ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्चेति सर्वत्र॥८॥ प्रजापतये देवेभ्य ऋषिभ्यः श्रद्धायै मेधायै सदसस्पतयेऽनुमतय इति च॥९॥ एतदेव व्रतादेशनविसर्गेषु॥१०॥ सदस्पतिमित्यक्षतधानास्त्रिः॥११॥ हुत्वाहुत्वौदुम्बर्यस्तिस्त्रस्तिस्त्रः समिध आदध्युरार्द्राः सर्वेऽनुपठेयुः॥१२॥

सपलाशा घृताक्ताः सावित्र्या॥१३॥ ब्रह्मचारिणश्च पूर्वकल्पेन॥१४॥ शन्नोभवं-त्वित्यक्षतधाना अखादन्तः प्राश्नीयुः॥१५॥ दधिक्राव्ण इति दधि भक्षयेयुः॥१६॥ स यावन्तं गणमिच्छेत्तावतस्तिलानाकर्षफलकेन जुहुयात्सा-वित्र्या शुक्रज्योतिरित्यनुवाकेन वा॥१७॥ प्राशनान्ते प्रत्यङ्मुखेभ्य ॐकार-मुक्त्वा त्रिश्च सावित्रीमध्यायादीन्प्रब्रूयात्॥१८॥ ऋषिमुखानि बह्वृचानाम्॥१९॥ पर्वाणि छन्दोगानाम्॥२०॥ सूक्तान्यथर्वणानाम्॥२१॥ सर्वे जपन्ति सहनोऽस्तु सहनोऽवतु सहन इदं वीर्यवदस्तु ब्रह्म। इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामह इति॥२२॥ त्रिरात्रं नाधीयीरन्॥२३॥ लोमनखानामनिकृन्तनम्॥२४॥ एके प्रागुत्सर्गात्॥२५॥१०॥

(कर्कः)—'अथा......कर्म' व्याख्यास्यत इति शेषः अध्ययनमध्यायस्तस्योपा-करणम्। एवं हि स्मरन्ति। छन्दांस्युपाकृत्याऽधीयीत। एवं सति अध्ययनप्रवृत्तस्यैत-द्भवति अत एवाग्निमतोऽध्यापनं भवति। नह्यनग्निमान् शक्नोत्यग्निसाध्यं कर्म कर्तुमिति। 'ओष..... स्याम्' श्रावण्यां हि पौर्णमास्यां श्रवण एव प्रायशो भवति ओषधीनां प्रादुर्भावश्च। तदेतदुभयं तस्या एव विशेषणम्। 'श्राव....न वा' तत्रापि प्रायशो हस्त एव भवति। अतः कालद्वयस्योपाकरणकर्मणो विकल्पोऽयम्। अपरे तु कालचतुष्टयं वर्णयन्ति। 'आज्य....होति' 'पृथि....ग्वेदे' अधीयमाने जुहोति। 'अन्त.... तये च' च शब्दादेतदपि सर्वत्र। पृथग्योगकरणं किमर्थम्। चतुर्णामपि वेदानां तन्त्रेणो-पाकरणकर्मणि ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्चेति प्रतिवेदमावर्तते। प्रजापतये देवेभ्य इत्येवमादि तन्त्रेण यथा स्यादिति पृथग्योगकरणम्। 'एत.....र्गेषु' एतदेव व्रतादेशे विसर्गे चाज्या-हुतिकर्म भवति। 'सद.....वित्र्या' सदसस्पतिमित्यनेन मन्त्रेण आचार्योऽक्षतधाना जुहोति। सर्वे च सह पठन्ति मन्त्रम्। हुत्वा हुत्वौदुम्बर्यस्तिस्रः समिध आदध्युः सावित्र्या। समिदाधानं च भेदेन न यौगपद्येन। 'ब्रह्म......ल्पेन' इति दृष्टत्वात्। तत्र हि समिदाधानं प्रकृत्योक्तम्—एवं द्वितीयां तथा तृतीयामिति। 'शन्नो..... श्नीयुः' शन्नो भवन्त्वित्यनेन मन्त्रेण अक्षतधाना यवानां धाना अनवखण्डयन्तः प्राश्नीयुः। दधिः..... येयुः' सर्वे इति बहुवचनोपदेशात्। 'स या..... वित्र्या' स इत्याचार्योऽभिधीयते। यावन्तं शिष्यगणमिच्छेत्तावतस्तिलानाकर्षफलकेन जुहुयात्सावित्र्या। 'शुक्र........वा' वाशब्दो विकल्पार्थः। अतो धानाभिः स्विष्टकृत्। तासां च श्रपणानुपदेशाद्भूतानामेवोपादानम्। 'प्राश....यात्' मन्त्रब्राह्मणयोः। 'ऋषि.....णानां' प्रब्रूयादित्यनुवर्तते। 'सर्वे.....नोस्त्विति।

अमुं मन्त्रम्।' 'त्रिरा.....नम्' त्रिरात्रमेव। 'एके....र्गात्' लोमनखानामनिकृन्तनमिच्छन्ति। उत्सर्गश्चार्द्धषष्ठान् मासानधीत्योत्सृजेयुरित्येवम्।।१०।।

१. अथ अतः = पञ्चमहायज्ञ निरूपण के अनन्तर, अध्याय = अध्ययन-वेदाध्ययन का, उपाकर्म = उपाकरण-स्वीकरण का विधान किया जा रहा है।

२. ओषधीनां प्रादुर्भावे = अपामार्ग आदि ओषधियों के उत्पन्न होने पर, श्रवणेन = श्रवण नक्षत्र से युक्त, श्रावण्यां पौर्णमास्यां = श्रावण मास की पौर्णमासी, वा = अथवा, हस्तेन = हस्त नक्षत्र से युक्त, श्रावणस्य पञ्चमीं = श्रावण मास की पञ्चमी के दिन इस कर्म (उपाकर्म) का अनुष्ठान करना चाहिए।

३. आज्यभागौ = आज्यभाग संज्ञक (अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा) ये दो आहुतियाँ, इष्ट्वा = देकर, अन्य-आज्याहुतीर्जुहोति = आज्याहुतियां दें।

४. ऋग्वेदे = यदि ऋग्वेद का अध्ययन करना हो तब, पृथिव्या अग्नय इति = पृथिवी और अग्नि के लिए—पृथिव्यै स्वाहा, अग्नये स्वाहा—ये दो आज्या-हुतियां दे।

५. यजुर्वेदे = यदि यजुर्वेद पठनीय हो तब, अन्तरिक्षाय वायव इति = अन्तरिक्ष और वायु के लिए—अन्तरिक्षाय स्वाहा, वायवे स्वाहा—ये दो आहुतियां दे।

६. सामवेदे = सामवेद पाठनीय होने पर, दिवे सूर्याय इति = दिव और सूर्य के लिए—दिवे स्वाहा, सूर्याय स्वाहा—कहकर दो आहुतियां दे।

७. अथर्ववेदे = अथर्ववेदे के पठनीय होने पर, दिग्भ्यश्चन्द्रमस इति = दिशाओं और चन्द्रमा के लिए—दिग्भ्यः स्वाहा, चन्द्रमसे स्वाहा—ये दो आहुतियां दे।

८. सर्वत्र = उक्त चारों वेदों में से किसी का भी अध्ययन प्रारम्भ करने पर तत्तत् वेदविषयक दो आहुतियों के अतिरिक्त, ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्च इति = ब्रह्मणे स्वाहा, छन्दोभ्यः स्वाहा—ये दो आहुतियां भी देवे।

९. प्रजापतये.....अनुमतय इति च = पूर्व सूत्र ३ के अनुसार दो आज्यभागा-हुतियाँ, सूत्र ४—७ के अनुसार संबद्ध वेदविषयक दो तथा सूत्र ८ के अनुसार ब्रह्म एवं छन्द विषयक दो कुल मिलाकर छः आहुतियां देकर प्रकृत सूत्रानुसार निम्न सात आज्याहुतियां भी कर्त्तव्य हैं—

(१) प्रजापतये स्वाहा, (२) देवेभ्यः स्वाहा, (३) ऋषिभ्यः स्वाहा, (४) श्रद्धायै स्वाहा, (५) मेधायै स्वाहा, (६) सदसस्पतये स्वाहा, (७) अनुमतये स्वाहा।

१०. एतदेव = उपाकर्म में विहित यह पृथिवी सूत्र ४ से अनुमति सूत्र ९ पर्यन्त कर्म ग्यारह आज्याहुतियां २ + २ + ७ = ११, व्रतादेशन = वेदारम्भ और विसर्गेषु = समावर्तन में भी कर्त्तव्य हैं।

११. आचार्य सदसस्पतिम् इति = सदसस्पतिम् मन्त्रपूर्वक, त्रिः अक्षतधानाः = तीन चार अक्षतधानों से आहुति दे।

१२. सर्वे = सभी शिष्य, अनुपठेयुः = सदसस्पतिम् इस प्रकार मन्त्र का पाठ करें। मन्त्र—

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषम् स्वाहा।। यजु० ३२.१३

१३. हुत्वा हुत्वा = एक-एक आहुति देकर, औदुम्बर्यः = उदुम्बर-गूलर की, तिस्रः तिस्रः = तीन-तीन, समिधः = समिधाएं, आदध्युः = रखे अर्थात् 'सदसस्पतिम्' मन्त्र से अक्षतधाना की एक आहुति तदनु गूलर की समिधा—इस प्रकार तीन आहुतियां और तीन ही समिदाधान कर्त्तव्य है। यह समिधाएं आर्द्राः सपलाशा घृताक्ताः = आर्द्र पत्तों से युक्त तथा घृत से गीली (चुपड़ी हुई) की गयी हों, सावित्र्या = यह समिदाधान सवितृ देवताक मन्त्रपूर्वक कर्त्तव्य है।

१४. ब्रह्मचारिणश्च पूर्वकल्पेन = ब्रह्मचारी शिष्य पूर्वकल्प—पूर्वोक्त समिदाधान मन्त्रपूर्वक ही समिदाधान करें। मन्त्र—

अग्नये समिधमहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासम्।।

१५. आचार्य सहित सभी शिष्य, शन्नो भवन्तु इति = शन्नो भवन्तु मन्त्रपूर्वक अक्षतधानाः = अक्षतधाना (जौ तथा चावल) को, अखादन्तः = बिना चबाए, प्राश्नीयुः = खायें। मन्त्र—

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकँ् रक्षाँ्सि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥

यजु० ९.१६; २१.१०

१६. दधिक्राव्ण इति = दधिक्राव्ण—मन्त्रपूर्वक शिष्य, दधि भक्षयेयुः = दधि भक्षण करें। आचार्य एवं शिष्य सभी को अक्षतधाना दधि—भक्षण के अनन्तर आचमन करके ही शेष कर्म सम्पादित करना चाहिए। दधिप्राशन मन्त्र—

दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्रणऽआयूँ्षि तारिषत्॥ यजु० २३.३२

१७. आचमनानन्तर स = वह आचार्य, यावन्तं गणम् = जितने शिष्य समुदाय की, इच्छेत् = इच्छा करे, तावतः = उतने ही, तिलान् = तिलों की, आकर्षफलकेन = एक हाथ लम्बाई वाले गूलर की लकड़ी के सर्पाकार पात्र (चम्मच) आकर्षफलक से, सावित्र्या = सवितृ देवताक गायत्री मन्त्र से, शुक्रज्योतिरित्यनुवाकेन वा = अथवा शुक्रज्योति इस अनुवाक से, जुहुयात् = आहुति दे। सावित्री मन्त्र—'तत्सवितुर्वरेण्यम्', 'विश्वानिदेव सवितर्' आदि मन्त्र हैं।

शुक्रज्योति अनुवाक–यजु० १७.८०-८६

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च।
शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यँ्हाः॥
ईदृङ्चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च।
मितश्च संमितश्च सभराः॥
ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च।धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः॥
ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च।
अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः॥
ईदृक्षासऽएतादृक्षासऽऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षासऽएतन।
मितासश्च सम्मितासो नोऽअद्य सभरसो मरुतो यज्ञेऽस्मिन्॥
स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी॥
इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्। एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु॥

१८. प्राशनान्ते = संस्रवप्राशन के अनन्तर, प्रत्यङ्मुखेभ्य उपविष्टेभ्यः = पश्चिमाभिमुख बैठे हुए शिष्यों को (आचार्य पूर्वाभिमुख बैठकर), ॐ कारमुक्त्वा = ओ३म् का उच्चारण करके, त्रिः च सावित्रीम् = तीन बार सावित्री-गायत्री का पाठ करके, अध्यायादीन् प्रब्रूयात् = यजुर्वेद के प्रत्येक अध्याय के प्रथम मन्त्र को पढ़ावे।

१९. बह्वृचानाम् = बह्वृचों अर्थात् ऋग्वेदियों के उपाकरण में, ऋषिमुखानि = प्रत्येक मण्डल के प्रथम मन्त्र को पढ़ावे।

२०. छन्दोगानाम् = सामवेदियों के उपाकरण में, पर्वाणि = प्रत्येक पर्व के प्रथम मन्त्र को बुलवावे।

२१. अथर्वाणाम् = अथर्ववेदियों के उपाकरण में, सूक्तानि = प्रत्येक सूक्त का प्रथम मन्त्र बोले।

२२. सर्वे जपन्ति सहनोऽस्तु .... महे इति = आचार्य एवं शिष्य सभी सहनोऽस्तु मन्त्र का जप करें। जप मन्त्र—

सहनोऽस्तु सहनोऽवतु सह न इदं वीर्यवदस्तु ब्रह्म।

इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामहे॥

२३. उपाकर्म के अनन्तर, त्रिरात्रं नाधीयीरन् = तीन दिन तक अध्ययन न करें।

२४. उक्त अनध्याय के तीन दिनों में, लोमनखानाम् = रोम--बाल और नाखून, अनिकृन्तनम् = न कटावें।

२५. एके = कुछ आचार्यों का मत है कि—प्रागुत्सर्गात् = उत्सर्ग—से पूर्व रोम और नाखून न कटवावे।

टिप्पणी-१. उपाकर्म आवसथ्याग्निसाध्य कर्म है।

२. अनध्याय-अनध्याय से तात्पर्य गुरुमुख से अध्ययन का ही प्रतिषेध है। अधीत विषय का मनन एवं चिंतन तो कर्त्तव्य ही है।

३. उत्सर्ग—उत्सर्ग काल अगली एकादशी कण्डिका के सूत्र १०—११ में वर्णित है।

इति द्वितीयकाण्डे दशमी कण्डिका ✪

एकादशी कण्डिका

अनध्यायः

वातेऽमावास्यायाᳫं सर्वानध्यायः॥१॥ श्राद्धाशने चोल्कावस्फूर्जद्भूमिचलनाग्न्युत्पातेष्वृतुसन्धिषु चाकालम्॥२॥ उत्सृष्टेष्वभ्रदर्शने सर्वरूपे च त्रिरात्रं त्रिसन्ध्यं वा॥३॥ भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिरुदके निशायाᳫं संधिवेलयोरन्तःशवे ग्रामेऽन्तर्दिवाकीर्त्ये॥४॥ धावतो ऽभिशस्तपतितदर्शनाश्चर्याभ्युदयेषु च तत्कालम्॥५॥ नीहारे वादित्रशब्द आर्तस्वने ग्रामान्ते श्मशाने श्वगर्दभोलूकशृगालसामशब्देषु शिष्टाचरिते च तत्कालम्॥६॥ गुरौ प्रेतेऽपोभ्यवेयाद्दशरात्रं चोपरमेत्॥७॥ सतानूनप्त्रिणि सब्रह्मचारिणि च त्रिरात्रम्॥८॥ एकरात्रमसब्रह्मचारिणि॥९॥ अर्धषष्ठान्मासानधीत्योत्सृजेयुः॥१०॥ अर्धसप्तमान्वा॥११॥ अथेमामृचं जपन्ति उभा कवी युवा यो नो धर्मः परापतत्। परिसख्यस्य धर्मिणो विसख्यानि विसृजामह इति॥१२॥ त्रिरात्रं सहोष्य विप्रतिष्ठेरन्॥१३॥११॥

(कर्कः)—''वाते.....ध्यायः' वातस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् अतिशयितो गृह्यते। सर्वशब्दाच्चाङ्गानामपि न छन्दसामेव। अपरे तु वर्णयन्ति यद्यदुपाध्यायसकाशाद् गृह्यते। शिक्ष्यते लिप्याद्यपि तत्सर्वग्रहणेन गृह्यते। शिल्पिनामपि ह्यनध्यायप्रसिद्धिरस्ति। अनध्यायश्च प्रकृतत्वाद् गुरुमुखाद्यच्छिक्ष्यते तत्रैव भवति न गुणनेऽपीति। अपरे तु सर्वविषयतामिच्छन्तिः 'श्राद्धा.....कालम्' आकालिका एते अनध्यायाः। यस्मिन्काले ये आपतिताः द्वितीयेऽहनि तावन्तं कालं यावत्। अपरे श्राद्धाशने वर्णयन्ति यावत् श्राद्धाशनं न जीर्यते तावदिति। ऋतुसंबन्धिरप्याकालोऽनध्यायः। संधिश्चोच्यते एकस्य ऋतोरन्तरपश्च यावन्न प्रवर्तेत तत्राकालिकताऽनुपपत्तिः तस्मात्पूर्वस्य ऋतोर्याऽन्त्या रात्रिरपरस्य यदाद्यमहः स संधिरित्युच्यते तत्र नाधीयीत। उत्सृष्टेषु' छन्दःसु। उत्सर्गश्चार्धषष्ठान् मासानधीत्योत्सृजेयुरर्धसप्तमान्वेति तत्रानध्यायः। 'अभ्र.......न्ध्यं वा' अभ्रदर्शनमतिशयिकं गृह्यते सर्वकालमभ्राणि सन्त्येव, सर्वरूपं च स्तनितविद्युद्-वृष्ट्यादि तत्र त्रिरात्रं त्रिसंध्यं वा नाधीयीतेति विकल्पः। अपरे व्यवस्थितं विकल्पमिच्छन्ति। अभ्रदर्शने त्रिसंध्यं सर्वरूपे च त्रिरात्रम्। भुक्त्वार्द्रपाणिर्नाधीयीत। तथा उदके। न निशायाम्। निशाशब्देनार्धरात्रमुच्यते स्मृत्यन्तरात्। अहोरात्रस्य संधिवेलयोः। अन्तःशवे ग्रामे ग्राममध्ये यावच्छवो भवति तावन्नाधीयीत। ग्रामेऽन्तः

ग्राममध्ये नाधीयीत। अपरे तु वर्णयन्ति---अन्तर्दिवाकीर्तिरनध्ययनम्। दिवाकीर्तिर्यद्दिवा कीर्त्यते तत् ग्राममध्ये न पठनीयम्। अन्ये दिवाकीर्तिं चण्डालमभिवदन्ति तद्दर्शने नाधीयीत। तथा च स्मृत्यन्तरम्---दिवाकीर्तिमुदक्यां च स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्। 'धाव...... त्कालम्' नाधीयीत। 'नीहा........लम्' एते तात्कालिका:। 'गुरौ.......मेत्' अपोऽभ्यवायेनोदकक्रिया लक्ष्यते। तद्दशरात्रं चानध्ययनं भवति। 'सता.......त्रम्' सह तानूनप्त्रं येन स्पृष्टं स सतानूनप्त्री समाने ब्रह्मणि यश्चरति स सब्रह्मचारी। 'एक...... रिणि' अनध्याय:। 'अर्ध....जेयु:' उपाकृतानि छन्दाँसि। 'अर्थ....न्वा' अधीत्योत्सृजेयु:। ततश्च विकल्पोऽयम्। उत्सर्गश्च छन्दसामङ्गानि पुरनधीयीतैव। 'अथ..... युवेति' जपन्ति च सहाचार्येण शिष्या:। 'त्रिरा...... रन्' अत्र त्रिरात्रं सहवासनियम: विप्रतिष्ठा विद्यत एव॥११॥

प्रसङ्ग प्राप्त अनध्याय किन-किन परिस्थितियों में होना चाहिए इसका वर्णन करते हैं—

१. वाते = प्रचण्ड वायु चलने पर और, अमावास्यायां = अमावस्या के दिन, सर्व अनध्याय: = पूर्ण अनध्याय रहना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र में 'वाते' कहकर वायु के होने पर अनध्याय का निर्देश किया है। अत: वाते से तात्पर्य वायु के चलने—आंधी आदि के आने से है।

सूत्र में 'सर्व' पद ग्रहण से स्पष्ट है कि उक्त परिस्थिति में मात्र नवीन विषयों का अध्ययन ही स्थगित नहीं होगा, अपितु अधीत विषयों का अभ्यास भी स्थगित रहेगा।

२. श्राद्धाशने च = और श्राद्धान्न का भोजन करने पर, उल्कावस्फूर्जद् = उल्कापात अर्थात् तारे टूटने, बिजली चमकने, भूमिचलन = भूकम्प होने पर, अग्न्युत्पातेषु = अग्निजन्य विघ्न, ऋतुसन्धिषु च = और ऋतु संधि के समय, आकालम् = जिस समय ये घटनाएं घटित हों उससे दूसरे (अगले) दिन उसी समय तक अनध्याय रहना चाहिए।

३. उत्सृष्टेषु = वेदोत्सर्ग कर देने पर, अभ्रदर्शने = मेघ घिर आने पर, सर्वरूपे च = और एक साथ मेघ, विद्युत् = अंधकार, गर्जन, तीव्र वायु तथा वर्षा होने पर, त्रिरात्रं त्रिसन्ध्यं वा = तीन दिन अथवा तीन सान्ध्य बेलाओं में अनध्याय रहे।

४. भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिः = भोजन के पश्चात् जब तक हाथ गीले रहें, उदके = स्नानादि के लिए जल में रहने के समय, निशायाम् = अर्धरात्रि के (रात्रि के बीच के प्रहर), के समय, संधिवेलयोः = प्रातः सायं की संधि बेला में, ग्रामे अन्तः शवे = ग्राम में मृत व्यक्ति के शरीर—शव के रहने तक, अन्तर्दिवाकीर्त्ये = दिन में पठनीय प्रवर्ग्य आदि के पठन समय ग्राम में रहते हुए अनध्याय है।

५. धावतः = दौड़ते समय, अभिशस्त = अभियुक्त, पतित = ब्रह्महत्या आदि के कारण पापी अथवा अन्य किसी अपराध में सिद्धदोष व्यक्ति के, दर्शन = दिखाई देने पर, आश्चर्य = किसी आश्चर्यजनक कृत्य के दिखाई देने पर, अभ्युदयेषु च = और पुत्रजन्म आदि अभ्युदय के होने पर, तत्कालम् = तत्काल उतने समय तक अनध्याय होना चाहिए।

६. नीहारे = नीहार-कुहरे के समय, वादित्रशब्दे = मृदङ्गादि वाद्ययन्त्र का शब्द होने पर, आर्तस्वने = दुःखी व्यक्ति के क्रन्दन समय, ग्रामान्ते = ग्राम की सीमा पर, श्मशाने = श्मशान में, श्वगर्दभोलूक शृगालसामशब्देषु = कुत्ते, गधे, उल्लू, श्रृगाल के चिल्लाने तथा सामवेद की ध्वनि के समय, शिष्टाचरिते च = और शिष्टपुरुषों के आगमन के समय, तत्कालम् = उतने ही समय अनध्याय रहना चाहिए।

७. गुरौ प्रेते = गुरु की मृत्यु होने पर, अपोभ्यवेयाद् = जल में प्रवेश कर (नदी आदि में) स्नान करे, दशरात्रं चोपरमेत् = और दस दिन तक अनध्याय रखे।

८. सतानूनप्त्रिणि = सतानूनप्त्र, सब्रह्मचारिणी च = और सहपाठी ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर, त्रिरात्रम् = तीन दिन अनध्याय रहना चाहिए।

९. एकरात्रम् असब्रह्मचारिणी = अन्य आचार्य के पास पढ़ने वाले ब्रह्मचारी की मृत्यु पर एक दिन का अनध्याय हो।

१०. अर्धषष्ठान्मासान् = साढ़े पाँच मास, अधीत्य = वेदाध्ययन कर, उत्सृजेयुः = वेदाध्ययन का उत्सर्ग-विराम करे।

११. अर्धसप्तमान्वा = अथवा साढ़े छः मास तक वेदाध्ययन कर उत्सर्ग करे।

१२. अथ = अध्ययन का उत्सर्ग करते समय गुरु-शिष्य, इमामृचं = इस ऋचा का, जपन्ति = जप करें। जपमन्त्र—

उभा कवी युवा यो नो धर्मः परापतत्।

परिसख्यस्य धर्मिणो विसख्यानि विसृजामहे।।

१३. मन्त्र जप के अनन्तर गुरु—शिष्य, त्रिरात्रं = तीन दिन, सहोष्य = साथ निवास करके, विप्रतिष्ठेरन् = विशेषरूप से भिन्न-भिन्न दिशाओं में से यथास्थान प्रवास करे।

टिप्पणी–१. सूत्र ४ दिवाकीर्ति—कतिपय आचार्य दिवाकीर्ति का अर्थ चाण्डाल करते हैं। तब सूत्रार्थ होगा—चाण्डाल युक्त स्थान पर भी अनध्याय हो।

२. सूत्र ५ अभिशस्त—(१) अभिशस्तो मिथ्याभिशप्तः—जयरामः

(२) अभिशस्तः ब्रह्महत्यादि पापेनाभियुक्तः-हरिहरगदाधरौ पतितः-(१)पतितो ब्रह्महत्यादिना-जयरामः

(२) पतितो ब्रह्महत्यादिना पापेन—हरिहरगदाधरौ

३. सूत्र ७ शिष्टाचरिते—शिष्टस्य श्रोत्रियस्य आचरिते आगमने— हरिहर-गदाधरौ-हरिहर एवं गदाधर ने शिष्ट का अर्थ श्रोत्रिय किया है।

४. सूत्र ८ (१) सतानूनप्त्र—सोमयागान्तर्गत तानूनप्त्र—घृताभिघारण नामक कर्म विशेष में एक साथ दीक्षित व्यक्ति—'सतानूनप्त्र' कहलाते हैं।

(२) सब्रह्मचारी—समाने ब्रह्मणि यश्चरति स सब्रह्मचारी = सहाध्यायी।

इति द्वितीयकाण्डे एकादशी कण्डिका ✪

द्वादशी कण्डिका

उत्सर्गविधिः

पौषस्य रोहिण्यां मध्यमायां वाऽष्टकायामध्यायानुत्सृजेरन्।।१।। उदकान्तं गत्वाऽद्भिर्देवाँश्छन्दाꣳसि वेदानृषीन्पुराणाचार्यान् गन्धर्वानितराचार्यान्संवत्सरं च सावयवं पितृनाचार्यान्स्वाँश्च तर्पयेयुः।।२।। सावित्रीं चतुरनुद्रुत्य विरताः स्म इति प्रब्रूयुः।।३।। क्षपणं प्रवचनं च पूर्ववत्।।४।। १२।।

(कर्कः)—'पौष.....रन्' पौषमासे रोहिणीषु मध्यमाऽष्टकापि पौष एव तत्राध्यायोत्सर्गः। 'उद... येयुः' इत्येवमन्तं सूत्रम्। उदकान्तं गत्वा उदकान्ते गमनेन च

स्नानमुपलक्ष्यते। ततोऽद्भिर्देवाँस्तर्पयेयुराचार्यसहिता: शिष्या देवास्तृप्यन्तु छन्दांसि तृप्यन्त्वित्येवमादि। 'सावि.....ब्रूयु:'। 'क्षप....व्रत्' पूर्वशब्देनोपाकर्मकालो लक्ष्यते। तद्वत्क्षपणं भवति प्रवचने चाध्यायादीनाम्।।१२।।

१. पौषस्य = पौषमास के, रोहिण्यां = रोहिणी नक्षत्र में, मध्यमायां वा अष्टकायाम् = अथवा मध्यम अष्टमी अर्थात् कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन अध्यायान् = वेदाध्ययन का, उत्सृजेरन् = उत्सर्ग करें। पुन: उपाकर्म तक जिनका अध्ययन अब तक कर रहे थे उन्हें छोड़ दें, तब तक इन्हें न पढ़ें।

२. उदकान्तं गत्वा = नदी अथवा जलाशय पर जाकर अर्थात् वहां स्नान करके आचार्य एवं शिष्य, अद्भि: = जल से, देवान् = देवों, छंदाꣳसि = छन्दों, वेदान् = वेदों, ऋषीन् = ऋषियों, पुराणाचार्यान्= पुराणाचार्यों, गन्धर्वान् = गन्धर्वों, इतराचार्यान् = अन्य आचार्यों, संवत्सरं च सावयवं = और सावयव संवत्सर, पितॄन् = पितरों, आचार्यान् स्वाँश्च = और अपने आचार्यों का, तर्पयेयु: = तर्पण करे।

३. सावित्रीं = सावित्री मन्त्र को, चतु: = चार बार, अनुद्रुत्य = पढ़कर, विरता: स्म इति = हम अध्ययन से विरत हैं ऐसा, प्रब्रूयु: = कहें।

४. क्षपणं = रोम एवं नाखून का तीन दिन तक न कटवाना, प्रवचनं च = और प्रवचन—अध्याय आदि का पठन भी, पूर्ववत् = पूर्व की तरह करे।

टिप्पणी--१. सूत्र १. मध्यमायां वाऽष्टकायाम्—कर्क आदि भाष्यकारों ने "मध्यमाऽष्टकापि पौष एव तत्राध्यायोत्सर्ग:" कहकर पौष मास की अष्टमी ही को उत्सर्ग करने की बात कही है। आचार्य विश्वनाथ ने—'मध्यमाष्टका पौष्यनन्तर कृष्णाष्टमी' कहकर कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन कहा है साथ ही—'अपरेतु पौषीमाघ्युत्तरकृष्णाष्टम्योरुपादानमाहु:' अन्य आचार्यों का मत उद्धृत करते हुए पौषमास के बाद माघ कृष्णाष्टमी के दिन उत्सर्ग विधान स्वीकार किया है।

२. सूत्र २—तर्पण विधि—आचार्य एवं शिष्य नदी—जलाशय पर जाकर स्नान कर निम्न प्रकार जल से तर्पण करें—

(१) देवास्तृप्यन्ताम्, (२) छन्दाꣳसि तृप्यन्ताम्, (३) ऋषयस्तृप्यन्ताम्, (४) पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्, (५) गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्, (६) इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्, सावयव संवत्सरअहोरात्राणितृप्यन्ताम्, अर्द्धमासास्तृप्यन्ताम्, ऋतवस्तृप्यन्ताम्, संवत्सर: सावयवस्तृप्यतु।

एतदनन्तर अपने आचार्य एवं पितरों का तर्पण करे। तर्पण के पश्चात् गीले स्नान वस्त्र निचोड़ कर—

"देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳस्वाहा वाते धाः॥" यजु० ८.२१ मन्त्र पढ़कर अनुष्ठान का समापन करे। तर्पण से पूर्व भी इस मन्त्र का पाठ कर्त्तव्य है।

३. सूत्र ३. सावित्री—तत्सवितुर्वरेण्यं—सावित्री मन्त्र है।

४. सूत्र ४. प्रवचनं च पूर्ववत्—उपाकर्म के समय जिस प्रकार यजुर्वेद के प्रत्येक अध्याय के प्रथम मन्त्र, ऋग्वेद के प्रत्येक मण्डल के प्रथम मन्त्र, सामवेद के पर्व के प्रथम मन्त्र एवं अथर्व के सूक्त के प्रथम मन्त्र का पाठ होता है। इसी प्रकार उत्सर्ग के अवसर पर भी पाठ करना चाहिए।

इति द्वितीयकाण्डे द्वादशी कण्डिका ✪

त्रयोदशी कण्डिका

लाङ्गलयोजनम्

पुण्याहे लाङ्गलयोजनं ज्येष्ठया वेन्द्रदैवत्यम्॥१॥ इन्द्रं पर्जन्यमश्विनौ मरुत उदलाकाश्यपꣳस्वातिकारीꣳसीतामनुमतिं च दध्ना तण्डुलैर्गन्धैरक्षतै-रिष्ट्वाऽनडुहो मधुघृते प्राशयेत्॥२॥ सीरायुञ्जन्तीति योजयेत्॥३॥ शुनँसुफाला इति कृषेत् फालं वाऽऽलभेत॥४॥ न वाऽग्न्युपदेशाद्वपनानुषङ्गाच्च॥५॥ अग्र्यमभिषिच्याकृष्टं तदाकृषेयुः॥६॥ स्थालीपाकस्य पूर्ववद्देवता यजेदुभयो-र्व्रीहियवयोः प्रवपन्सीतायज्ञे च॥७॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥८॥१३॥

(कर्कः)—पुण्या.....नाम्' प्रथमं कृषिप्रवृत्तस्यैतद्भवति। पुण्याहग्रहणमापूर्य-माणपक्षोदगयनाद्यनादरार्थम्। लाङ्गलयोजनं हलयोजनमित्यर्थः। 'ज्येष्ठ...त्यम्' ज्येष्ठया वेति हेतौ तृतीया। अपुण्याहेऽपि ज्येष्ठया भवति लाङ्गलयोजनम्। कुत एतत्। इन्द्रदैवत्यं ज्येष्ठानक्षत्रं इन्द्रायत्ता च कृषिरिति। 'इन्द्रं.....रिष्ट्वा' इन्द्रादिदेवताविशेषान् दध्यादिभिरिष्ट्वा। इष्ट्वेत्यनेन नमस्कारान्तैरेभिर्मन्त्रैर्बलिहरणमिन्द्राय नम इत्येवमा-दिभिः। 'अन......भेत' कुत एतत्। लिङ्गाच्च मन्त्रयोः। 'न वा......शात्' न चैतो मन्त्रौ

विनियोक्तव्यौ किंकारणं अग्नौ ह्येतावुपदिष्टौ न चाग्निप्रकरणपठितयोरिहोपदेशो नातिदेशः। किंच 'वप.......च्च' वपनेऽपि तन्मन्त्राणामनुषङ्गः प्राप्नोति न चैतदिष्यते। 'अग्य......षेयुः' योऽग्र्यो वल्लभो बलीवर्दस्तस्य चाभिषेको घुर्घुरमालादिना अनेन प्रकारेणाकृष्टं कृषेयुः। 'स्थाली........ जनम्'।।१३।।

१. प्रथम कृषि कर्म में प्रवृत्ति समय का विधान किया जाता है—पुण्याहे= किसी पुण्य दिन, लाङ्गलयोजनं = हल जोते, ज्येष्ठया वा = अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त किसी दिन हल जोते, क्योंकि इन्द्रदैवत्यम् = ज्येष्ठा नक्षत्र के देवता 'इन्द्र' हैं और कृषि—कर्म इन्द्र की कृपा पर ही निर्भर करता है।

२. इन्द्रं = इन्द्र, पर्जन्यम् = पर्जन्य, अश्विनौ = दोनों अश्विनी कुमार, मरुतः = मरुद्गण, उदलाकाश्यपं = उदलाकाश्यप, स्वातिकारीं = स्वातिकारी, सीतां = सीता, अनुमतिं च = और अनुमति—इन आठ विशिष्ट देवताओं का, दध्ना = दही, तण्डुलैः = चावल, गन्धैः = गन्ध और अक्षतैः = अक्षत—जौ से, इष्ट्वा = यजन कर, अनुडुहः = हल से युक्त होने वाले बैलों को, मधुघृते=मधु और घृत, प्राशयेत् = चटावे। यजन प्रकार—

जहाँ पर हल जोतना हो उस क्षेत्र—खेत के पूर्व अथवा उत्तर भाग में भूमि साफ करके (उपलेपन आदि द्वारा)—दही, चावल, गन्ध और अक्षत लेकर उक्त देवों के नाम से निम्न प्रकार भाग रखें—

(१) इन्द्राय नमः, (२) पर्जन्याय नमः, (३) अश्विभ्यां नमः, (४) मरुद्भ्यो नमः, (५) उदलाकाश्यपाय नमः, (६) स्वातिकार्यै नमः, (७) सीतायै नमः, (८) अनुमत्यै नमः।

देवों के लिए यह द्रव्य हाथ से ही रखकर बैलों को शहद व घी घटाना चाहिए। तदनन्तर—

३. सीरायुञ्जन्तीति = सीरा युञ्जन्ति—इस मन्त्र का पाठ करके, योजयेत् = बैलों को हल में युक्त करे (जोत देवे)। समग्रमन्त्र—

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया।। यजु० १२.६७

४. शुनꣳसुफाला इति कृषेत् = 'शुनं सुफाला०' मन्त्र का पाठ करके खेत को जोते, फालं वा आलभेत = अथवा शुनं सुफाला मन्त्र पढ़कर हल के फाल का स्पर्श करे। मन्त्र—

शुनꣳसुफाला विकृषन्तु भूमिꣳशुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।

शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मे॥ यजु० १२.६९

५. न वा अग्न्युपदेशात् = कतिपय आचार्यों का मत है कि—'सीरा युञ्जन्ति' तथा 'शुनꣳसुफाला' इन दोनों मन्त्रों का पाठ किये बिना ही बैलों को हल में युक्त करें एवं खेत जोतना अथवा फाल का स्पर्श भी अमन्त्रक ही करे, क्योंकि इन मन्त्रों को 'अग्नि चयन' प्रकरण में पढ़ा गया है। यहाँ इन मन्त्रों का न तो उपदेश है और न ही अतिदेश प्रसङ्ग। यदि यहाँ अतिदेश स्वीकार कर लिया जाए तब, वपनानुषङ्गाच्च = धान्यवपन में विनियुक्त 'या ओषधीः' = इत्यादि मन्त्रों का भी अतिदेश प्रसङ्ग उपस्थित होगा और यदि लिङ्गमात्र से उपदेशातिदेश स्वीकार करें तब वपन मन्त्र भी विनियोज्य होंगे जो कि अभीष्ट नहीं है।

६. अग्र्यम् = श्रेष्ठ बैल को, अभिषिच्य = अभिषिक्त—माला—घण्टी आदि से अलंकृत कर, अकृष्टं = बिना जुते खेत को, तदाकृषेयुः = जोतें।

७. व्रीहियवयोः = व्रीहि एवं यव—धान और जौ को, प्रवपन, = बोते समय, सीतायज्ञे च = और सीतायज्ञ के समय, स्थालीपाकस्य = स्थाली पाक से, पूर्ववद् देवता यजेत् = पूर्ववत्—लाङ्गल योजन कर्म के इन्द्र प्रभृति आठ देवताओं का यजन करे।

८. ततः = तदनन्तर-देवता यजन के पश्चात्, ब्राह्मणभोजनम् = यथाशक्ति-ब्राह्मण भोजन करावे।

टिप्पणी—१. गोभिल गृह्यसूत्र ४.४.२६ में—"अथातो हलाभियोगः" कहकर इसे हलाभियोग नाम दिया गया है।

२. कौषीतकि गृह्यसूत्र ४.१३ के अनुसार 'रोहिण्यां कृषिकर्माणि कारयेत्'—कृषिकर्म रोहिणी नक्षत्र में करना चाहिए। गोभिल में किसी नक्षत्र विशेष का उल्लेख नहीं है।

३. मैत्रीयणीय मानव गृह्यसूत्र में—आयोजन—पर्ययन—प्रवपन —प्रलवन (प्लवन)—सीतायज्ञ—खलयज्ञ—तन्तीयज्ञ तथा आनुडहयज्ञ—इन आठ कर्मों को हलाभियोग कर्म के साथ ही परिगणित कर सर्वत्र अग्नि—आदि द्वादश देवताओं के यजन का विधान है। तद्यथा—

अग्निरिन्द्रः सोमः सीता सवितासरस्वत्यश्विना (व) नुमती रेवती राका पूषा रुद्र इत्येतैरायोजन-पर्ययन-प्रवपन-प्रलवन-सीतायज्ञ-खलयज्ञ-तन्त्रीय-ज्ञानडुद्यज्ञेष्वेता देवता इति साꣳवत्सरेषु च पर्वसु॥-२.१०.७

इति द्वितीयकाण्डे त्रयोदशी कण्डिका ✪

चतुर्दशी कण्डिका

श्रवणाकर्म

अथातः श्रवणाकर्म॥१॥ श्रावण्यां पौर्णमास्याम्॥२॥ स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽक्षतधानाश्चैककपालं पुरोडाशं धानानां भूयसीः पिष्ट्वाऽऽज्यभागा-विष्ट्वाऽऽज्याहुती जुहोति॥३॥ अपश्वेतपदाजहि पूर्वेण चापरेण च। सप्त च वारणीरिमा प्रजाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा॥४॥ न वै श्वेतस्याध्याचारेऽहिर्द-दर्श कंचन। श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहेति॥५॥ स्थालीपाकस्य जुहोति विष्णवे श्रवणाय श्रावण्यै पौर्णमास्यै वर्षाभ्यश्चेति॥६॥ धानावन्तमिति धानानाम्॥७॥ घृताक्तान्सक्तून्सर्पेभ्यो जुहोति॥८॥ आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहाऽभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳ-सर्पाणामधिपतये स्वाहेति॥९॥ सर्वहुतमेककपालं ध्रुवाय भौमाय स्वाहेति॥१०॥ प्राशनान्ते सक्तूनामेकदेशँ शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रम्य बहिःशालायाः स्थण्डिलमु-पलिप्योल्कायां ध्रियमाणायां माऽन्तरागमतेत्युक्त्वा वाग्यतः सर्पानवने-जयति॥११॥ आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व श्वेतवायवा-न्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्वाभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपते-ऽवनेनिक्ष्वेति॥१२॥ यथाऽवनिक्तं दर्व्योपघातं सक्तून्सर्पेभ्यो बलिं हरति॥१३॥ आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपत एष ते बलिः श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳ सर्पाणामधिपत एष ते बलिरभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपत एष ते बलिरिति॥१४॥ अवनेज्य पूर्ववत्कङ्कतैः प्रलिखति॥१५॥ आग्नेयपाण्डुपार्थि-वानाꣳसर्पाणामधिपते प्रलिखस्व श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपते प्रलिखस्वाभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपते प्रलिखस्वेति॥१६॥ अञ्जना-

नुलेपनꣳस्त्रजश्चाञ्जस्वानुलिम्पस्व स्रजोऽपिनह्यस्वेति॥१७॥ सक्तुशेषꣳ स्थण्डिले न्युप्योदपात्रेणोपनिनीयोपतिष्ठते नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तिसृभिः॥१८॥ स यावत्कामयेत न सर्पा अभ्युपेयुरिति तावत्सन्ततयोदधारया निवेशनं त्रिः परिषिञ्चन्परीयादपश्वेतपदा जहीति द्वाभ्याम्॥१९॥ दर्वीं शूर्पं प्रक्षाल्य प्रतप्य प्रयच्छति॥२०॥ द्वारदेशे मार्जयन्त आपोहिष्ठेति तिसृभिः॥२१॥ अनुगुप्तमेतं सक्तुशेषं निधाय ततोऽस्तमितेऽस्तमितेऽग्निं परिचर्य दर्व्योपघातं सक्तून्सर्पेभ्यो बलिं हरेदाग्रहायण्याः॥२२॥ तं हरन्तं नान्तरेण गच्छेयुः॥२३॥ दर्व्याचमनं प्रक्षाल्य निदधाति॥२४॥ धाना प्राश्नन्त्यसꣳस्यूताः॥२५॥ ततो ब्राह्मण-भोजनम्॥२६॥ ॥१४॥

(कर्कः)—'अथा....कर्म' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। 'श्राव....स्यां' कर्त्तव्यम्। 'स्थाली....शम्' तद्भूतोपादानं माभूदिति श्रपयित्वेत्युच्यते। भर्जनैककपालयोरपि प्रोक्षणं भवति। अर्थवत्प्रौक्ष्येत्यविशेषोपदेशात्। 'धाना.....हीति' द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम्। 'स्थाली..... भ्यश्च' इति चतस्र आहुतयः। 'धाना....नाम्' एकाहुतिं जुहोति। 'घृता....नामिति' एतैस्त्रिभिर्मन्त्रैस्तिस्र आहुतयः। 'सर्व....लम्' पुरोडाशम्। 'ध्रुवा.....हेति' ततः स्थाली-पाकधाना सक्तुभ्यः स्विष्टकृत्। 'प्राश.....नामिति' एभिर्मन्त्रैः शेषं निगदव्याख्यातम्। 'यथा.....नामिति' एभिर्मन्त्रैः। यथाऽविनिक्तमिति। येषु देशेष्ववनेजनं कृतं तत्र तत्र बलिहरणम्। दर्व्योपघातमिति दर्व्योपहत्योपहत्येत्यर्थः। **उपपूर्वो हन्तिर्ग्रहणार्थः**। अथ स्रुवेणोपहत्याज्यमिति। 'अव.....नामितिं' प्रतिमन्त्रं प्रति बलिहरणं प्रलेखः। 'अञ्ज..... स्वेति' एभिर्मन्त्रैः यथालिङ्गं प्रतिबलिहरणं ददाति। 'सक्तु.......सृभिः' ऋग्भिः सक्तुशेषं तु यत् शूर्पे न्युप्योपनीतम्। 'स....द्वाभ्याम्' मन्त्राभ्याम्। 'दर्वीं.....च्छति' उल्काधारस्य। प्रतपनं चोल्कायामेव संनिधानात्। 'द्वार......सृभिः' ऋग्भिः। बहुवचनोपदेशाद्ब्रह्म-यजमानोल्काधाराश्च। 'अनु.....यण्याः' तत इति सक्तुभ्यो दर्व्योपहत्योपहत्या स्तमिते-ऽस्तमितेऽग्निपरिचरणं कृत्वा बलिं हरेदाग्रहायणीं यावत्। तावद्बलिहरणमवनेजन-दानप्रत्यवनेजनैः। 'तꣳ......च्छेयुः' अन्तरागमनप्रतिषेधश्च बलिहरण कर्तुरावसथ्यस्य। 'दर्व्या.........धाति' प्रत्यहम्। 'धानाः.........स्यूताः' अनवखण्डयन्तः। 'ततो.....जनम्' इत्युक्तार्थमेव॥१४॥

१. अथ अतः = आवसथ्याग्नि साध्य कर्मों का प्रसङ्ग चल रहा है। अतः प्रसङ्ग प्राप्त, श्रवणाकर्म = श्रवणाकर्म का कथन किया गया है।

२. श्रावण्यां पौर्णमास्याम् = प्रस्तुत श्रवणाकर्म श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन करना चाहिए।

३. स्थालीपाकं श्रपयित्वा = स्थालीपाक पकाकर, अक्षतधानाः च = और अक्षतधाना—तुष सहित जौ, का, एककपालं पुरोडाशं = एक कपाल पुरोडाश पका, उस पुरोडाश को, धानानां भूयसीः पिष्ट्वा = पर्याप्त—प्रचुर जौ के साथ पीस कर, आज्यभागौ—इष्ट्वा = आज्यभागाहुति (अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा) देकर, आज्याहुती जुहोति = आज्याहुति देवे।

४—५ अपश्वेत....... आदि दो मन्त्र आज्याहुति के लिए निम्न हैं—

(१) अपश्वेतपदाजहि पूर्वेण चापरेण च।

सप्त च वारुणीरिमाः प्रजाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा॥

(२) न वै श्वेतस्याध्याचारेऽहिर्ददर्श कंचन।

श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहा॥

६. विष्णवे श्रवणाय श्रावण्यै पौर्णमास्यै वर्षाभ्यश्च = विष्णु, श्रवण, श्रावणी पौर्णमासी और वर्षा के निमित्त, स्थालीपाकस्य जुहोति = स्थालीपाक की चार आहुतियां दें। आहुतिमन्त्र —

(१) विष्णवे स्वाहा। इदं विष्णवे न मम

(२) श्रवणाय स्वाहा। इदं श्रवणाय न मम

(३) श्रावण्यै पौर्णमास्यै स्वाहा। इदं श्रावण्यै पौर्णमास्यै न मम

(४) वर्षाभ्यः स्वाहा। इदं वर्षाभ्यः न मम

७. धानावन्तम् इति = 'धानावन्तम्' इस मन्त्र को पढ़कर, धानानाम् = एक धानाहुति दे। समग्र मन्त्र—

धानावन्तं करम्भिणम् अपूपवन्तमुक्थिनम्।

इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥ यजु० २०.२९

८. घृताक्तान् सक्तून् = घृतसिक्त सत्तुओं से, सर्पेभ्यो जुहोति = सर्पों को उद्दिष्ट कर अग्रिम सूत्र पठित मन्त्रों से हवन करे।

९. (१) आग्नेय पाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा

(२) श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा

(३) अभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा

१०. सक्तूहोम के अनन्तर, एककपालं = एक कपाल पुरोडाश से ध्रुवाय— इति = ध्रुवाय भौमाय स्वाहा—मन्त्रपूर्वक, सर्वहुतम् = सर्वहुत आहुति दे। यहाँ एक कपाल पुरोडाश का एक ही बार हवन किया जाता है। साथ ही शास्त्रीय परम्परानुसार अन्त में स्विष्टकृत् आहुति भी देनी होती है।

११. प्राशनान्ते = संस्रव प्राशन के पश्चात्, सक्तूनाम् एकदेशं = सत्तुओं का कुछ भाग (तीन बलि के लिए), शूर्पे न्युप्य = शूर्प—सूप में रखकर, उपनिष्क्रम्य बहिः शालायाः = शाला—मकान से बाहर निकलकर, स्थण्डिलम् उपलिप्य = स्थण्डिल—आंगन की भूमि को लीपकर, उल्कायां ध्रियमाणायां = जलती मशाल को दूसरे के द्वारा धारण करने पर उसके प्रकाश में, माअन्तरागमत् = सर्पो! मेरे और आवसथ्याग्नि के मध्य अथवा इस घर में कभी प्रविष्ट न होओ, इति उक्त्वा = ऐसा कहकर, वाग्यतः = वाग्यमन—मौन धारण कर, सर्पान् अवनेजयति = सर्पोद्देश्य से प्रोक्षण करे।

१२. अवनेजन—प्रोक्षण के समय पठितव्य तीन मन्त्र निम्न हैं—

(१) आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व

(२) श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व

(३) अभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व

१३. यथाऽविनिक्तं = जिस स्थान पर अवनेजन—प्रोक्षण किया हो उसी स्थान पर (उसे लांघे बिना ही), दर्व्योपघातं = दर्वी—चमस से ग्रहण कर, सक्तून् = सत्तुओं से, सर्पेभ्यः = सर्पों के लिए, बलि हरति = बलि प्रदान करे।

तीन मन्त्र पढ़कर तीन बार ही बलि दी जाती है। मन्त्र अग्रिम सूत्र १४ में पठित हैं—

१४. (१) आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपत एष ते बलिः

(२) श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपत एष ते बलिः

(३) अभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपत एष ते बलिः

१५. पूर्ववत् अवनेज्य = पूर्ववत् सूत्र १२ के सदृश अवनेजन-प्रोक्षण करके, (यह प्रोक्षण सूत्र १३—१४ द्वारा प्रदत्त बलि का किया जाना चाहिए),

कङ्कतैः = विकङ्कत वृक्ष की लकडी से बनी जिनमें एक ओर दांतें हों—ऐसी प्रादेशमात्र तीन कंघियों से, प्रलिखति = पूर्वदत्त तीनों बलियों को अग्रिम सूत्र १५ पठित मन्त्रों से (तीन बार––प्रत्येक बलि एक बार) कण्डूयन करे। कण्डूयनमन्त्र-

१६. (१) आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपते प्रलिखस्व

(२) श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपते प्रलिखस्व

(३) अभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपते प्रलिखस्व

१७. कण्डूयन के अनन्तर पूर्वोक्त 'आग्नेय.......' आदि मन्त्रों के अन्त में (अधिपते के अनन्तर) अञ्जस्व, अनुलिम्पस्व, स्रजोऽपिनह्यस्व को जोड़कर यथा क्रम—अञ्जनानुलेपन स्रजश्च = अञ्जन, अनुलेपन और माला यह तीनों पृथक्-पृथक् प्रत्येक बलि पर रखे।

१८. सक्तुशेषं = अवशिष्ट सत्तुओं (सूत्र १३–१४ द्वारा बलि प्रदान के पश्चात् बचे हुए) को, स्थण्डिले न्युप्य = सूत्र ११ द्वारा मकान के बाहर लीपी गई भूमि पर डालकर, उदपात्रेण = जलपात्र द्वारा, उपनिनीय०= जल सेचन कर, 'नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तिसृभिः उपतिष्ठते = नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' = आदि तीन मन्त्रों का पाठ करे। पाठ मन्त्र—

(१) नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।

ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥

(२) या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीरनु।

ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥

(३) ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।

येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥ यजु० १३.६-८

१९. स = वह गृहपति, यावत्कामयेत् = जितने गृह भाग में चाहे कि, सर्पा न अभ्युपेयुः इति = सर्प यहाँ न आवें—रहें, तावत् निवेशनं = उतने गृहभाग को, सन्ततया उद्धारया = जल की अजस्रधारा से, त्रिः परिषिञ्चन् = तीन बार सींचता हुआ, परीयाद् = परिक्रमा करे और अपश्वेतपदा जहि इति द्वाभ्याम् = सूत्र ४—५ में पठित 'अपश्वेतपदा०' एवं 'न वै श्वेतस्य०' इन दो मन्त्रों का पाठ भी करे।

२०. दर्वीं शूर्पं = दर्वी—चमस और शूर्प—सूप—छाज को, प्रक्षाल्य प्रतप्य = धोकर और तपाकर सूत्र ११ के अनुसार उल्का—मशाल धारण करने वाले व्यक्ति को, प्रयच्छति = दे दे।

२१. आपो हिष्ठेति तिसृभिः = 'आपो हिष्ठाः' इत्यादि तीन मन्त्रों का पाठ करते हुए (ब्रह्मा, यजमान एवं उल्काधार) जल द्वारा, द्वार देशे मार्जयन्ते = गृहद्वार पर मार्जन करें। मार्जनमन्त्र—

(१) आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।

महे रणाय चक्षसे॥

(२) यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव मातरः॥

(३) तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

आपो जनयथा च नः॥ यजु० ११.५०-५२

२२. एतं सक्तुशेषम् = होमावशिष्ट सत्तुओं को, अनुगुप्तं निधाय = सुरक्षित रखकर, ततः = उस सक्तूशेष से, अस्तमितेऽस्तमिते = प्रतिदिन सूर्यास्त होने पर, अग्निं परिचर्य = आवसथ्याग्नि की परिचर्या कर, दर्व्योपघातं सक्तून् = सत्तू दर्वी—चमस से ग्रहण कर, आ आग्रहायण्याः = आग्रहायणी पौर्णमासी तक, सर्पेभ्यो बलिं हरेत् = सर्पों के लिए बलि प्रदान करे।

२३. तं हरन्तम् = गृहस्वामी के बलि प्रदान करते समय, उसके साथ आवसथ्याग्नि के, अन्तरेण न गच्छेयुः = मध्य से कोई न जाए। यहाँ कुत्ते आदि का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह भी दोनों के मध्य से न निकलें।

२४. दर्व्याचमनं = दर्वी से आचमन कर, उससे प्रक्षाल्य निदधाति = मुख प्रक्षालित (धो) कर उसे रख दें।

२५. ब्रह्मा, यजमान एवं उल्काधार—ये तीनों—धानाः = धाना—भुने जौ, असꣳस्यूताः = दाँतों से बिना चबाए, प्राश्नन्ति = खायें।

२६. ततः = तदनन्तर—श्रवणाकर्म पूर्त्यवसर पर, ब्राह्मणभोजनम् = ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।

टिप्पणी-१. आश्वलायन, गोभिल, सांख्यायन, भारद्वाज आदि गृह्यसूत्रों में—'श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणाकर्म'—आश्व० गृ० २.१.१ श्रावणी पूर्णिमा के दिन ही

श्रवणा कर्म का विधान है। इसके लिए गौण काल का निर्देश नहीं है। अतः विकल्प रूप में इस कर्म को किसी अन्य दिवस में संपादित नहीं किया जा सकता है।

२. भारद्वाजगृह्यसूत्र....''अग्निमुपसमाधाय जयाभ्यातानान् राष्ट्रभृत इति हुत्वा'' —२.१ में जया, अभ्यातान एवं राष्ट्रभृत् संज्ञक आहुतियां भी विहित हैं।

३. सूत्र ११ में उपलेपन (उपलिप्य) एवं अवनेजन (अवनेजयति) दोनों क्रियाओं का कर्त्ता एक ही होता है। यहाँ पूर्वकालिक 'उपलिप्य' ल्यबन्त है। दृष्टव्य —'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले—पाणिनि ३.४.२१'

४. सूत्र १३—उपघातम्—यहाँ णमुल् प्रत्ययान्त **उपपूर्वक हन् धातु ग्रहणार्थक है।** अतः उपघातम् का अर्थ होगा—उपहत्य—उपहत्य।

इति द्वितीयकाण्डे चतुर्दशी कण्डिका ✪

पञ्चदशी कण्डिका

इन्द्रयज्ञः

प्रौष्ठपद्यामिन्द्रयज्ञः॥१॥ पायसमैन्द्रꣳश्रपयित्वाऽपूपांश्चापूपैः स्तीर्त्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोतीन्द्रायेन्द्राण्या अजायैकपदेऽहिर्बुध्न्याय प्रौष्ठपदाभ्यश्चेति॥२॥ प्राशनान्ते मरुद्भ्यो बलिꣳ हरत्यहुतादो मरुत इति श्रुतेः॥३॥ आश्वत्थेषु पलाशेषु मरुतोऽश्वत्थे तस्थुरिति वचनात्॥४॥ शुक्रज्योतिरिति प्रतिमन्त्रम्॥५॥ विमुखेन च॥६॥ मनसा॥७॥ नामान्येषामेतानीति श्रुतेः ॥८॥ इन्द्रं दैवीरिति जपति॥९॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥१०॥ १५॥

(कर्कः)—'प्रौष्ठ......यज्ञः' इन्द्रयज्ञ इति कर्मणो नामधेयम्। प्रौष्ठपदी च भाद्रपदी पौर्णमासी। 'पाय...... पाँश्च' ऐन्द्रग्रहणात् इन्द्राय स्वाहेति होमो लभ्यते। इह च पयस उपसर्जनार्थतया अपां क्षीरस्य च प्रणयनं क्रियते। 'अपू.....होति' इन्द्रायेन्द्राण्यै इत्येवमाद्याः। अपूपैः स्तरणमग्नेः। आज्याहुत्यन्ते इन्द्राय स्वाहेति पायसेन होमः। ततः स्विष्टकृदादि। 'प्राश....शेषु' कुत एतत् 'मरु......चनात्' 'शुक्रज्योतिरिति' एभिर्मन्त्रैर्नमस्कारान्तैः प्रतिमन्त्रम्। 'विमु..... नसा' बलिहरणम्। विमुखश्च- उग्रश्च

भीमश्चेत्यध्येतृणां प्रसिद्धः। 'नामा.....श्रुतेः' एषां मरुतामेतानि नामानि श्रूयन्ते। 'इन्द्रं..... पति' 'ततो......जनम्'।।१५।।

१. प्रौष्ठपद्याम् = भाद्रपदी पौर्णमासी के दिन, इन्द्रयज्ञः = इन्द्रयज्ञ नामक कर्म करना चाहिए। यह कर्म आवसथ्याग्नि में ही सम्पन्न होता है।

२. ऐन्द्रं = इन्द्र देवताक, पायसम् अपूपान् च = पायस—खीर और अपूप—मालपुए, श्रपयित्वा = पकाकर, अपूपैः स्तीर्त्वा = अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिण क्रम से मालपुए रखकर, आज्यभागौ—इष्ट्वा = आज्यभाग संज्ञक (अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा) आहुतियां देकर, इन्द्राय ....पदाभ्यः च इति = इन्द्र आदि के लिए, आज्याहुतीः जुहोति = आज्याहुति दे। पांच आज्याहुतियां निम्न हैं—

(१) इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम

(२) इन्द्राण्यै स्वाहा, इदमिन्द्राण्यै न मम

(३) अजायैकपदे स्वाहा, इदमजायैकपदे न मम

(४) अहिर्बुध्न्याय स्वाहा, इदमहिर्बुध्न्याय न मम

(५) प्रौष्ठपदाभ्यः स्वाहा, इदं प्रौष्ठपदाभ्यो न मम

उक्त पांच आज्याहुतियों के पश्चात्—इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम—मन्त्रपूर्वक पायस—खीर की एक आहुति इन्द्र के लिए देनी चाहिए तथा पायस की ही स्विष्टकृत् आहुति—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये न मम—मन्त्रपूर्वक देवे।

३. प्राशनान्ते = संस्रव प्राशन के पश्चात्, मरुद्भ्यः = मरुत्गण के निमित्त, बलिं हरति = बलि प्रदान करे, क्योंकि—अहुतादो मरुत इति श्रुतेः = मरुद्गण अहुताद—अहुतम् अदन्ति इति अहुतादः हैं। ऐसा शास्त्र वचन है।

४. मरुद्गण के लिए बलि—प्रदान—आश्वत्थेषु पलाशेषु = अश्वत्थ-पीपल के पत्तों पर करना चाहिए, क्योंकि—मरुतोऽश्वत्थे तस्थुरिति वचनात् = मरुद्गण पीपल पर निवास करते हैं।

५. शुक्रज्योतिः इति प्रतिमन्त्रम् = 'शुक्रज्योति०' इत्यादि मन्त्रपूर्वक एक—एक मन्त्र द्वारा एक—एक पीपल के पत्ते पर बलि रखे। छः पत्तों पर निम्न छः मन्त्रों के अन्त में 'नमः' लगाकर बलि प्रदान करे। तद्यथा—

(१) शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माꣳश्च। शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यꣳहा नमः॥ इदं शुक्रज्योतिषे चित्रज्योतिषे सत्यज्योतिषे ज्योतिष्मते शुक्राय ऋतपसेऽत्यहꣳसे च न मम।

(२) ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च। मितश्च संमितश्च सभरा नमः॥

इदमीदृशे अन्यादृशे सदृशे प्रतिसदृशे मिताय संमिताय सभरसे च न मम।

(३) ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च। धर्त्ता च विधर्ता च विधारयो नमः॥

इदमृताय सत्याय ध्रुवाय धरुणाय धर्त्रे विधर्त्रे विधारयाय च न मम।

(४) ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च। अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणो नमः॥ इदमृतजिते सत्यजिते सेनजिते सुषेणाय अतिमित्राय दूरे अमित्राय गणाय च न मम।

(५) ईदृक्षासऽएतादृक्षासऽऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसादृक्षासऽएतन।
मितासश्च सम्मितासो नोऽअद्य सभरसो मरुतो यज्ञेऽअस्मिन् नमः॥

इदमीदृक्षेभ्य एतादृक्षेभ्यः सदृक्षेभ्यः प्रतिसदृक्षेभ्यो मितेभ्यः सम्मितेभ्यः सभरेभ्यो मरुद्भ्यश्च न मम।

(६) स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च। क्रीडी च शाकी चोज्जेषी नमः ॥ इदं स्वतवसे प्रघासिने सांतपनाय गृहमेधिने क्रीडिने शाकिने उज्जेषिणे च न मम–यजु० १७.८०-८५

उक्त छः मन्त्रों द्वारा 'नमः' के पश्चात् बलि रखकर—'इदम्' आदि का पाठ करना चाहिए। मूल मन्त्र नमः से पूर्व तक ही हैं। परम्परानुरोध से बलि प्रदानार्थ यहाँ 'नमः' पद मन्त्र के साथ संयुक्त किया गया है।

६–७ विमुखेन च = पीपल के छः पत्तों पर उक्त छः मन्त्रों द्वारा मरुद्गण के लिए बलि प्रदान करके—विमुख संज्ञक यजु० ३९.७ मन्त्र द्वारा, मनसा = मन से बलि प्रदान करे। अर्थात्—यह सातवीं बलि न तो पीपल के पत्ते पर द्रव्य रूप में दी जाती है और न ही मन्त्रोच्चारण करना होता है, अपितु यजमान विमुख मन्त्र का मन में पाठ करता है, क्योंकि द्रव्य त्याग मानसिक है। अतः मन्त्रान्त में इदम् आदि भाग का जप भी मन में ही करना चाहिए। विमुख संज्ञकमन्त्र—

(७) उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च। सासहवाँ चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा नमः॥

इदमुग्राय भीमाय ध्वान्ताय धुनये सासहवतेऽभियुग्वने विक्षिपाय च न मम।

८. एषाम् = मरुद्गण के, एतानि = यह शुक्रज्योति० आदि छः (यजु० १७.८०–८५) तथा विमुख (यजु० ३९.७) मन्त्र में 'शुक्रज्योति' आदि, नामानि इति श्रुतेः = नाम हैं ऐसा शास्त्र वचन है। प्रत्येक मन्त्र में सात नाम हैं। इस प्रकार सात मन्त्रों में ७ × ७ = ४९ नाम परिगणित हैं।

९. इन्द्रं दैवीरिति = मानसिक बलि प्रदान के अनन्तर—'इन्द्रं दैवीः' इस मन्त्र का, जपति = जप करे। जपमन्त्र—

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानो-ऽभवन्। एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु॥ यजु०१७.८६

१०. ततः = तदनन्तर, ब्राह्मण भोजनम् = ब्राह्मण को भोजन करावे।

टिप्पणी–१. अश्वत्थ—यः श्वो न स्थास्यतीति-अश्वत्थ क्षणभङ्गुरता एवं चञ्चलता का प्रतीक है। 'यस्मान्मरुत अश्वत्थे तस्थुः स्थितवन्तः'। अतएवाश्वत्थ-पत्राणां सदैव चाञ्चल्यम्'—इस गदाधर के वचन अनुसार—मरुद्गण की अवस्थिति के कारण ही अश्वत्थपत्रों में सार्वकालिक चञ्चलता है।

२. 'प्राक्संस्थान्युदक्संस्थानि वा सप्ताश्वत्थपत्राणि कृत्वा तेषु मरुद्भ्यो बलिहरणं पायसशेषेणैव स्रुवेण शुक्रज्योतिरिति षड्भिरुग्रश्चेत्यनेन सप्तमेन च प्रतिमन्त्रम्'—इस गदाधर वचन के अनुसार वह (गदाधर) सात पत्तों पर बलि प्रदान मानते हैं।

विश्वनाथ ने–'विमुखेन' मुखव्यापाररहितेन। पुनः 'मनसा' मनोव्यापार सहितेन बलिं दद्यादिति—भी मनोव्यापार पूर्वक बलि प्रदान का कथन किया है।

३. गदाधर एवं विश्वनाथ ने ब्राह्मणभोजनानन्तर 'वैश्वदेव' का विधान किया है।

इति द्वितीयकाण्डे पञ्चदशी कण्डिका ✪

षोडशी कण्डिका

आश्वयुजी कर्म

आश्वयुज्यां पृषातकाः॥१॥ पायसमैन्द्रꣳश्रपयित्वा दधिमधुघृतमिश्रं जुहोतीन्द्रायेन्द्राण्या अश्विभ्यामाश्वयुज्यै पौर्णमास्यै शरदे चेति॥२॥ प्राशनान्ते दधिपृषातकमञ्जलिना जुहोति ऊनं मे पूर्यतां पूर्णं मे मा व्यगात्स्वाहेति॥३॥ दधिमधुघृतमिश्रममात्या अवेक्षन्त आयात्विन्द्र इत्यनुवाकेन॥४॥ मातृभिर्वत्सान्सꣳसृज्य ताꣳरात्रिमाग्रहायणीं च॥५॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥६॥ १६॥

(कर्कः)—'आश्व.....तकाः' पृषातका इति कर्मणो नामधेयम्। तच्चाश्वयुज्यां पौर्णमास्यां भवति।' पाय.....न्द्राण्या' इत्येवमाद्याः पञ्चाहुतयः। ततः स्विष्टकृदादि। 'प्राश.....मिति' एतेन मन्त्रेण। दधिपृषातकशब्देन पृषदाज्यमभिधीयते। 'दधि......केन' दधिमधुघृतमिश्रः पायसः अमात्या यजमानगृह्याः। 'मातृ......रात्रिम्' तस्यां रात्रौ मातृभिर्वत्साः संसृष्टा एव वसन्ति। अधिकारमुपजीवन्नाह—'आग्र.....च' रात्रिं वत्ससंसर्गः। ततो ब्राह्मणभोजनम्॥१६॥

१. आश्वयुज्यां = आश्वयुजी—आश्विन पूर्णिमा के दिन, पृषातकाः = पृषातक संज्ञक कर्म करना चाहिए।

२. ऐन्द्रं = इन्द्र देवताक, पायसम् = पायस—खीर, श्रपयित्वा = पकाकर उसमें, दधिमधुघृतमिश्रं = दधि, मधु और घृत मिलाकर, इन्द्राय.......चेति = इन्द्र, इन्द्राणी, अश्विनौ, आश्वयुजी पूर्णिमा और शरद् के निमित्त पांच, जुहोति = आहुतियां देवे।

(१) इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम

(२) इन्द्राण्यै स्वाहा, इदमिन्द्राण्यै न मम

(३) अश्विभ्यां स्वाहा, इदमश्विभ्यां न मम

(४) आश्वयुज्यै पौर्णमास्यै स्वाहा, इदमाश्वयुज्यै पौर्णमास्यै न मम

(५) शरदे स्वाहा, इदं शरदे न मम

३. प्राशनान्ते = संस्रव प्राशन के अनन्तर, दधिपृषातकम् = दधिमिश्रित पृषातक का, ऊनं मे.......स्वाहेति = ऊनं मे, मन्त्र पढ़कर, अञ्जलिना = हाथ से, जुहोति = होम करे। होम मन्त्र—

ऊनं मे पूर्यतां पूर्णं मे मा व्यगात् स्वाहा। इदमिन्द्राय न मम

४. अमात्याः = परिवारीजन (अमा = गृहं तत्र भवा अमात्याः—भ्रातृपुत्रादयः), आयात्विन्द्र इत्यनुवाकेन = 'आ यातु.....सदा नः'—यजु० २०.४७—५४ इस अनुवाक का पाठ करते हुए, दधिमधुघृतमिश्रम् अवेक्षन्ते = दधि—मधु—घृत मिश्रित हुतशेष का अवेक्षण—(देखभाल) करें। अनुवाक—

(१) आ यात्विन्द्रोऽवसऽउप नऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात्॥
(२) आ नऽइन्द्रो दूरादानऽआसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून्॥
(३) आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ॥
(४) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳहवेहवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳस्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः॥
(५) इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँऽअवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषोऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥
(६) तस्य वयꣳसुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँऽइन्द्रोऽअस्मेऽआराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु॥
(७) आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूर रोमभिः।
मा त्वा के चिन्नि यमन्वि न पाशिनोऽति धन्वेव ताँऽइहि॥
(८) एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासोऽअभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

५. तां रात्रिम् = जिस दिन आश्वयुजी कर्म सम्पन्न हुआ हो, उस रात्रि में, वत्सान् = बछड़ों को, मातृभिः = उनकी माताओं के साथ, संसृज्य = संसृष्ट कर देना चाहिए अर्थात् संपूर्ण रात्रि बछड़े गौ से अलग न किए जाएं, आग्रहायणीं च = और आग्रहायणी कर्म के दिन—आग्रहायणी की रात्रि में भी बछड़ों को गोओं से मिला देना चाहिए और रात्रि—भर अपनी माताओं के साथ रहें।

६. ततः = तदनन्तर अर्थात् आश्वयुजी पूर्णिमा के अगले दिन (क्योंकि यह कर्म रात्रि में बछड़ों के माता के साथ रहने के पश्चात् सम्पन्न होता है। अतः कार्तिक मास के प्रथम दिवस), ब्राह्मणभोजनम् = ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।

टिप्पणी–१. पृषातक—घृतमिश्रित दुग्ध अथवा घृतमिश्रित दधि को पृषातक कहा जाता है। यतः आश्वयुजी का हव्य यह पृषातक ही है, अतः इस कर्म को भी पृषातक कह दिया गया है। कर्म प्रदीप के अनुसार—

पयो यदाज्यसंयुक्तं तत् पृषातकमुच्यते।

दध्येके तदुपासाद्य कर्त्तव्यः पायसश्चरुः।। ३.७.१२

२. हरिहर एवं विश्वनाथ ने इन्द्र आदि के लिए पांच पृषातक आहुतियों के पूर्व दो आज्यभाग संज्ञक आहुतियां स्वीकार की हैं।

३. ऊनं मे पूर्यतां—मन्त्र में देवता ज्ञापक पद नहीं है। अतः द्रव्य त्याग के अनन्तर न मम पढ़ते समय किस देवता का स्मरण हो यह स्पष्ट नहीं है। हरिहर ने 'प्रजापति' तथा जयराम एवं विश्वनाथ ने अग्नि देवता स्वीकार किया है। गदाधर ने प्रकृत प्रकरण को आधार मानकर मन्त्र का देवता इन्द्र माना है।

'तद् येऽनादिष्टदेवता मन्त्रास्तेषु देवतोपपरीक्षा। यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद्देवता भवतीति'—निरुक्त ७.१.४ इस यास्कीय वचनानुरोध से प्रकृत प्रसङ्ग के अनुसार हमने यहाँ इन्द्र देवता मानकर द्रव्य त्याग के समय स्वाहा के पश्चात्—'इदमिन्द्राय न मम' पाठ रखा है। आश्वयुजी कर्म के अतिरिक्तअन्यत्र प्रसङ्गानुकूल इस मन्त्र का देवता अग्नि, प्रजापति होना संभव है।

४. कर्म के अन्त में अर्थात् 'ऊनंमे पूर्यतां' के अनन्तर एक आहुति स्विष्टकृत् अग्नि के लिए भी देनी चाहिए।

५. यह कर्म आवसथ्याग्नि साध्य है।

६. हरिहर ने वत्ससंसर्ग से पूर्व 'वैश्वदेव' का विधान स्वीकार किया है।

इति द्वितीयकाण्डे षोडशी कण्डिका

सप्तदशी कण्डिका

सीतायज्ञः

अथ सीतायज्ञः॥१॥ व्रीहियवानां यत्र यत्र यजेत तन्मयꣳस्थालीपाकꣳ श्रपयेत्॥२॥ कामादीजानोऽन्यत्रापि व्रीहियवयोरेवान्यतर स्थालीपाकꣳ श्रपयेत्॥३॥ न पूर्वचोदितत्वात्संदेहः॥४॥ असंभवाद्विनिवृत्तिः॥५॥ क्षेत्रस्य पुरस्तादुत्तरतो वा शुचौ देशे कृष्टे फलानुपरोधेन॥६॥ ग्रामे वोभयसंप्रयोगादविरोधात्॥७॥ यत्रश्रपयिष्यन्नुपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय तन्मिश्रैर्दर्भैः स्तीर्त्वाऽऽज्याभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति॥८॥ पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा। यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन्कर्मणि वृत्रहन्। तन्मे सर्वꣳ समृध्यतां जीवतः शरदः शतꣳस्वाहा। संपत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यꣳश्रैष्ठ्यꣳश्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा। यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीता सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा॥ अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलमालिनीमुर्वरामस्मिन्कर्मण्युपह्वये ध्रुवाꣳसा मे त्वनपायिनी भूयात्स्वाहेति॥९॥ स्थालीपाकस्य जुहोति सीतायै यजायै शमायै भूत्या इति॥१०॥ मन्त्रवत्प्रदानमेकेषाम्॥११॥ स्वाहाकारप्रदाना इति श्रुतेर्विनिवृत्तिः॥१२॥ स्तरणशेष (कुशे?कूर्चे) षु सीतागोप्तृभ्यो बलिꣳ हरति पुरस्ताद्ये त आसते सुधन्वानो निषङ्गिणः। ते त्वा पुरस्ताद्गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति॥१३॥ अथ दक्षिणतोऽनिमिषा वर्मिण आसते। ते त्वा दक्षिणतो गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति॥१४॥ अथ पश्चात् आभुवः प्रभुवो भूतिर्भूमिः पार्ष्णिः शुनङ्कुरिः। ते त्वा पश्चाद्गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम ऐषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति॥१५॥ अथोत्तरतो भीमा वायुसमा जवे। ते त्वोत्तरतः क्षेत्रे खले गृहेऽध्वनि गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति॥१६॥ प्रकृतादन्यस्मादाज्यशेषेण च पूर्ववद्बलिकर्म॥१७॥ स्त्रियश्चोपयजेरन्नाचरितत्वात्॥१८॥ सꣳस्थिते कर्मणि ब्राह्मणान्भोजयेत्सꣳस्थिते कर्मणि ब्राह्मणान्भोजयेत्॥१०॥१७॥

(कर्कः)—'अथ सीतायज्ञः' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। स चायं कृष्यादि-प्रवृत्तस्यैव भवति। 'व्रीहि......येत्' व्रीहिकाले व्रीहीन् यवकाले यवान्। 'कामा......येत्' ततोऽन्यत्रापि यागं कुर्वन्पक्षादिप्रभृतिषु व्रीहियवयोरेवान्यतरमिच्छया स्थालीपाकं श्रपयेत्। 'न पू......संदेहः' नैवात्र संदेहः पूर्वे चोदितमेवैतत् व्रीहीन् यवान्वा हविषी इति। अतो न वक्तव्यमेतत्। 'अस....निवृत्तिः', यावस्य चरोरसंभवाद्विनिवृत्तिरधस्तनस्य शास्त्रान्तरस्य तेन पुनरारम्भः। अनवस्रावितान्तरोष्मपाकविशदविषयसिद्धे तण्डुलपाके चरुशब्दस्य प्रयोगप्रत्ययादिति। 'क्षेत्र......रोधेन' कर्त्तव्यः। 'ग्रामे......गात्' ग्रामे वा कर्त्तव्यम्। उभयं हि संप्रयोक्तुं शक्यते। फलानुपरोधः कृष्टं च न चात्र विरोधः। अतो वा शब्दो विकल्पार्थः।'यत्र....होति' उपलेपनोद्धतावोक्षितग्रहणं कृष्टेऽपि यथास्यादिति। तन्मिश्रैर्दर्भैः स्तरणं कर्त्तव्यम्। व्रीहिकाले व्रीहिसस्यमिश्रैर्यवकाले यवसस्यमिश्रैः स्तरणम्। आज्यभागोत्तरकालमाज्याहुतीर्जुहोति। 'पृथि.....दिश' इत्यादि 'स्थालीपाकस्य जुहोति' इत्यन्तम्। स्थालीपाकस्येत्यवयवलक्षणा षष्ठी। 'सीता.....केषाम्' एकेषामा-चार्याणां मतं मन्त्रवदेव प्रदानं भवति न स्वाहाकारेण। 'स्वाहा.......श्रुतेः' श्रुतौ तु स्वाहाकारप्रदानता। वषट्कारः प्रवर्तते। याज्यापुरोनुवाक्यत्वे हि वषट्कारस्य श्रवणम्। तस्मात्स्वाहाकारोऽप्यत्र (न) भवति। विनिवृत्तिरधस्तनस्य पक्षस्य मन्त्रवत्प्रदान-मित्यस्य। अस्मिन्नवसरे लाङ्गलयोजनदेवताभ्यस्तद्भूतोपादानात्तेन स्थालीपाकेन होमः स्थालीपाकहोमाधिकरात्। ततः स्विष्टकृदादि। 'स्तर......आसत०' इत्येवमादिभिर्मन्त्रैः। स्तरणे ये शेषभावं गतास्त एव कुशास्तेषु बलिं हरति पुस्ताद्ये त आसत इत्येवमादिभिर्मन्त्रैः। 'अथ.....सते०' इत्यनेन मन्त्रेण।' 'अथ पश्चादाभुवः प्रभुव०' इत्यनेन मन्त्रेण। 'अथोत्तरतो भीमा वायुसमा जवे०' इत्यनेन मन्त्रेण। 'प्रकृ......कर्म' कर्त्तव्यम्। 'स्त्रिय.....त्वात्' स्त्रियश्च बलिकर्म कुर्युः। कुत एतत् आचरितत्वात् आचरन्ति हि स्त्रियो बलिकर्म। 'सꣳस्थि.....जयेत्'।।१७।।

१. अथ = कृषि कर्म में प्रवृत्त, कृत आवसथ्याधान व्यक्ति के लिए, सीतायज्ञः = सीतायज्ञ का विधान करते हैं।

२. व्रीहियवानां = व्रीहि अथवा यव में से, यत्र यत्र यजेत् = जब–जब अर्थात् व्रीहिकाल-शरद् ऋतु में अथवा यवकाल-वसन्त ऋतु में यज्ञ करे तब, तन्मयं = उससे अर्थात् शरद् ऋतु में व्रीहि और वसन्त में यव का, स्थालीपाकꣳ श्रपयेत् = स्थालीपाक-चरु तैयार करे।

३. अन्यत्र अपि = सीतायज्ञ से अन्य अवसर-पक्षादि कर्म में, कामाद् ईजानः = इच्छानुसार यज्ञ करते समय भी, व्रीहियवयोरेवान्यतरं = व्रीहि और यव में से किसी एक का, स्थालीपाकं = स्थालीपाक, श्रपयेत् = पकावे।

४. पूर्वचोदितत्वात् = 'व्रीहीन् यवान् वा हविषी'—परिभाषा सूत्रोपदिष्ट होने से ब्रीहि अथवा यव के हव्य साधनत्व होने में, संदेहो न = संदेह नहीं है। यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि—जब ब्रीहि एवं यव हव्य साधन हैं तब पुन: कथन क्यों किया जा रहा है? समाधान—

५. असम्भवाद् = भीतर-भीतर गर्मी से पके और अनवस्रावित—बिना माँड निकाले पके चावलों के—स्थालीपाक में ही चरु शब्द प्रसिद्ध है। यव के विषय में ऐसा असम्भव है। अत: विनिवृत्ति: = वसन्त में सम्पाद्यमान सीतायज्ञ आदि के समय यव-चरु की निवृत्ति हो जाती है, जबकि सूत्र २ में 'तन्मयं स्थालीपाकꣳ श्रपयेत्' के अनुसार वसन्त में यव-चरु विहित है। अत: सूत्र ३ में 'अन्यतर स्थालीपाकं' से स्पष्ट होता है कि चरु तो व्रीहि का ही होगा और यव को पीसकर ही हव्य बनेगा।

सीतायज्ञ किस स्थान पर सम्पन्न किया जाए? अग्रिम दो सूत्रों में इसका विधान किया जा रहा है—

६. क्षेत्रस्य पुरस्ताद् उत्तरतो वा = खेत के पूर्व अथवा उत्तर भाग में, कृष्टे शुचौ देशे = जुते हुए पवित्र-स्वच्छ स्थान पर जहाँ, फलानुपरोधेन = फल-फसल की हानि न हो—ऐसे स्थान पर सीतायज्ञ करना चाहिए।

७. ग्रामे वा = अथवा ग्राम में सीतायज्ञ का अनुष्ठान करे, क्योंकि—उभयसंप्रयोगात् = ग्राम में भी दोनों (हल से भूमि जोतना, फल-फसल की अहानि प्रयोग संभव हैं, अविरोधात् = और इसमें कोई विरोध भी नहीं है।

८. यत्र श्रपयिष्यन् = जहाँ क्षेत्र अथवा ग्रम में स्थालीपाक—चरु पकाने की इच्छा हो (स्थालीपाक तैयार करे) वहाँ, उपलिप्ते = भूमि को गोमय एवं जल से लीपकर, उद्धतौ = स्फ्य से भूमि उल्लिखित कर, अवोक्षिते = जल प्रोक्षण करके, अग्निम् उपसमाधाय = आवसथ्याग्नि को स्थापित कर, तन्मिश्रैर्दर्भै: = व्रीहि अथवा यव (समयानुसार) मिश्रित दर्भों से, स्तीर्त्वा = अग्नि का परिस्तरण करके, आज्यभागौ इष्ट्वा = आज्यभाग (अग्नि-सोम) आहुतियां देकर अग्रिमसूत्रोक्त पाँच, आज्याहुती: जुहोति = आज्याहुतियां दें। आज्याहुतिमन्त्र—

९. (१) पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृत्ताः।

तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा॥

(२) यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन्कर्मणि वृत्रहन्।

तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतꣳस्वाहा॥

(३) संपत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिज्यैष्ठ्यꣳश्रैष्ठ्यꣳश्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा॥

(४) यस्याभावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्॥

इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीता सा मे त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा॥

(५) अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता।

खलमालिनीमुर्वरामस्मिन्कर्मण्युपह्वये ध्रुवा सामे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा॥

१०. स्थालीपाकस्य = स्थालीपाक की, सीतायै....... भूत्याइति = सीता आदि के निमित्त चार, जुहोति = आहुतियां दे—

(१) सीतायै स्वाहा, इदं सीतायै न मम

(२) यजायै स्वाहा, इदं यजायै न मम

(३) शमायै स्वाहा, इदं शमायै न मम

(४) भूत्यै स्वाहा, इदं भूत्यै न मम

११. एकेषाम् = कतिपय आचार्यों का मत है कि—मन्त्रवत् प्रदानम् = यथामन्त्र ही होम-द्रव्य त्याग करे अर्थात् मन्त्रान्त में 'स्वाहा' पद प्रयुक्त न करे, क्योंकि—

१२. स्वाहाकारप्रदाना इति श्रुतेः = स्वाहापूर्वक प्रदान तो श्रौत कर्मों में कर्त्तव्य है। सीतायज्ञ स्मार्त है। विनिवृत्तिः = उक्त नियम यहाँ विनिवृत्त हो जाता है।

'वषट्कारेण वा स्वाहाकारेण वा देवेभ्योऽन्नं प्रदीयते'—इस सामान्य परिभाषानुसार यहाँ वषट्कार की प्रवृत्ति नहीं है, क्योंकि—याज्यापुरोनुवाक्या होने पर वषट्कार प्रवृत्त होता है। अतः वषट् के साथ पढ़ने से स्वाहा की भी प्रवृत्ति नहीं होगी। सूत्रकार ने विनिवृत्ति कहकर—'मन्त्रवत्प्रदानम्' पक्ष का खण्डन किया है, क्योंकि—स्मार्त कर्मों में भी स्वाहापूर्वक प्रदान—द्रव्य त्याग का विधान है। तद्यथा—

स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम्।

हन्तकारो मनुष्याणां स्वधाकारः स्वधाभुजाम्॥

कर्क आदि भाष्यकारों ने—'अथ सीतायज्ञः' सूत्र से अतिदिष्ट लाङ्गलयोजन देवता—इन्द्र आदि के लिए स्थालीपाक होम का विधान किया है। अतः इन्द्र आदि का स्थालीपाक होम में अधिकार है। यह आठ आहुतियां पूर्व में २.१३.२ पर उद्धत हैं।

१३. स्तरणशेष कुशेषु = अग्नि-परिस्तरण (सूत्र ८) में शेषभाव—अङ्गभाव को प्राप्त, अर्थात्—व्रीहि/यव मिश्रित कुशाएं जो परिस्तरण के पश्चात् अवशिष्ट रह गई हों, उन पर—सीतागोप्तृभ्य: = सीता-जुती हुई भूमि के रक्षक देवताओं के लिए, बलिं हरति = बलि प्रदान करें—

(१) पूर्व दिशा में—**पुरस्ताद्ये त आसते सुधन्वानो निषङ्गिणः। ते त्वा पुरस्ताद् गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नमः। एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीमम्॥ इदं सुधन्वभ्यो निषङ्गिभ्यो न मम।**

१४. (२) दक्षिण दिशा में—**अथ दक्षिणतोऽनिमिषा वर्मिण आसते। ते त्वा दक्षिणतो गोपायन्त्वप्रमत्ता.....नमः। एषां.....मम्॥ इदम् अनिमिषेभ्यो वर्मिभ्यो न मम।**

१५. (३) पश्चिम दिशा में—**अथ पश्चात् आ भुवः प्रभुवो भूतिर्भूमिः पार्ष्णिः शुनङ्कुरिः। ते त्वा पश्चाद् गोपा.....नमः। एषां.....मम्॥ इदमाभूभ्यः प्रभूभ्यो भूत्यै भूम्यै पार्ष्ण्यै शुनङ्कुर्यै न मम।**

१६. (४) उत्तर दिशा में—**अथोत्तरतो भीमा वायुसमा जवे। ते त्वोत्तरतः क्षेत्रे खलेगृहेऽध्वनि गोपा....नमः। एषां....मम्॥ इदं भीमेभ्यो वायुसमाजवेभ्यो न मम।**

१७. प्रकृताद् अन्यस्माद् = प्रकृत—प्रस्तुत व्रीहि अथवा यव के चरु के अतिरिक्त जो पका हुआ चरु, आज्यशेषेण च = और होमावशिष्ट आज्य (दोनों को मिलाकर) उससे, पूर्ववत् बलिकर्म = लाङ्गयोजनवत् अर्थात् लाङ्गलयोजन देवताओं (२.१३.२ में वर्णित) के लिए बलि प्रदान करे।

१८. स्त्रियः च = और कुल की स्त्रियाँ भी इन्द्र आदि लाङ्गलयोजन एवं क्षेत्रफल आदि देवताओं के लिए, उपयजेरन् = बलि कर्म सम्पन्न करें, आचरितत्वात् = क्योंकि पूर्वजों का आचरण इसी प्रकार रहा है।

१९. सᳫंस्थिते कर्मणि = कर्म के सम्पन्न होने पर, ब्राह्मणान् भोजयेत् = ब्राह्मण (न्यूनातिन्यून तीन) भोजन करावे। वाक्य की पुनरुक्ति काण्ड समाप्ति की बोधक है।

इति द्वितीयकाण्डे सप्तदशी कण्डिका

समाप्तञ्चेदं द्वितीयं काण्डम्

अथ तृतीयकाण्डम्

नवान्नप्राशनम्

प्रथमा कण्डिका

अनाहिताग्नेर्नवप्राशनम्॥१॥ नवꣳस्थालीपाकꣳश्रपयित्वाज्यभागाविष्ट्वाज्याहुती जुहोति। शतायुधाय शतवीर्याय शतोतये अभिमातिषाहे। शतं यो नः शरदोऽजीजानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा स्वाहा। ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तराद्यावापृथिवी वियन्ति। तेषां योऽज्यानिमजीजिमावहात्तस्मै नो देवाः परिधत्तेह सर्वे स्वाहेति॥२॥ स्थालीपाकस्याग्रयणदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति स्विष्टकृते च स्विष्टमग्ने अभितत् पृणीहि विश्वांश्च देवः पृतना अविष्यत्। सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद्ध्येह्यजरन्न आयुः स्वाहेति॥३॥ अथ प्राश्नाति। अग्निः प्रथमः प्राश्नातु स हि वेद यथा हविः। शिवाअस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः। भद्रान्न श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयावशेन समशीमहि त्वा। स नो मयोऽभूः पितो आविशस्व शंतोकाय तनुवे स्योन इति॥४॥ अन्नपतीयया वा॥५॥ अथ यवानामेतमुत्यं मधुना संयुतम्॥ यवꣳसरस्वत्या अधिवनाय चकृषुः इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन्मरुतः सुदानव इति॥६॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥७॥१॥

(कर्कः)–'अना......शनम्' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। **अनाहिताग्निरवैतानिकः**। नवप्राशनमिति कर्मणो नामधेयम् अन्वर्थसंज्ञाकरणाच्च कृत्वैतन्नवं प्राश्यते नाकृत्वा। न चैतदाग्रयणशब्दवाच्यम् अतः पौर्णमास्याममावास्यायामिति नियमो न भवति। औचित्याच्छरद्वसन्तौ तु भवतः॥ 'नव......येति' द्वे प्रतिमन्त्रम् 'स्थाली....मग्ने' इति। अतश्च स्विष्टकृद्धोमस्य पूर्वं पश्चाच्च स्विष्टमग्न इत्याज्याहुतिहोमः। ततो महाव्याहृत्यादि। 'अथ प्राश्नाति' अग्निः प्रथम प्राश्नात्वित्यनेन मन्त्रेण। यत्र हुतशेषप्राशनं तत्रायं गुणविधिः। 'अन्न......वा' प्राशनं कर्त्तव्यम् अन्नपतिशब्दो यस्यां विद्यते सेयमन्नपतीया छप्रत्ययं ह्यत्र स्मरन्ति॥ अत्र यवानां प्राशने मन्त्रमाह। 'एतमुत्यमिति.'। 'ततो.....भोजनम्'॥ प्रथमा कण्डिका॥१॥

१. अनाहिताग्नेः = अनाहिताग्नि (**जिसने गार्हपत्य आदि अग्नियों काआधान नहीं किया है, इसे आवसथिक-औपासनिक तथा अवैतानिक भी कहते हैं।**) व्यक्ति के लिए शरद् एवं वसन्त ऋतु में उत्पन्न, नवप्राशनम् = नवान्न-प्राशन की विधि वर्णित है—

२. नवं = नवीन उत्पन्न अन्न-शरद् में ब्रीहि तथा वसन्त में यव का, स्थालीपाकं = स्थालीपाक-चरु, श्रपयित्वा = पकाकर, आज्यभागौ = आज्यभाग संज्ञक (अग्नि-सोम), इष्ट्वा = आहुति देकर, आज्याहुतीजुहोति = दो आज्याहुति यां दे। आज्याहुति-मन्त्र

(क) शतायुधाय शतवीर्याय शतोतये अभिमातिषाहे।

शतं यो नः शरदोऽजीजानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा स्वाहा॥ इदमिन्द्राय न मम

(ख) ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तराद्यावापृथिवी वियन्ति।

तेषां योऽज्यानिमजीजिमावहात्तस्मै नो देवा परिधत्तेह सर्वे स्वाहा॥ इदं सर्वेभ्यो देवेभ्यो न मम

३. स्थालीपाकस्य = स्थालीपाक से, आग्रयणदेवताभ्यः = आग्रयण देवताओं इन्द्राग्नी, विश्वेदेवा, द्यावापृथिवी के निमित्त, हुत्वा = होम करके, स्विष्टकृते च = और स्विष्टकृद् अग्नि के लिए-स्विष्टमग्ने-स्वाहेति = स्विष्टम् अग्ने इस मन्त्र द्वारा जुहोति = आज्याहुति दे। होम विधि एवं मन्त्र—

१. स्थालीपाक होम—आग्रयण देवतार्थ—

(क) इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा, इदमिन्द्राग्नीभ्यां न मम

(ख) विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम

(ग) द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा, इदं द्यावापृथिवीभ्यां न मम

२. स्विष्टकृद् होम—घृताहुति—

स्विष्टमग्ने अभितत् पृणीहि विश्वांश्च देवः पृतना अविष्यत्।

सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद्ध्येह्यजरन्न आयुः स्वाहा॥

४. अथ प्राश्नाति = होम के अनन्तर संस्रव प्राशन करे, किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि संस्रव प्राशन से पूर्व होम में सर्वत्र कर्त्तव्य महाव्याहृत्यादि

प्राजापत्यान्त होम की नौ आहुतियाँ देकर ही संस्रव प्राशन करना चाहिए। संस्रव प्राशन के समय निम्न दो मन्त्रों का पाठ करना चाहिए—

(क) अग्निः प्रथम प्राश्नातु स हि वेद यथा हविः।

शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः॥

(ख) भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वया वशेन समशीमहि त्वा।

स नो मयोऽभूः पितो आविशस्व शंतोकाय तनुवे स्योनः॥

५. अन्नपतीयया वा = अथवा उक्त दो मन्त्रों के विकल्प में, अन्नपति—जिस ऋचा का देवता हो अथवा जिसमें अन्नपति शब्द पठित हो—ऐसी अन्नपते आदि किसी ऋचा का पाठ करके संस्रव प्राशन करे—

अन्नपति ऋचा-

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यन मीवस्य शुष्मिणः।

प्र प्र दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ यजु० ११.८३

६. अथ यवानाम् = यदि याव-यव-जौ से बना संस्रव प्राशन करना हो तब इस मन्त्र विशेष का पाठ करना चाहिए—

एतमु त्यं मधुना संयुतम्॥ यवं सरस्वत्या अधिवनाय चकृषुः।

इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन्मरुतः सुदानवः॥

७. ततो ब्राह्मणभोजनम् = तदनन्तर कर्म समाप्त्यनन्तर ब्राह्मण को भोजन करावे।

टिप्पणी—१. नवान्नप्राशन कर्म के लिए पौर्णमासी—अमावस्या आदि कोई विशेष दिन विहित नहीं है। नवान्न (ब्रीहि—यव आदि) गृह आने पर सुविधानुसार इसे किया जा सकता है, किन्तु शरद् एवं वसन्त में ही इसका औचित्य है।

'पर्वण्याग्रयणं कुर्वीत वसन्ते यवानां शरदि व्रीहीणाम्'—मै०मा०गृ० २.३.१० वचनानुसार मैत्रायणी मानवगह्य सूत्रकार को पर्व (पूर्णिमा/अमावस्या) अभीष्ट हैं।

२. **स्विष्टकृद् आहुति**—सूत्र ३—कर्क आदि भाष्यकारों ने सूत्रस्थ—जुहोति स्विष्टकृते च स्विष्टम्' चकारानुरोध से आग्रयण देवताओं के लिए स्थालीपाक होम के अनन्तर—स्विष्टमग्ने० मन्त्र से आज्याहुति, तदनु—स्विष्टकृद् अग्नि के लिए—

अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा—पूर्वक स्थालीपाक की एक आहुति और पुनः—स्विष्टमग्ने० से एक आज्याहुति स्वीकार की है।

३. प्रथम सूत्र से ज्ञापित होता है कि—यह समग्र विधि अनाहिताग्नि के लिए है। क्योंकि आहिताग्नि के कर्म अग्नित्रय साध्य हैं। अतः यह कर्म आवसथ्याग्नि साध्य है द्र०—'अनाहिताग्नेरपि शालाग्नौ'—आश्व० गृ० २.२.५, अनाहिताग्निर्नवं प्राशिष्यन्नाग्रयणदेवताभ्य......स्वाहाकारेण गृह्येऽग्नौ हुत्वा.....'' कौषी० गृ० ३.५.१

सभी नवान्न हव्य नहीं है। हव्यान्न से ही कर्म सम्पादनीय है। इस विषयक गृह्यसंग्रह के निम्न वचन द्रष्टव्य हैं—

नवयज्ञाधिकारस्थाः श्यामाका व्रीहयो यवाः।

नाश्नीया न च हुत्वैवमन्येष्वनियमः स्मृतः॥२.७.९

ऐक्षवः सर्वशुङ्गाश्च नीवाराश्चणकास्तिलाः।

अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नैषामुक्ता हविर्गुणाः।

४. **'नवयज्ञे पायसश्चरुरैन्द्राग्नः'**—गोभिल गृ० ३.७.९ वचनानुसार चरु (व्रीहि अथवा यव का) दूध में तैयार करना चाहिए। सामान्यतः व्रीहि का चरु बिना दूध के ही पानी में पकाकर बिना मांड निकाले बनाया जाता है।

इति तृतीयकाण्डे प्रथमा कण्डिका ✪

द्वितीया कण्डिका

आग्रहायणी कर्म

मार्गशीर्ष्यां पौर्णमास्यामाग्रहायणीकर्म॥१॥ स्थालीपाकꣳश्रपयित्वा श्रवणवदाज्याहुती हुत्वाऽपरा जुहोति। यां जनाः प्रतिनन्दन्ति रात्रीं धेनुमिवा-यतीम्। संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली स्वाहा। संवत्सरस्य प्रतिमा या ताꣳरात्रीमुपास्महे। प्रजाꣳ सुवीर्यां कृत्वा दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा। संवत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायेद्वत्सराय वत्सराय कृणुतेः बृहन्नमः। तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानां ज्योग्जीता अहताः स्याम स्वाहा। ग्रीष्मो हेमन्त उतनो वसन्तः शिवा वर्षा अभ्या शरन्नः। तेषामृतूनाꣳशतशारदानां निवात एषामभये वसेम

स्वाहेति॥२॥ स्थालीपाकस्य जुहोति। सोमाय मृगशिरसे मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै हेमन्ताय चेति॥३॥ प्राशनान्ते सक्तुशेषꣳ शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रमणप्रभृत्यामार्जनात्॥४॥ मार्जनान्त उत्सृष्टो बलिरित्याह॥५॥ पश्चादग्नेः स्रस्तरमास्तीर्याहतं च वास आप्लुता अहतवाससः प्रत्यवरोहन्ति दक्षिणतः स्वामी जायोत्तरा यथाकनिष्ठमुत्तरतः॥६॥ दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्रꣳ. शमीशाखासीतालोष्ठाश्मनो निधायाग्निमीक्षमाणो जपति। अयमग्निर्वीरतमोऽयं भगवत्तमः सहस्रसातमः। सुवीर्योऽयं श्रैठ्ये दधातु नाविति॥७॥ पश्चादग्नेः प्राञ्चमञ्जलिं करोति॥८॥ दैवीं नावमिति तिसृभिः॥ स्रस्तरमारोहन्ति॥९॥ ब्रह्माणमामन्त्रयते ब्रह्मन्प्रत्यवरोहामेति॥१०॥ ब्रह्मानुज्ञाताः प्रत्यवरोहन्ति आयुः की (र्ति?ति) र्यशो बलमन्नाद्यं प्रजामिति॥११॥ उपेता जपन्ति। सुहेमन्तः सुवसन्तः सुग्रीष्मः प्रतिधीयतान्नः। शिवा नो वर्षाः सन्तु शरदः सन्तु नः शिवा इति॥१२॥ स्योना पृथिवि नो भवेति दक्षिणपार्श्वैः प्राक्शिरसः संविशन्ति॥१३॥ उपोदुतिष्ठन्ति उदायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य वृष्ट्या पृथिव्याः सप्तधामभिरिति॥१४॥ एवं द्विरपरं ब्रह्मानुज्ञाताः॥१५॥ अधः शयीरंश्चतुरो मासान्यथेष्टं वा॥१६॥२॥

(कर्कः)--'मार्ग....कर्म' कर्त्तव्यमिति शेषः। 'स्थाली....होति' श्रवणाकर्मवदाज्याहुतिद्वयं हुत्वा ततोऽपरा जुहोति।'यां जनाः प्रतिनन्दन्ति' एवमाद्याः। 'स्थाली....न्ताय चेति'। ततः स्विष्टकृदादि। 'प्राश....र्जनात्' श्रवणाकर्मवत्कर्म. भवति। 'मार्ज.....त्याह'। परिसमाप्तमाग्रहायणीकर्म। इदमन्यत्कर्मान्तरम्। 'पश्च....हन्ति' अग्निमपरेण तृणैः स्रस्तरमास्तीर्य तदुपर्यहतं च वासः आप्लुताः स्नाता अहतवाससोऽनुस्रस्तरं प्रत्यवरोहन्ति तेषां च प्रत्यवरोहतां दक्षिणतः स्वामी भवति जाया चोत्तरा यथाकनिष्ठमुत्तरतोऽपत्यानि। 'दक्षिण....जपति' अयमग्निर्वीरतमोऽयमिति गृहपतिः। 'पश्चा.....रोति'। 'दैवीं........हन्ति' सांप्रतम्। तत्र। 'ब्रह्मा.....हामेति' प्रत्यवरोहध्वमिति ब्रह्मानुज्ञाताः प्रत्यवरोहन्ति स्रस्तरमायुः कीर्त्तिर्यशोबलमित्यनेन मन्त्रेण। 'उपेता जपन्ति सुहेमन्त इति' ये उपेतास्ते जपन्ति सुहेमन्त इत्यमुं मन्त्रम्। 'एवं.....ज्ञाताः' स्रस्तरमारोहन्ति। 'अधः......थेष्टं वा'॥२॥

१. मार्गशीर्ष्यां पौर्णमास्याम् = मार्गशीर्ष (मृगशीर्ष या मृगशिरा नक्षत्र से युक्त) पौर्णमासी के दिन, आग्रहायणी कर्म = आग्रहायणी कर्म का अनुष्ठान करे।

२. स्थालीपाकꣳश्रपयित्वा = स्थालीपाक-चरु पकाकर, श्रवणवद् = श्रवणा कर्म के सदृश, आज्याहुती हुत्वा = दो आज्याहुति (अपश्वेतपदा एवं न वै श्वेतस्य) देकर, अपरा जुहोति = अन्य निम्न चार घृत की आहुति देवे—

(क) यां जनाः प्रति नन्दन्ति रात्रीं धेनुमिवायतीम्।

संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली स्वाहा। इदं रात्र्यै न मम

(ख) संवत्सरस्य प्रतिमा या तां रात्रिमुपास्महे।

प्रजां सुवीर्या कृत्वा दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा॥ इदं रात्र्यै न मम

(ग)संवत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायेद्वत्सराय वत्सराय कृणुते बृहन्नमः।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग् जीता अहताः स्याम स्वाहा॥

इदं सवंत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायेद्वत्सराय वत्सराय च न मम

(घ) ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शिवा वर्षा अभया शरन्नः।

तेषामृतूनां शतशारदानां निवात एषामभये वसेम स्वाहा॥ इदं ग्रीष्माय हेमन्ताय वसन्ताय वर्षाभ्यः शरदे च न मम

३. उक्त 'अपश्वेतपदा' आदि दो तथा 'यां जनाः' आदि चार (कुल छः) घृताहुतियां देकर, स्थालीपाकस्य = स्थालीपाक चरु की, सोमाय.....चेति = सोम आदि के लिए निम्न चार आहुतियाँ, जुहोति = देवे।

(क) सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम

(ख) मृगशिरसे स्वाहा, इदं मृगशिरसे न मम

(ग) मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै स्वाहा, इदं मार्गशीर्ष्यै न मम

(घ) हेमन्ताय स्वाहा, इदं हेमन्ताय न मम

४. प्राशनान्ते = संस्रव प्राशन के अनन्तर, सक्तूशेषं = अवशिष्ट सत्तू को, सूर्पे न्युप्य = सूर्प में रखकर, उपनिष्क्रमणप्रभृति = उपनिष्क्रमण (काण्ड २, क. १४, सूत्र ११) से लेकर, आ मार्जनात् = मार्जन (सूत्र २१) पर्यन्त सम्पूर्ण कर्म करना चाहिए। इसकी विधि एवं मन्त्र वहीं द्रष्टव्य हैं।

५. मार्जनान्ते = मार्जन (२. १४. २१ सूत्रानुसार समन्त्रक) के अन्त में, 'उत्सृष्टो बलिरित्याह = उत्सृष्टो बलिः'—ऐसा कहे।

इति आग्रहायणी कर्म

स्रस्तरारोहणम्-

६. अग्नेः = आवसथ्याग्नि के, पश्चात् = पश्चिम में, स्रस्तरम् आस्तीर्य = प्रागग्र कुशासन बिछाकर, अहतं च वासः = और उस आसन पर सकृद्धौत नवीन वस्त्र धारण करके, प्रत्यवरोहन्ति = आसन पर बैठें। आसन पर बैठने का क्रम निम्नवत् रहना चाहिए—दक्षिणतः स्वामी = स्वामी-यजमान आसन पर दक्षिण भाग में और जायोत्तरा = उत्तर अर्थात् यजमान के बाईं ओर जाया—यजमान पत्नी बैठे तथा—यथाकनिष्ठमुत्तरतः = जो आयु में कनिष्ठ है वह इसी क्रम में उत्तर में बैठे।

७. दक्षिणतः = अग्नि के दक्षिण में, ब्रह्माणम् उपवेश्य = ब्रह्मा को बैठाकर, उत्तरतः = अग्नि के उत्तर (आग्नेय कोण) में, उदपात्रं = जल पात्र, शमी शाखा = शमी-छोंकर-जांटी वृक्ष की शाखा, सीतालोष्ठ = जुती भूमि का मिट्टी का ढेला और अश्मनो निधाय = पत्थर का टुकड़ा-शिला रखकर, अग्निम् ईक्षमाणः = अग्नि को देखते हुए-अयमग्निः....नाविति= अयमग्निः मन्त्र का, जपति = जप करे। जपमन्त्र—

अयमग्निर्वीरतमोऽयं भगवत्तमः सहस्रसातमः।

सुवीर्योऽयं श्रैष्ठ्ये दधातु नौ॥

८. पश्चादग्नेः = अग्नि के पश्चिम में खड़े होकर (पूर्वसूत्र ६ में आसन पर बैठने से पूर्व) प्राञ्चमञ्जलिं करोति = प्रागग्र अञ्जलि बनावे अर्थात् हाथ जोड़े।

९. दैवीं नावमिति तिसृभिः = दैवीं नावम् आदि तीन मन्त्रों का पाठ करके, स्रस्तरमारोहन्ति = यजमान एवं उनकी पत्नी आदि स्रस्तर बैठें। पूर्वसूत्र ६ में आसन पर बैठने का वर्णन है। प्रकृत सूत्रस्थ विधि बैठते समय ही कर्त्तव्य है। स्रस्तरा-रोहण मन्त्र—

(क) दैवीं नावं, स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वतये॥

(ख) सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राꣳस्वस्तये॥

(ग) आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू॥

यजु० २१. ६-८

१०. गृहपति-ब्रह्माणम् आमन्त्रयते = ब्रह्मा से पूछे-ब्रह्मन्—हे ब्रह्मन्! प्रत्यवरोहाम इति = हम इस आसन पर प्रत्यवरोहण करें—बैठें।

११. ब्रह्मानुज्ञाताः = ब्रह्मा द्वारा अनुज्ञा देने पर प्रत्यवरोहध्वम्—ऐसा कथन करने पर, आयुः....प्रजामिति = 'आयुः कीर्तिर्यशो बलमन्नाद्यं प्रजाम्'—इस मन्त्र का पाठ कर, प्रत्यवरोहन्ति = प्रत्यवरोहण करें।

१२. उपेताः = स्रस्तरारोहण कर्त्ताओं में जो उपनीत हैं, वह आरोहण कर- सुहेमन्तः.....शिवा इति = सुहेमन्तः' इस मन्त्र का जपन्ति = जप करें। जपमन्त्र—

सुहेमन्तः सुवसन्तः सुग्रीष्मः प्रतिधीयतान्नः।

शिवा नो वर्षाः सन्तु नः शिवाः। काण्व २. ७. ५

१३. स्रस्तरारोहण के अनन्तर—स्योना.......भवेति = स्योना० इस मन्त्र को बोलकर, दक्षिण पार्श्वैः प्राक्शिरसः = पूर्व की ओर शिर करके दाईं ओर करवट लेकर अर्थात् उत्तराभिमुख होकर, संविशन्ति = स्रस्तर पर लेटें। शयन मन्त्र—

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म

सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम्॥ यजु० ३५.२१

१४. उदायुषा........धामभिरिति = उदायुषा० मन्त्र पूर्वक, उप उत् उ तिष्ठन्ति = सभी शयनकर्त्ता—स्रस्तर पर लेटे हुवे, उप = युगपत्—एक साथ, उठ खड़े हों। उत्थान मन्त्र—

उदायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य वृष्ट्या पृथिव्याः सप्तधाममिः॥

१५. एवं द्विरपरं = स्रस्तर से उतर कर इसी प्रकार पुनः दो बार ब्रह्मानुज्ञाताः —ब्रह्मानुमन्त्रण से लेकर उत्थान पर्यन्त (सूत्र ११—१४) विधि करें।

१६. चतुरो मासान् = चार महीने, यथेष्टं वा = अथवा जब तक इच्छा हो तब तक, अधः शयीरन् = भूमि पर शयन करें।

टिप्पणी—१. मार्गशीर्ष्यां प्रत्यवरोहणं चतुर्दश्याम्॥ पौर्णमास्यां वा-आश्वा० गृ० २. ३. १—२ के अनुसार आश्वालयन को पूर्णिमा के साथ पूर्व दिवस चतुर्दशी में भी आग्रहायण कर्म का काल अभीष्ट है।

२. सूत्र ४. उपनिष्क्रमण प्रभृत्यामार्जनात्—से अभिप्राय है कि २.१४ में श्रवणाकर्म में सूत्र ११ स्थ उपनिष्क्रमण कर्म से लेकर सूत्र २१ तक के मार्जन कर्मपर्यन्त सम्पूर्ण कर्म यहाँ कर्त्तव्य हैं। सूत्रस्थ 'आमार्जनात्' में 'आ'—अभिविधि अर्थ में है। वैसे २. १४. २२में भी....बलिं हरेदाग्रहायण्याः में 'आ आग्रहायण्याः' से भी पूर्वोक्त समग्र विधि आग्रहायणी में कर्त्तव्य रूप से विहित है ही।

३. स्विष्टकृत्-हरिहर एवं विश्वनाथ ने सूत्र ३ में वर्णित सोम आदि के लिए स्थालीपाक से चार आहुतियों के पश्चात्—'ततः स्थालीपाकेन स्विष्टकृतं हुत्वा' हरिहरः—स्थालीपाक से स्विष्टकृत् आहुति स्वीकार की है। आश्वालायन—'नात्र सौविष्टकृत्'—२. ३. ४ गृह्यसूत्रानुसार आग्रहायणी कर्म में स्विष्टकृत् आहुति निषेध प्राप्त होता है।

४. स्रस्तरारोहण-आग्रहायणी का अंग कर्म है। आश्वलायन गृ० २. ३. १२ के अनुसार अन्त में ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए।

५. सूत्र ५. उत्सृष्टो बलिः—आग्रहायणी कर्म में होने वाला बलिप्रदान कर्म श्रवणा कर्म का अङ्ग है। यदि किसी कारण वश श्रवणाकर्म सम्पन्न न कर सके और आग्रहायणी कर्म कर रहा हो तब ये बलि दी जाएं अथवा नहीं? इस विषय में कर्म प्रदीप के अनुसार—बलिकर्म को छोड़कर आग्रहायण कर्म सम्पन्न करना चाहिए। तद्यथा—

श्रवणाकर्म लुप्तं चेत् कथञ्चित् सूतकादिना।

आग्रहायणकं कुर्याद् बलिवर्जमशेषतः॥ ३.९.१२

६. स्रस्तरारोहण—'प्राग् वसन्तादुद्गयने पुण्येऽहनि सायं स्रस्तरमुदगग्रमास्तीर्य—इत्यादि गृह्य वचनों से प्रतीत होता है कि स्रस्तरारोहण के लिए कोई तिथि निश्चित नहीं है। आग्रहायणी के अनन्तर—वसन्त पूर्व कभी भी यह कर्म किया जा सकता है। इस विषयक निम्न वचन भी द्रष्टव्य है—

पारिभाषिक एव स्यात् कालो गोवाजियज्ञयोः।

अन्यस्यानुपदेशाच्च स्रस्तरारोहणस्य च॥ कर्मप्रदीप ३.७.७

इति तृतीयकाण्डे द्वितीया कण्डिका ✪

तृतीया कण्डिका

अष्टका

ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्रोऽष्टकाः॥१॥ ऐन्द्री वैश्वदेवी प्राजापत्या पित्र्येति॥२॥ अपूपमाꣳसशाकैर्यथासंख्यम्॥३॥ प्रथमाऽष्टका पक्षाष्टम्याम्॥४॥

स्थालीपाकꣳश्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति। त्रिꣳ. शतस्वसार उपयन्ति निष्कृतꣳ. समानं केतुं प्रतिमुञ्चमानाः। ऋतूंस्तन्वते कवयः प्रजानतीर्मध्ये छन्दसः परियन्ति भास्वतीः स्वाहा। ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभो रात्री देवी सूर्यस्य व्रतानि। विपश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपामातुरस्या उपस्थे स्वाहा। एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भे महिमानमिन्द्रम्। तेन दस्यून्व्यसहन्त देवा हन्ताऽसुराणामभवच्छचीभिः स्वाहा॥ अनानुजामनुजां मामकर्त्त सत्यं वदन्त्यन्विच्छ एतत्। भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्यावो अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा। अभून्मम सुमतौ विश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदद्धि गाधम्। भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्यवो अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा। पञ्च व्युष्टीरनु पञ्चदोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनुपञ्च। पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः समानमूर्ध्नीरधिलोकमेकꣳस्वाहा। ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूषिष्यपामेका महिमानं बिभर्ति। सूर्यस्यैका चरति निष्कृतेषु धर्मस्यैका सवितैकां नियच्छतु स्वाहा॥ या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभवद्यमे। सा नः पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तराꣳ समाꣳस्वाहा॥ शुक्रऋषभा नभसा ज्योतिषागाद्विश्वरूपा शबली अग्निकेतुः। समानमर्थꣳस्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजरउष आगाः स्वाहा॥ ऋतूनां पत्नी प्रथमेयमागादह्नां नेत्री जनित्री प्रजानाम्। एका सती बहुधोषो व्यौच्छत्साऽजीर्णा त्वं जरयसि सर्वमन्यत्स्वाहेति॥५॥ स्थालीपाकस्य जुहोति शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षं शन्नो द्यौरभयं कृणोतु। शन्नो दिशः प्रदिश आदिशो नो ऽहोरोत्रे कृणुतं दीर्घमायुर्व्यशनवै स्वाहा। आपो मरीचीः परिपान्तु सर्वतो धाता समुद्रो अपहन्तु पापम्। भूतं भविष्यदकृन्तद्विश्वमस्तु मे ब्रह्माभिगुप्तः सुरक्षितः स्याꣳ स्वाहा॥ विश्वे आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतश्च सन्तु। ऊर्जं प्रजाममृतं दीर्घमायुः प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु नः स्वाहेति च॥६॥ अष्टकायै स्वाहेति॥७॥ मध्यमा गवा॥८॥ तस्यै वपां जुहोति वह वपां जातवेदः पितृभ्य इति॥९॥ श्वोऽन्वष्टकासु सर्वासां पार्श्वसक्थिसव्याभ्यां परिवृते पिण्डपितृयज्ञवत्॥१०॥ स्त्रीभ्यश्चोपसेचनं च कर्षूषु सुरया तर्पणेन चाञ्जनानु लेपनं स्त्रजश्च॥११॥ आचार्यायान्तेवासिभ्यश्चानपत्येभ्य इच्छन्॥१२॥ मध्यावर्षे च तुरीया शाकाष्टका॥१३॥ ॥३॥

(कर्कः)—'ऊर्ध्व.....ष्टकाः' भवन्तीति सूत्रशेषः। संस्कारश्चायं स्मर्यते गौतमादिभिः सकृत्करणं चास्याभ्यासाश्रवणात्।अष्टकास्तिस्रो भवन्ति। ता आह 'ऐन्द्री.....त्र्येति' वक्ष्यति च मध्या वर्षे च तुरीयाऽष्टकेति। तद्धितान्तेन निर्देशात्-प्रत्यष्टकं तद्दैवत्यो होमो यथा स्यादिति। इदानीं तत्साधनभूतं द्रव्यमाह 'अपू..... सङ्ख्यम्-अपूपा मण्डकाः। मांसं मध्यमा गवेति वक्ष्यति। शाकं काल शाकम्। अष्टकाद्वये। 'प्रथ.....म्याम्' आग्रहायणीसमनन्तरं पक्षाष्टम्यां भवतीतिशेषः। स्थाली.... र्जुहोति' त्रिंशत्स्वसार उपयन्तीत्येवमादिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम्। 'स्थाली......होति' शान्ता पृथिवीत्येवमादिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं चतस्रः। ततोऽपूपेनेन्द्राय स्वाहेत्येकाहुतिः। उभयोः सकाशात्स्विष्टकृदादि। 'मध्यमा गवा' मध्यमाष्टका पौषस्य कृष्णाष्टम्यां सा च गवा भवति। तस्याश्च कल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यति। 'तस्यै वपां जुहोति' वह वपां जातवेद इत्यनेन मन्त्रेण। पुनरवदानहोमो विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति। 'श्वोऽन्व.....ज्ञवत्' श्वस्तनेऽहनि सर्वास्वष्टकासु पार्श्वसक्थिसव्ययोर्मांसमादाय परिवृत्ते पिण्डपितृयज्ञवत्कर्म भवति। इयांस्तु विशेषः। 'स्त्रीभ्यश्च' ददाति। 'उपसेचनं च कर्षूषु सुरया' अयं च स्त्रीपिण्डसन्निधौ अवटेषु सुरयोपसेचनम् तर्पणेन च तर्पयेत्। तर्पणशब्देन सक्त-वोऽभिधीयन्ते। 'अञ्जनानुलेपनँ स्रजश्च' स्त्रीपिण्डेषु ददाति। 'आचा....इच्छन्' ददाति। 'मध्या.....ष्टका' भवतीति शेषः।।३।।

१. ऊर्ध्वम् आग्रहायण्याः = आग्रहायणी (मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन सम्पा-द्यमान-पूर्ववर्ती द्वितीय कण्डिका में वर्णित) कर्म के अनन्तर, तिस्रः अष्टकाः = तीन 'अष्टका' संज्ञक कर्म करने चाहिएं। पौषकृष्णा अष्टमी, माघकृष्णा अष्टमी एवं फाल्गुन कृष्णा अष्टमी के दिन यह अष्टकाख्य कर्म होता है।

२. ऐन्द्री = इन्द्र देवताक, वैश्वदेवी = विश्वेदेवा देवताक, प्राजापत्या = प्रजापति देवताक तथा पित्र्या. इति = पितृ देवताक—ये चार अष्टकाएं हैं।

३. यथासंख्यम् = यह अष्टका कर्म क्रमशः, अपूप मांसशाकैः = अपूप-पुए-मण्डक, मांस = मनोनूकूल घृत आदि तथा शाकैः = शाक-वानस्पत्य हव्य से सम्पन्न करना चाहिए।

४. प्रथमा अष्टका = प्रथमा अष्टका अर्थात् अष्टका का प्रथम आयोजन, पक्ष अष्टम्याम् = पक्षाष्टमी-कृष्णपक्ष की अष्टमी (पौष मास में) कर्त्तव्य है। विधि निम्नवत् है—

५. स्थालीपाकं श्रपयित्वा = स्थालीपाक-चरु पकाकर, आज्यभागौ-इष्ट्वा = आज्यभाग संज्ञक दो आहुतियां देकर, आज्याहुती: जुहोति = निम्न १० मन्त्रों से आज्याहुतियां दे—

(क) त्रिंशत्स्वसार उपयन्ति निष्कृतं समानं केतुं प्रतिमुञ्चमाना:।
ऋतूंस्तन्वते कवय: प्रजानतीर्मध्ये छन्दस: परियन्ति भास्वती: स्वाहा।।
इदं त्रिंशत्स्वसृभ्यो न मम

(ख) ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभो रात्री देवी सूर्यस्य व्रतानि।
विपश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे स्वाहा।।
इदं रात्र्यै न मम

(ग) एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम्।
तेन दस्यून्व्यसहन्त देवा हन्ताऽसुराणामभवच्छचीभि: स्वाहा।।
इदम् अष्टकायै न मम

(घ) अनानुजामनुजां मामकर्त्त सत्यं वदन्त्यन्विच्छ एतत्।
भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा।।
इदं रात्रीभ्यो न मम

(ङ) अभून्मम सुमतौविश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदद्धि गाधम्।
भूयासमस्य .... प्रयुक्त स्वाहा।। इदं रात्रीभ्यो न मम

(च) पञ्च व्युष्टीरनु पञ्चदोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनुपञ्च।
पञ्चदिश: पञ्चदशेन क्लृप्ता: समान मूर्ध्नीरधि लोकमेकꣳस्वाहा।।
इदं रात्रीभ्यो न मम

(छ) ऋतस्य गर्भ: प्रथमा व्यूषिष्यपामेका महिमानं बिभर्ति।
सूर्यस्यैका चरति निष्कृतेषु धर्मस्यैका सवितैकां नियच्छतु स्वाहा।।
इदं रात्र्यै न मम

(ज) या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभवद्यमे।
सा न: पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तराꣳसमाꣳस्वाहा।। इदं रात्र्यै न मम

(झ) शुक्र ऋषभा नभसा ज्योतिषागाद्विश्वरूपा शबली अग्निकेतु:।

समानमर्थꣳस्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आगाः स्वाहा॥

इदं रात्र्यै न मम

(ण) ऋतूनां पत्नी प्रथमेयमागादह्नां नेत्री जनित्री प्रजानाम्।

एका सती बहुधोषो व्यौच्छत्साऽजीर्णा त्वं जरयसि सर्वमन्यत्स्वाहा॥

इदं रात्र्यै न मम

६—७. स्थालीपाकस्य जुहोति = अग्रपठित (चार) आहुतियां स्थालीपाक चरु की देवे—

(क) शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षं शन्नो द्यौरभयं कृणोतु।

शन्नो दिशः प्रदिश आदिशो नोऽहोरात्रे कृणुतं दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा॥

इदं पृथिव्यै अन्तरिक्षाय दिवे दिग्भ्यः प्रदिग्भ्य आदिग्भ्योऽहोरात्राभ्यां च न मम

(ख) आपो मरीचीः परिपान्तु सर्वतो धाता समुद्रो अपहन्तु पापम्।

भूतं भविष्यदकृन्तद्विश्वमस्तु मे ब्रह्माभिगुप्तः सुरक्षितः स्याꣳस्वाहा॥

इदमद्भ्यो मरीचिभ्यो धात्रे समुद्राय ब्रह्मणे च न मम

(ग) विश्वे आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतश्च सन्तु।

ऊर्जं प्रजाममृतं दीर्घमायुः प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु नः स्वाहा॥

इदं विश्वेभ्य आदित्येभ्यो वसुभ्यो देवेभ्यो रुद्रेभ्यो मरुद्भ्यः प्रजापतये परमिष्ठने च न मम

(घ) अष्टकायै स्वाहा, इदम् अष्टकायै न मम

यतः यह अष्टका--अपूपाष्टका है और ऐन्द्री—इन्द्रो देवता अस्या इति—इन्द्र देवताक है। अतः अष्टका की आहुति के अनन्तर अपूप की निम्न आहुति दे—

--इन्द्राय स्वाहा, इदम् इन्द्राय न मम

अपूपाहुति के पश्चात्-स्थालीपाक, एवं अपूप से एक स्विष्टकृत् आहुति तदनन्तर-महाव्याहृत्यादि-प्राजापत्यान्त नौ आहुति देनी चाहिएं।

इति अष्टकाविधिः

८. मध्यमा गवा = द्वितीय माघ कृष्णाष्टमी के दिन होने वाली अष्टका गौ से प्राप्त द्रव्यों से करनी चाहिए।

९. वह वपां जातवेद: पितृभ्य इति = वह वपां .... मन्त्र पूर्वक, तस्यै = उस द्वितीय अष्टका-वैश्वदेवी के लिए, वपां = गौ के घनीभूत (पनीर, खोया, दधि, घृत) द्रव्य से, जुहोति = आहुति दे। मन्त्र—

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान् वेत्थ सुकृतस्य लोके।

मेदसः कुल्या उपस्त्रुतास्स्त्रवन्ति सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामास्स्वाहा॥

१०. श्वः = अग्रिम दिन (नवमी को), अन्वष्टकासु = अन्वष्टका संज्ञक (अष्टका के पश्चात् किया जाने वाला कर्म-अन्वष्टका) कर्मों में, सर्वासां = सभी अष्टकाओं के अग्रिम दिवस, परिवृते = परिवृत-सर्वथा प्रच्छादित स्थान पर, पिण्डपितृयज्ञवत् = पिण्डपितृयज्ञ के समान, पार्श्वसक्थिसव्याभ्यां = पनीर और खोए से आहुति दे।

११. स्त्रीभ्य: च = और स्त्रियों (माता-पितामही, प्रपितामही आदि) के लिए—निमित्त उपसेचन—तर्पण भी करे। उपसेचनं च = और यह उपसेचन, सुरया कर्षूषु = पुराने घी, तेल, रस आदि से गड्ढों में करे, तर्पणेन च = और यह तर्पण भी उपसेचन के तुल्य ही गड्ढों में करना चाहिए। अञ्जनानुलेपनं स्रज: च = उपसेचन तर्पण के अनन्तर अनुलेपन और मालाएं भी दे।

१२. इच्छत् = यदि यजमान चाहे तो, अनपत्येभ्य: = निस्सन्तान, आचार्याय अन्तेवासिभ्य: च = आचार्य और अन्तेवासी शिष्यों के निमित्त भी पिण्डदान कर सकता है।

१३. मध्यावर्षे च = और वर्ष के मध्य-वृष्टि-काल में प्रौष्ठपदीभाद्रपौर्णमासी के बाद, तुरीया = चतुर्थ, शाकाष्टका = अष्टका करनी चाहिए। इसका हव्य भी तृतीयाष्टका के सदृश शाक वानस्पत्य ही है।

टिप्पणी—१. (क) अष्टका शब्द कर्मवाची होने के साथ ही काल का भी उपलक्षक है। पक्ष शब्द का अभिप्राय पूर्णिमा के पश्चाद्वर्ती कृष्णपक्ष से है। मैत्रायणीय मानव गृ० ऊर्ध्वमाग्रहायण्या: प्राक् फाल्गुन्यास्तामिश्राणामष्टम्य: २.८.२ में स्पष्टत: तामिस्त्र-कृष्णपक्ष का उल्लेख किया है।

(ख) गोभिल गृ० ३. १०. १—२ में अष्टका के देवता पारस्करोक्त इन्द्रादि के अतिरिक्त, रात्रि, अग्नि एवं ऋतु भी कहे हैं। साथ ही इसे—'पुष्टिकर्मा'-पुष्टिफलमस्माद् भवतीति—जिससे यजमान की पुष्टि-समृद्धि होती है—ऐसा भी कहा है।

२. कौषीतक गृह्यसूत्र ३. १५. २ 'तासां प्रथमायां शाकं जुहोति'—के अनुसार प्रथमाष्टका-शाकाष्टका है। और—'उत्तमायामपूपान् जुहोति'—६ उत्तमा—तृतीया-अपूपाष्टका।

३. अष्टौ चापूपाः प्रथमायाम्।। तानपरिवर्तयन् कपाले श्रपयेत्।। खादिर गृ० ३.३.२९—३० प्रथमाष्टका में एक ही कपाल पर बिना बदले आठ अपूप बनाने चाहिएं।

४. सूत्र ३—मांस—यहां मध्यमाष्टका के हव्य रूप में 'मांस' पद पठित है। पारस्कर के अतिरिक्त—गोभिल, मैत्रायणीय मानव, कौषीतक, आश्वलायन एवं खादिर आदि गृह्यसूत्रों में इसका हव्य 'मांस' ही पठित है। सभी भाष्यकारों ने इसे मांस (Meat) परक ही व्याख्यात किया है। विद्वज्जन इस पर विचार करें। यहाँ अर्थ करते समय—''मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन् सीदतीति वा'' निरुक्त ४.१.३ को आधार मानकर मांस का अर्थ—मनोऽनुकूलरुचिकर (मांसम्—मानसं—मनस आकर्षकं मनसे हितं वा, मनोऽस्मिन् सीदति—अस्मिन् मनः सीदति—प्रसीदति —प्रसन्नतामनुभवति) घृत आदि किया है। यतः मांस Meat किसी भी दृष्टि से मानव शरीर के अनुकूल नहीं है और न ही प्रसन्नतादायक है। मांसाहारी व्यक्ति भी इसमें घृत-तैल आदि के साथ विभिन्न मसाले आदि मिलाकर ही प्रयोग करते हैं। पशु से प्राप्त उसके मांस को मूलरूप में प्रयोग न किया जाना ही इसकी अभक्ष्यता का बोधक है। वैसे भी यज्ञों का हव्य मनुष्यों द्वारा भोज्य पदार्थ ही हैं।

५. सूत्र ८. यहाँ पठित तृतीयान्त 'गवा' पद का अभिप्राय है—गौ से प्राप्त द्रव्य।

६. सूत्र ९— वपा-वपा का शाब्दिक अर्थ वसा या चर्बी भी होता है। प्रायः सभी भाष्यकारों ने यहाँ चर्बी ग्रहण किया है। किन्तु-अंग्रेजी में वसा-चर्बी के लिए Fat फैट शब्द प्रयुक्त होता है। साथ ही घृत-चिकनाई के लिए भी फैट शब्द ही प्रयुक्त होता है। वस्तुतः घृत से ही शरीर में वसा (वपा) का निर्माण होता है। अतः वपा-वसा के घृत अर्थ ग्रहण करना युक्ति युक्त ही है।

७. सूत्र १०—पार्श्व सक्थिसव्याभ्यां-पार्श्वं च सक्थि च पार्श्व सक्थिनी ते च सव्ये च पार्श्वसक्थिसव्ये ताभ्यां—पार्श्वसक्थिसव्याभ्याम्।

सक्थि–षच् समवाये (भ्वा०उ०) से औणादिक क्थिन् ३.१५४ = खोया-मावा, पार्श्व = वाजिन्-पनीर।

इति तृतीयकाण्डे तृतीया कण्डिका

चतुर्थी कण्डिका

शालाकर्म

अथातः शालाकर्म॥१॥ पुण्याहे शालां कारयेत्॥२॥ तस्या अवटमभिजुहोत्यच्युताय भौमाय स्वाहेति॥३॥ स्तम्भमुच्छ्रयति इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम्। इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा। अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय। आत्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः। आत्वाकुमारस्तरुण आवत्सो जगदैः सह। आत्वा परिस्रुतः कुम्भ आदध्नः कलशैरुप। क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम्। अश्वावद्गोमदूर्जस्वत् पर्णे वनस्पतेरिव। अभि नः पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसान इति चतुरः प्रपद्यते॥४॥ अभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्रं प्रतिष्ठाप्य स्थालीपाकꣳ श्रपयित्वा निष्क्रम्य द्वारसमीपे स्थित्वा ब्रह्माणमामन्त्रयते ब्रह्मन् प्रविशामीति॥५॥ ब्रह्मानुज्ञातः प्रविशत्यृतं (चं) प्रपद्ये शिवं प्रपद्य इति॥६॥ आज्यꣳ संस्कृत्येहरतिरित्याज्याहुती हुत्वापरा जुहोति। वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा॥ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा। वास्तोष्पते शग्मया सꣳसदा ते सक्षीमहि रणवया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरन्नो यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा। अमीवहा वास्तोष्पतेविश्वारूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः स्वाहेति॥७॥ स्थालीपाकस्य जुहोति। अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वान्देवानुपह्वये सरस्वतीं च वाजीं च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा। सर्पदेवजनान्त्सर्वान् हिमवन्तꣳसुदर्शनम्। वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह। एतान्त्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा। पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ

मध्यंदिना सह। प्रदोषमर्द्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम्। एतान्त्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा॥ कर्तारं च विकर्त्तारं विश्वकर्माणमोषधींश्च वनस्पतीन्। एतान्त्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा। धातारं च विधातारं निधीनां च पतिर्ठ. सह। एतान्त्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा। स्योनर्ठ. शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताः स्वाहेति॥८॥ प्राशनान्ते काᳬस्ये संभारानोप्यौदुम्बरपलाशानि ससुराणि शाड्वलं गोमयं दधि मधु घृतं कुशान्यवांश्चासनोपस्थानेषु प्रोक्षेत्॥९॥ पूर्वे सन्धावभिमृशति। श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेतामिति॥१०॥ दक्षिणे सन्धावभिमृशति। यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपयेतामिति॥११॥ पश्चिमे संधावभिमृशति। अन्नं च त्वा ब्राह्मणाश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेतामिति॥१२॥ उत्तरे संधावभिमृशति। ऊर्क्च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेतामिति॥१३॥ निष्क्रम्य दिश उपष्ठिते। केता च मा सुकेताच पुरस्ताद्गोपायेतामित्यग्निर्वै केतादित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद्गोपायेतामिति॥१४॥ अथ दक्षिणतो गोपायमानं च मारक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानं रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽतु ते मा दक्षिणतो गोपायेतामिति॥१५॥ अथ पश्चात् दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद्गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद्गोपायेतामिति॥१६॥ अथोत्तरतोऽस्वप्नश्च मानवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतोमिति॥१७॥ निष्ठितां प्रपद्यते धर्मस्थूणा राजᳬश्रीस्तूपमहोरात्रे द्वारफलके। इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिः सह। यन्मे किंचिदस्त्युपहूतः सर्वगणसखायसाधुसंवृतः। तां त्वा शालेऽरिष्टवीरा गृहान्नः सन्तु सर्वत इति॥१८॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥१९॥४॥

(कर्कः)—'अथा.....कर्म' व्याख्यास्यते इति सूत्रशेषः। शालाशब्देन गृहमभिधीयते। 'पुण्या.......येत्' पुण्याहग्रहणमुदगयनापूर्यमाणपक्षयोरनादरार्थम्। 'तस्या...... स्वाहेति' तस्याः शालायाः यो योऽवटस्तं तमभिजुहोति। अवटसंस्कारत्वात्प्रत्यवटं होमः। चत्वारो ह्यवटा मूलस्तम्भानां प्रसिद्धा इति स्तम्भशालायाम्। धवलगृहे चतुर्षु कोणशिलास्थानेषु होमः स्तम्भस्थानीयत्वाच्छिलानाम्। 'स्तम्भ....मुच्छ्रयति' इमामुच्छ्र-

यामीत्येभिर्मन्त्रैः 'पूर्यताᳪरयिरिदमनुश्रेयोवसानः' इत्येवमन्तैः। 'इति चतुरः' एवं चतुरः स्तम्भानुच्छ्रयति। इतरगृहे तु शिलान्यास एतैर्मन्त्रैः। 'अभ्य......निष्क्रम्य' बहिर्निष्क्रमणं तु प्रोक्षण्युत्पवनीयोपयमनकुशादानात्पूर्वं भवति। 'द्वार.....शामिति' शालायामभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय ब्रह्मोपवेशनं चोदपात्रावसरविधित्सया। प्रणीतानां ह्यधिकमेतत्। स्थालीपाकᳪश्रपयित्वा निष्क्रम्य द्वारसमीपे स्थित्वा ब्रह्मन्प्रविशामीति ब्रह्माणमामन्त्रयते। 'ब्रह्मानुज्ञातः प्रविशति' ऋचं प्रपद्ये इत्यनेन मन्त्रेण। 'आज्यं......होति' वास्तोष्पते प्रतिजानीहि० इत्येभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम्। आज्य ँ संस्कृत्येत्यवसरविधित्सया आज्याहुतीनामुच्यते। तत आघारादि। 'स्थालीपाकस्य जुहोति' अग्निमिन्द्रमित्येवमादिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम्। ततः स्विष्टकृदादि। 'प्राश.....क्षेत्' प्राशनोत्तरकालं कांस्ये भाजने संभारानावपेत्। औदुम्बरपत्राणि ससुराणि सक्षीराणि। सह सुरयेत्यपरे। शाड्वलं दूर्वा गोमयं दधिमधुघृतं कुशान्यवांश्च तैरासनोपस्थानानि देवतास्थानानि तानि च वास्तुशास्त्रे ज्ञेयानि। 'संधावभिमृशति' श्रीश्च त्वा यशश्चेत्यनेन मन्त्रेण। सन्धिशब्देन कुड्योऽभिधीयते। 'दक्षिणे सन्धावभिमृशति' यज्ञश्च त्वा दक्षिणा चेत्यनेन मन्त्रेण। 'पश्चिमे संधावभिमृशति' अन्नं च त्वा ब्राह्मणश्चेत्यनेन मन्त्रेण। 'उत्तरे संधावभिमृशति' ऊर्क्च त्वा सूनृताचेत्यनेन मन्त्रेण। 'निष्क्रम्य दिश उपतिष्ठते' केता च मा सुकेता च० इत्येभिर्मन्त्रैः निगदव्याख्यातमेतत्। 'निष्ठतां प्रपद्यते' धर्मस्थूणाराजमित्यनेन मन्त्रेण। निष्ठितां परिसमाप्तां शालां प्रविशति। 'ततो ब्राह्मणभोजनम्'।।४।।

१. अथातः = शालाग्नि–आवसथ्याग्नि साध्य–आवसथ्याधान १.१.१ से लेकर अष्टका ३.३.१३ पर्यन्त कर्मों का विधान करने के अनन्तर (उक्त सभी कर्म शालाग्नि में सम्पन्न होंगे, बिना शाला के शालाग्नि स्थापित कहां होगी? अतः) प्रसङ्ग प्राप्त, शालाकर्म = शालाकर्म का विधान किया जा रहा है।

२. पुण्याहे = शुभ दिन, शालां = शाला-भवन निर्माण, कारयेत् = योग्य शिल्पियों द्वारा करावे।

३. तस्याः = निर्मित होने वाली शाला-भवन के, अवटम् = अवट-स्तम्भ Pillar खड़े करने के लिए खोदे गए गड्ढे पर-अच्युताय भौमाय स्वाहेति = अच्युताय भौमाय स्वाहा-कहकर, अभिजुहोति = आहुति दे। भवन निर्माणार्थ चारों कोनों पर खोदे गए चार गड्ढों पर (भले ही वह अधिक भी हो तब भी) इसी अच्यु.....स्वाहा मन्त्र से आहुति देनी चाहिए।

४. स्तम्भमुच्छ्रयति = पूर्व में खुदे एवं होम किए अवट-गड्ढे में स्तम्भ खड़ा करते समय निम्न मन्त्रों का पाठ करे—

(क) इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम्।

इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा।।

(ख) अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय।

आत्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः।।

(ग) आत्वा कुमारस्तरुण आवत्सो जगदैः सह।

आत्वा परिस्रुतः कुम्भ आदध्नः कलशैरुप।

क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम्।।

(घ) अश्वावद् गोमदूर्जस्वत् पर्णं वनस्पतेरिव।

अभि नः पूर्यतांꣳरयिरिदमनु श्रेयो वसानः।।

इति चतुरः = इन चारों मन्त्रों का एक साथ पाठ करे प्रथम ईशान कोण में स्तम्भ निर्माण प्रारम्भ करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य कोणों में भी स्तम्भ निर्माण करें, तब भी उक्त मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। यदि शाला-भवन में स्तम्भ न बन रहे हों और शिला-ईंट आदि से भवन निर्मित हो रहा हो तब ये मन्त्र—शिलान्यास मन्त्र हैं। इस प्रकार-स्तम्भ उच्छ्रयणपूर्वक भवन निर्माण के पश्चात् शुभ समय (दिन) में, प्रपद्यते = प्रवेश करता है। अर्थात्—शाला प्रवेश करे—जिसकी विधि अग्रवर्णित है।

५. अभ्यन्तरतः = नवनिर्मित शाला के अन्दर, अग्निमुपसमाधाय = पञ्चभूसंस्कार १.१.२ पूर्वक अग्नि-आवसथ्य को स्थापित कर, दक्षिणतः =अग्नि के उत्तर की ओर, उदपात्रं प्रतिष्ठाप्य = जलपात्र-कलश-घड़ा आदि स्थापित करके, स्थालीपाकं श्रपयित्वा = स्थालीपाक पकाकर।

निष्क्रम्य = शाला से बाहर निकलकर, द्वार समीपे स्थित्वा = प्रवेश द्वार के समीप खड़े रहकर, ब्रह्माणम् आमन्त्रयते = ब्रह्मा को सम्बोधित कर निम्न वाक्य कहे—ब्रह्मन् प्रविशामि इति = ब्रह्मन्! मैं प्रवेश करूँ?

६. ब्रह्मानुज्ञातः = ब्रह्मा के द्वारा 'प्रविशस्व'—इस प्रकार अनुमति प्रदान करने पर—ऋचं (तं).....प्रपद्य इति = 'ऋचं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये' मन्त्रपूर्वक प्रविशति = प्रवेश करें।

७. आज्यं संस्कृत्य = आज्य-संस्कार करके, इहरतिरित्याज्याहुती = इह रति इत्यादि मन्त्र से दो घृताहुतियाँ, हुत्वा = देकर, वास्तोष्पते आदि चार, अपरा जुहोति = अन्य आहुतियां दे—

(क) इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा।

(ख) उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत्स्वाहा॥

यजु० ८.५१ पर पठित एक ही मन्त्र है। इसके ऋषि—'देवाः' तथा देवता—'प्रजापतयो गृहस्थाः' है। मूलमन्त्र में दो बार 'स्वाहा' पदपठित है। स्यात् इसी कारण सूत्रकार ने दो आहुतियां विहित की हैं।

(क) वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।

यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा॥ इदं वास्तोष्पतये०

(ख) वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।

अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ इदं वास्तोष्पतये०

(ग) वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।

पाहि क्षेत्र उत योगे वरन्नो यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा॥

इदं वास्तोष्पतये०

(घ) अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन्।

सखा सुशेव एधि नः स्वाहा॥ इदं वास्तोष्पतये०

८. स्थालीपाकस्य जुहोति = पूर्वोक्त ६ आज्याहुतियों के अनन्तर पूर्व में तैयार (सूत्र ५) स्थालीपाक की निम्न ६ आहुतियां दे—

(क) अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वान्देवानुपह्वये।

सरस्वतीं च वाजीं च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा॥

इदमग्नये इन्द्राय बृहस्पतये विश्वेभ्यो देवेभ्यः सरस्वत्यैः वाज्यै च न मम

(ख) सर्पदेवजनान्त्सर्वान् हिमवन्तं सुदर्शनम्।

वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह।

एतान्त्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा॥

इदं सर्पदेवजनेभ्यो हिमवते सुदर्शनाय वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्य ईशानाय जगदेभ्यश्च न मम

(ग) पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ मध्यन्दिना सह।

प्रदोषमर्द्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम्। एतान्सर्वान्......

वाजिनः स्वाहा॥

इदं पूर्वाह्णायापराह्णाय मध्यन्दिनाय प्रदोषायार्द्ध रात्राय व्युष्टायै देव्यै महापथायै च न मम

(घ) कर्तारं च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधीं श्च वनस्पीतन्।

एतान्त्सर्वा०.......वाजिनः स्वाहा।

इदं कर्त्रे विकर्त्रे विश्वकर्मणे ओषधिभ्यो वनस्पतिभ्यश्च न मम

(ङ) धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह।

एतान्त्सर्वान्०.........वाजिनः स्वाहा॥

इदं धात्रे विधात्रे निधीनां पतये च न मम

(च) स्योनं शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताः स्वाहा॥

इदं ब्रह्मणे प्रजापतये सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च न मम

उक्त स्थालीपाक की आहुतियों के अनन्तर स्विष्टकृत् आहुति (स्थालीपाक से ही) देकर—महाव्याहृत्यादि प्राजापत्यान्त नौ आहुतियां देनी चाहिएं।

९. प्राशनान्ते = संस्रव प्राशन के पश्चात् अर्थात् होम के पश्चात् संस्रव प्राशन करके, काꣳस्ये = कांसे के पात्र में, सम्भारान् ओप्य = सम्भार निम्न सामग्री को रखकर—ससुराणि औदुम्बर पलाशानि = क्षीरयुक्त गूलर के पत्ते, शाड्वलं = दूब घास, गोमयं = गोबर, दधि =दही, मधु = शहद, घृतं = घी, कुशान् = कुश, यवान् च = और यव-ये आठ पदार्थ कांसे के पात्र में रखकर इन्हीं पदार्थों द्वारा आसन—खूँटी—टांड इत्यादि तथा उपस्थानेषु = आले, अलमारी आदि का प्रोक्षेत् = प्रोक्षण करे अर्थात् इन पर उक्त सामग्रीं से छींटे दे।

१०. प्रोक्षण के अनन्तर पूर्वे सन्धौ = शाला-भवन की पूर्व दीवाल की सन्धि-कोण (उत्तर-पूर्व कोण) का निम्न मन्त्र पूर्वक अभिमृशति = अभिमर्शन—स्पर्श करे। अभिमर्शन मन्त्र—

श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम्।

११. दक्षिणे सन्धौ = शाला की दक्षिण दीवाल की सन्धि (दक्षिण-पूर्व कोण) का निम्न मन्त्रपूर्वक अभिमृशति = अभिमर्शन करे। मन्त्र—

यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेताम्।

१२. पश्चिमे सन्धौ = शाला की पश्चिम दीवाल की सन्धि (पश्चिम-दक्षिण कोण) का निम्नमन्त्रपूर्वक अभिमृशति = अभिमर्शन करे। मन्त्र—

अन्नं च त्वा ब्राह्मणाश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेताम्।

१३. उत्तरे सन्धौ = शाला की उत्तर दीवाल की सन्धि (उत्तर-पश्चिम कोण) का निम्नमन्त्रपूर्वक अभिमृशति = अभिमर्शन करे। मन्त्र—

ऊर्क् च त्वा सुनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेताम्।

१४. निष्क्रम्य = शाला से बाहर निकलकर, दिश उपतिष्ठते = दिशाओं (पूर्व आदि) की ओर मुख करके उपस्थान करे। पूर्व दिशा का उपस्थान मन्त्र—

केता च मा सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामित्यग्निर्वै केतादित्यः
सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेताम्॥

१५. अथ दक्षिणतः = पूर्व दिशा के उपस्थान के अनन्तर निम्नमन्त्रपूर्वक दक्षिण दिशा का उपस्थान करे—

गोपायमानं च मारक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै
गोपायमानं रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम्॥

१६. अथ पश्चात् = दक्षिण दिगुपस्थान के अनन्तर निम्न मन्त्रपूर्वक उत्तर दिशा का उपस्थान करे—

दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिवः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम्॥

१७. अथ उत्तरतः = पश्चिम दिगुपस्थान के अनन्तर निम्न मन्त्रपूर्वक उत्तर दिशा का उपस्थान करे—

अस्वप्नश्च मानवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा

वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेताम्॥

१८. निष्ठितां = सम्पूर्णतया निर्मित—सुसज्जित शाला में निम्न दो मन्त्रों का पाठ करते हुए, प्रपद्यते = प्रवेश करे—

(१) धर्म स्थूणा राजꣳश्रीस्तूपमहोरात्रे द्वारफलके।

इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिः सह॥

(२) यन्मे किंचिदस्त्यूपहूतः सर्वगणसखायसाधुसंवृतः।

तां त्वा शालेऽरिष्टवीरा गृहान्नः सन्तु सर्वतः॥

१९. ततो ब्राह्मणभोजनम् = कर्म की समाप्ति पर ब्राह्मण को भोजन करावे।

टिप्पणी—१. पुण्याहे–शुभ दिन से अभिप्राय शुक्लपक्ष, उत्तरायण पर विशेष बल न देकर सुविधानुसार किसी भी दिन से है।

२. सूत्र १७ अनवद्राणः–अ न व द्राणः = न ऊंघने वाला, आलस्यरहित।

३. वास्तु-शाला-भवन-गृहनिर्माण कला को वास्तु कहा जाता है। भवन निर्माण का स्थान-भूमि, मुख्यद्वार, जल निकास का मार्ग एवं वहां उगे अथवा उगाए जाने वाले वृक्ष, इन सबका निवासियों पर प्रभाव आदि के विषय में गृह्यसूत्रों के वास्तु-प्रकरण में विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध हैं। जिज्ञासु आश्व० गृ० २. ८–१०, गोभिलगृ० ४.७.१–३८; कौषीतक गृ० ३.२–३ तथा मैत्रायणीय मानव गृ० २.८–१० के साथ मत्स्य आदि पुराणों के तत्तत् प्रसङ्ग देखें।

इति तृतीयकाण्डे चतुर्थी कण्डिका ✪

पञ्चमी कण्डिका

मणिकावधानम्

अथातो मणिकावधानम्॥१॥ उत्तरपूर्वस्यां दिशि यूपवदवटं खात्वा कुशानास्तीर्याक्षतानरिष्टकां (सुमनसः कपर्दिकान्) श्चान्यानि चाभिमङ्गलानि तस्मिन् मिनोति, मणिकꣳ. समुद्रोऽसीति॥२॥ अप आसिञ्चति। आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च। रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नी सरस्वती तद्गृणते वयोधादिति॥३॥ आपोहिष्ठेति च तिसृभिः॥४॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥५॥

(कर्कः)—'अथा......धानं' व्याख्यास्यत इति शेषः। मणिकशब्देनालिञ्जरोऽभिधीयते तस्यावस्थानं स्थापनम्। 'उत्तर......द्रोऽसीति'। शालायामेवोत्तरपूर्वस्यां दिशि यूपवदवटं खात्वा तस्मिन्कुशानास्तीर्य अक्षतानरिष्टकांश्चान्यानि चाभिमङ्गलानि ऋद्धिवृद्ध्यादीनि तस्मिन्मिनोति मणिकं समुद्रोऽसीत्यनेन मन्त्रेण शंभूरित्येवमन्तेन। एवमन्तता कथं ज्ञायते। वक्ष्यति ह्युपरिष्टान्मयोभूरित्यनुवाकशेषेणेति। 'अप आसिञ्चति' आपो रेवतीरित्यनेन मन्त्रेण। 'आपो......सृभिः' अप आसिञ्चति। ततो ब्राह्मणभोजनम्।।५।।

१. अथातः = शाला निर्माण—प्रवेश के अनन्तर प्रसङ्ग प्राप्त, मणिकावधानम् = मणिक-अलिञ्जर-मटका-जलपात्र (नित्यहोम, पञ्चमहायज्ञ, पर्युक्षणादि क्रियाएँ —मणिकोदक की अपेक्षा रखती हैं। वह जलपात्र कहां स्थापित किया जाए? इसी का निर्देश यहाँ है।) के स्थापन का विधान किया जा रहा है।

२. उत्तरपूर्वस्यां दिशि = शाला के उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) में, यूपवत् = यूप के सदृश, अवटं = गड्ढा, खात्वा = खोदकर (जिस प्रकार यूप स्थापन के समय अभ्रि द्वारा गड्ढा खोदते हैं और उसकी मिट्टी पूर्व की ओर फेंकते हैं, उसी प्रकार अभ्रि से इतना गहरा गड्ढा खोदना चाहिए जितने में जलपात्र का तला-निचला भाग ठीक प्रकार स्थिर हो जाए) उस पर, कुशानास्तीर्य = कशास्तरण करके, अक्षतान् = अक्षत—यवों तथा अरिष्टकान् = रीठों को, सुमनसः कपर्दिकान् च = पुष्प एवं कौड़ियां और अन्यानि चाभिमङ्गलानि = अन्य माङ्गलिक वस्तुओं को उस गड्ढे में कुशाओं के ऊपर डालकर, मणिकं = जलपात्र को, तस्मिन् = उस गड्ढे में, मिनोति = स्थाापित करे। स्थापनमन्त्र—

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूः-यजु० १८.४५

३. अप आसिञ्चति = स्थापित किए गए मणिक में, निम्नमन्त्रपूर्वक जल भरना चाहिए। मन्त्र—

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च।

रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नी सरस्वती तद्गृणते वयोधाद्।।

४. आपो हिष्ठेति च तिसृभिः = और आपो हिष्ठा आदि तीन मन्त्रों का भी उच्चारण करते हुए मणिक में जल भरना चाहिए। मन्त्र—

(१) आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऽ ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।।

(२) यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः। उशतीरिव मातरः।।

(३) तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ:। आपो जनयथा च न:॥ यजु० ११.५०-५२

५. तत: = तदनन्तर, ब्राह्मणभोजनम् = ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।

इति तृतीयकाण्डे पञ्चमी कण्डिका ✪

षष्ठी कण्डिका

शिरोरोगभेषजम्

अथातः शीर्षरोगभेषजम्॥१॥ पाणी प्रक्षाल्य भ्रुवौ मिमार्ष्टि। चक्षुर्भ्यांॅश्रोत्राभ्यां गोदानाच्छुबुकादधि। यक्ष्मंॅ शीर्षण्यंॅ रराटाद्वि वृहामीममिति॥ अर्द्धं चेदवभेदक विरूपाक्ष श्वेतपक्ष महायश:। अथो चित्रपक्ष शिरो मास्याभिताप्सीदिति॥३॥ क्षेम्यो ह्येव भवति॥४॥ ॥६॥

(कर्क:)-'अथा....जम्' व्याख्यास्यते। 'पाणी....मार्ष्टि' पाणिभ्यामेव चक्षुर्भ्यां-मित्यनेन मन्त्रेण। अर्द्धं चेत् शीर्षरोगेण गृह्यते अवभेद इत्यनेन मन्त्रेण भ्रुवि मार्जनम्। एवं च कृते क्षेम्य एव भवति॥६॥

१. अथात: = यदि व्यक्ति शिरो वेदना से पीड़ित हो तो वह किसी भी कार्य को सम्पन्न नहीं कर सकता। अतएव अब शीर्षरोगभेषजम् = शिरो रोग की भेषज-चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

२. पाणी प्रक्षाल्य = दोनों हाथों को धोकर अधोलिखित मन्त्रपूर्वक (गीले हाथों से) भ्रुवौ मिमार्ष्टि = भौंहों को पोंछना चाहिए। प्रोक्षणमन्त्र—

चक्षुर्भ्यांॅश्रोत्राभ्यां गोदानाच्छुबुकादधि।

यक्ष्मं शीर्षण्यं रराटाद् विवृहामीमम्॥

३. अर्द्धं चेत् = यदि आधे शिर में आधा-शीशी हो तब निम्न मन्त्रपूर्वक पूर्ववत् हस्त प्रक्षालित कर यदि दाहिने भाग में दर्द हो तब दाएं हाथ से और बायीं ओर होने पर बाएं हाथ से भौंह को पोंछना चाहिए। प्रोक्षण मन्त्र—

अवभेदक विरूपाक्ष श्वेतपक्ष महायश:।

अथो चित्रपक्ष शिरो मास्याभिताप्सीत्॥

४. क्षेम्यो ह्येव भवति = इस प्रकार समन्त्रक प्रोक्षणकर्त्ता क्षेम्य-रोग मुक्त हो जाता है।

टिप्पणी—१. प्रकृत कण्डिका में मन्त्र चिकित्सा वर्णित है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा आदि के तुल्य ही मन्त्र चिकित्सा मान्य है।

इति तृतीयकाण्डे षष्ठी कण्डिका

सप्तमी कण्डिका

उतूलपरिमेहः

उतूलपरिमेहः॥१॥ स्वपतो जीवविषाणे स्वयं मूत्रमासिच्यापसलवि त्रिः परिषिञ्चन्परीयात्। परि त्वा गिरेरह परिमातुः परिस्वसुः परिपित्रोश्च भ्रात्रोश्च सख्येभ्यो विसृजाम्यहम्। उतूल परिमीढोऽसि परिमीढः क्व गमिष्यसीति॥२॥ स यदि भ्रम्याद्दावाग्निमुपसमाधाय घृताक्तानि कुशेण्ड्वानि जुहुयात्। परि त्वा ह्वलनो ह्वलनिर्वृत्तेन्द्रवीरुधः॥ इन्द्रपाशेन सित्वा मह्यं मुक्त्वाऽथान्यमान-येदिति॥३॥ क्षेम्यो ह्येव भवति॥४॥ ॥७॥

(कर्कः)—'उतूलपरिमेहः' उतूलो दास उच्यते। तस्य भ्रमणशीलस्य वशीकरणाय परिमेहः परिषेकः क्रियते। 'स्वपतो........रीयात्' परि त्वागिरेरह० इत्येनन मन्त्रेण। स्वपतो दासस्य जीवतः पशोर्विषाणे स्वं मूत्रमासिच्यापसव्यं तमेव त्रिः परिषिञ्चन्परीयात् परित्वा गिरेरित्यनेन मन्त्रेण। 'स यदि.......हुयात्' स यदि पुनर्भ्रम्यादेव ततो दावाग्निमुपसमाधाय आगन्तुकत्वाच्चतुर्दशाहुतिकान्ते घृताक्तानि कुशेण्ड्वानि जुहुयात् परित्वाह्वलनोह्वलमित्येनन मन्त्रेण। एवं कृते क्षेम्य एव भवति॥७॥

१. उतूलपरिमेहः = उतूल-दास के वशीकरण हेतु, परिमेहः—उसके चारों ओर मूत्र—सचेन की विधि वर्णित है।

२. स्वपतः = जिस समय वह दास सो रहा हो, तब, जीवविषाणे = जीवित पशु के सींग में अर्थात् जीवित पशु के किसी कारणवश उतरे हुए खोल (यह खोखला—खाली होता है) में, मूत्रम् आसिच्य = स्वमूत्र भरकर उस दास के, अपसलवि = बाएं से दाहिनी ओर, त्रिः परिषिञ्चन् = तीन बार उस मूत्र को सींग

से सींचता हुआ अधोलिखित मन्त्र पढ़ते हुए, परीयात् = तीन बार घूमे। परिभ्रमण मन्त्र—

परि त्वा गिरेरह परिमातुः परिस्वसुः परिपित्रोश्च भ्रात्रोश्च

सख्येभ्यो विसृजाम्यहम्। उतूल परिमीढोऽसि परिमीढ़ः क्व गमिष्यसि॥

३. स यदि भ्रम्याद् = उक्त परिमेहन के पश्चात् भी यदि वह दास—नौकर स्वच्छन्द विचरण करे, तब, दावाग्निमुपसमाधाय = दावाग्नि-अरण्याग्नि को पञ्चभू संस्कारपूर्वक स्थापित करके, घृताक्तानि कुशेण्ड्वानि = घृत में डुबोए हुए कुशा के तीन कुण्डलों से निम्न मन्त्रपूर्वक आहुति दे—

परि त्वा ह्वलनो ह्वलनिर्वृत्तेन्द्रवीरुधः।

इन्द्रपाशेन सित्वा मह्यं मुक्त्वाऽथान्यमानयेत्॥

४. क्षेम्यो ह्येव भवति = उक्त कर्म—उतूल परिमेहन अथवा दावाग्नि होम करने से दास वश में हो जाता है।

टिप्पणी—१. प्रकृत कण्डिका वर्णित मूत्र सेचन द्वारा दास—नौकर को वश में करना—अभिचार कर्म है। मनुष्य को इस प्रकार वश में रखना शिष्ट नहीं कहा जा सकता।

२. सूत्र २—पित्रोः भ्रात्रोः —में पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है। साथ ही उक्त पदों के द्विवचनान्त रूप से यह भी ज्ञापित होता है कि—'पित्रोः' का अभिप्राय माता एवं पिता तथा 'भ्रात्रोः' का बहिन एवं भाई दोनों से है।

३. सूत्र ३—अग्निमुपसमाधाय—से स्पष्ट है कि—यहाँ महाव्याहृत्यादि स्विष्टकृदन्त चतुर्दश आज्याहुतियां भी दी जाएंगी।

इति तृतीयकाण्डे सप्तमी कण्डिका ✪

अष्टमी कण्डिका

शूलगवः

शूलगवः॥१॥ स्वर्ग्यः पशव्यः पुत्र्यो धन्यो यशस्य आयुष्यः॥२॥ औपासनामरण्यठं. हृत्वा वितानठं. साधयित्वा रौद्रं पशुमालभेत॥३॥

साण्डम्॥४॥ गौर्वा शब्दात्॥५॥ वपाꣳश्रपयित्वा स्थालीपाकमवदानानि च रुद्राय वपामन्तरिक्षाय वसाꣳस्थालीपाकमिश्रान्यवदानानि च रुद्राय शर्वाय पशुपतये उग्रायाशनये भवाय महादेवायेशानायेति च॥६॥ वनस्पतिस्विष्टकृदन्ते॥७-८॥ दिग्व्याघारणम्॥९॥ व्याघारणान्ते पत्नीः संयाजयन्तीन्द्राण्यै रुद्राण्यै शर्वाण्यै भवान्या अग्निं गृहपतिमिति॥१०॥ लोहितं पालाशेषु कूर्चेषु रुद्रायसेनाभ्यो बलिꣳ हरति यास्ते रुद्र पुरस्तात्सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नमो यास्ते रुद्र दक्षिणतः सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नमो यास्ते रुद्र पश्चात्सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नमो नमो यास्ते रुद्रोत्तरतः सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नमो यास्ते रुद्रोपरिष्टात्सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नमो यास्ते रुद्राधस्तात्सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नम इति॥११॥ ऊवध्यं लोहितलिप्तमग्नौ प्रास्यत्यधो वा निखनति॥१२॥ अनुवातं पशुमवस्थाप्य रुद्रैरुपतिष्ठते प्रथमोत्तमाभ्यां वाऽनुवाकाभ्याम्॥१३॥ नैतस्य पशोर्ग्रामं हरन्ति॥१४॥ एतेनैव गोयज्ञो व्याख्यातः॥१५॥ पायसेनानर्थलुप्तः॥१६॥ तस्य तुल्यवया गौर्दक्षिणा॥१७॥ ॥१८॥

(कर्कः)—'शूलः........युष्यः' शूलगवाख्यं कर्म स्वर्गादिभिः कामैः पर्यायेण संबध्यते, नहि युगपत्सर्वकामानामुत्पत्तिसंभवः। तत्कर्माभिधानायाह 'औपा.....साण्डम्' औपासनमग्निमरण्यं नीत्वा विहरणं कृत्वा रुद्रदेवत्यं पशुमालभेत साण्डम्। साण्डशब्देनानंपुसक उच्यते तस्य चान्वयाच्छागपरिहरणप्राप्तौ गौर्वा शब्दादित्याह। गौरेव स्यान्न छागः। कुत एतत्। शूलगव इति शब्दादेव।' वपा.....नि च' विहतश्रपणपरिप्राप्तौ सत्यां सहश्रपणार्थोऽयमारम्भः। विहतं श्रपणं कथमितिचेच्चोदकपरिप्राप्त्या। आज्यासादनोत्तरकालमन्येषां पशूनां शाखानिखननं हि प्राप्तम्। उत्तराघारान्ते च पशुसमञ्जनादि वपादीनां विहतमेव श्रपणं प्राप्तमतो वचनात्सहश्रपणमुच्यते।' रुद्रो......वसां' जुहोतीति शेषः। 'स्थाली......शानाय' इत्येभिर्मन्त्रैः। ततो वनस्पतिहोमः, स च यथादृष्टः पृषदाज्येन। 'स्विष्ट......रणं' कर्त्तव्यमिति शेषः। तच्च वसया, यथा अग्नीषोमीये दृष्टम्। 'व्याघा........पतिं' एत एव मन्त्राः। अपराग्नौ पत्नीसंयाजहोमः। तथैव दृष्टत्वात्। ततो महाव्याहृत्यादि। 'लोहितं........रति' यास्ते रुद्र पुरस्तात्सेना० इत्येवमादिभिर्मन्त्रैः। 'ऊवध्यं....ष्ठते' अनुवातमिति न प्रतिवातम्। 'प्रथ... भ्याम्' उपतिष्ठते। वा शब्दो विकल्पार्थः। 'नैत........रन्ति' मांसमिति। 'एते.......

ख्यात:'। 'पायसेन' असौ भवति। 'अनर्थलुप्त:' पायसमात्रसाधनत्वे पाशुको योऽर्थ-स्तेनालुप्तो भवति। एतदुक्तं भवति। पायसेन देवतामात्रेज्येति। 'तस्य.........क्षिणा'।।८।।

१. शूलगव: = शूलगव संज्ञक कर्म की विधि वर्णित है।

२. स्वर्ग्य: = यह शूलगव कर्म स्वर्गप्रद, पशव्य: = पशुओं के लिए हितकारी, पुत्र्य: = पुत्रप्रद, धन्य: = धन प्रदाता, यशस्य: = यश और आयुष्य: = आयुवर्धक है।

३. औपासनम् = औपासन—आवसथ्याग्नि को, अरण्यं हत्वा = अरण्य-जंगल में ले जाकर, वितानं साधयित्वा = दर्श पौर्णमास के समान गार्हपत्य आदि अग्नित्रय के खर बनाकर, रौद्रं पशुम् = रुद्र देवताक पशु का, आलभेत = स्पर्श करके त्याग करना चाहिए।

४. साण्डम् = यह रुद्र देवताक पशु पुंस्त्वयुक्त होना अभीष्ट है।

५. गौर्वा शब्दात् = रुद्र देवताक छाग—बकरा व वृषभ (सांड) दोनों में से शूलगव कर्म में ही गो शब्द के कारण यहाँ साण्ड गौ ही अभिप्रेत है, छाग नहीं।

६. वपां = यव बीजों को कूट कर घृत एवं मीठे मे मिलाकर उसका, स्थालीपाकं श्रपयित्वा = स्थालीपाक पाक कर, अवदानानि च = और उस स्थालीपाक के टुकड़े काटकर, रुद्राय = रुद्र देवता के लिए, वपां = पिष्टयवों को, अन्तरिक्षाय = अन्तरिक्षस्थ देवताओं के निमित्त, वसां = घी के साथ, स्थालीपाक-मिश्रान्यवदानानि = स्थालीपाक मिश्रित स्थाली में से काटे गए टुकडे लेकर-अग्नये = अग्नि, शर्वाय = शर्व, पशुपतये = पशुपति, उग्राय = उग्र, अशनये = अशनि, भवाय = भव, महादेवाय = महादेव, ईशानाय इति च = और ईशान के निमित्त, जुहोति = आहुति दे।

७–९. वनस्पतिस्विष्टकृदन्ते = वनस्पति एवं स्विष्टकृत् होम के अनन्तर, दिग्व्याघारणम् = दिग्व्याघारण अर्थात् दिशाओं के नाम पर निम्न छ: आहुतियां दें।

वनस्पति के निमित्त आहुति—पृषदाज्य—दधि मिश्रित आज्य से वनस्पतये स्वाहा—कहकर देनी चाहिए। स्विष्टकृत् आहुति—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा—कहकर स्थालीपाक अथवा आज्य से दे। दिशाओं के निमित्त चारों ओर चार तथा दो मध्य में कुल छ: आहुतियां घृत द्वारा निम्न प्रकार देनी चाहिएं—

(१) दिशः स्वाहा, (२) प्रदिशः स्वाहा, (३) आदिशः स्वाहा, (४) विदिशः स्वाहा, (५) उद्दिशः स्वहा, (६) दिग्भ्यः स्वाहा।

१०. व्याघारणान्ते = दिग् व्याघारण के पश्चात्, पत्नी: संयाजयन्ति = गार्हपत्याग्नि में पत्नी संयाज नामक पांच आहुतियां दें। ये निम्न हैं—

(१) इन्द्राण्यै स्वाहा, (२) रुद्राण्यै स्वाहा, (३) शर्वाण्यै स्वाहा, (४) भवान्यै स्वाहा, (५) अग्नये गृहपतये स्वाहा।

११. लोहितं = लाल चन्दन मिश्रित घृत से, पालाशेषु कूर्चेषु = पलाश के पत्तों से बने कूर्च—आसनों पर, रुद्राय सेनाभ्य: = रुद्र की सेना के निमित्त बलिं हरति = बलि प्रदान करे। बलिप्रदान मन्त्र—

(१) पूर्व—**यास्ते रुद्र पुरस्तात्सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्ते नमः**

(२) दक्षिण—**यास्ते रुद्र दक्षिणतः सेनास्ताभ्य एष०..........नमः**

(३) पश्चिम—**यास्ते रुद्र पश्चात्सेनास्ताभ्य एष०...........नमः**

(४) उत्तर—**यास्ते रुद्रोत्तरतः सेनास्ताभ्य एष०.............नमः**

(५) ऊपर—**यास्ते रुद्रोपरिष्टात्सेनास्ताभ्य एष०...............नमः**

(६) नीचे—**यास्ते रुद्राधस्तात्सेनास्ताभ्य एष०..................नमः**

१२. ऊवध्यं लोहितलिप्तम् = लाल चन्दन का घृत मिश्रित वह अंश जो पात्र में नीचे जम गया हो ऊवध्य है, उस ऊवध्य को अग्नौ = आहवनीयाग्नि पर, प्रास्यति = डाल दे, अधो वा निखनति = अथवा भूमि में दबा दे।

१३. अनुवातं = वायु के अनुकूल, पशुम् अवस्थाप्य = पशु को खड़ा करके अर्थात् जिस ओर से वायु आ रही हो उस ओर पशु को खड़ा करके, रुद्रैः उपतिष्ठते = रुद्रोपस्थान करे। प्रथमोत्तमाभ्यां = उपस्थान के समय यजु० १६ के प्रथम एवं अन्तिम अनुवाक का पाठ करे।

१४. एतस्य पशो: = इस पशु को, ग्रामं न हरन्ति = ग्राम को नहीं ले जाना चाहिए।

इस सूत्र में षष्ठी विभक्ति द्वितीयार्थ में स्वीकार करनी चाहिए। यदि षष्ठी में ही अर्थ करें तब यज्ञ का प्रसङ्ग है ही—अत: षष्ठ्यन्त 'यज्ञस्य' की अनुवृत्ति एवं द्वितीयान्त 'स्थालीपाकम्' का अध्याहार करने पर अर्थ हो जाएगा—

इस पशुयज्ञ के स्थालीपाक (जो आहुति आदि से अवशिष्ट हो) को ग्राम को नहीं ले जाना चाहिए।

१५. एतेनैव = प्रस्तुत शूलगव की विधि द्वारा ही, गोयज्ञः = गोयज्ञ भी, व्याख्यातः = व्याख्यात हो चुका है। अर्थात्—शूलगव एवं गोयज्ञ एक ही हैं।

१६. पायसेन = गोयज्ञ में पायस-खीर द्वारा शूलगवोक्त प्रधान देवताओं के निमित्त होम करने से, अनर्थलुप्तः = अर्थ—उद्देश्य का लोप नहीं होता।

१७. तस्य तुल्यवया गौः = शूलगव यज्ञ में यजमान पत्नी के जितनी संतान हुई हों, उतने ही बार प्रसव प्राप्त गौ, दक्षिणा = दक्षिणा है।

टिप्पणी—१. कर्क आदि सभी भाष्यकार शूलगव को वृषभ-साण्ड के मांस से ही सम्पाद्य रूप में व्याख्यात करते हैं। द्वितीय सूत्रस्थ शूलगव के प्रवृत्तिनिमित्त देखें, तब द्वितीय पद ही है—"पशव्यः" अर्थात्—पशुभ्यो हितः—हितसाधकः—पशुओं के लिए हितकर। पशु की चर्बी अथवा हृदय के टुकड़े—अवदान काटने से यह पशु के लिए किस प्रकार हितकर हो सकता है? अर्थात् शूलगव कर्म इस प्रकार होना चाहिए, जिससे पशुओं का हित हो। अग्रिम सूत्र ३ के साथ सूत्र १४ को पढ़ने पर यह प्रसङ्ग स्पष्ट हो जाता है।

मध्यकालीन भाष्यकार—सूत्रग्रन्थों में आङ्पूर्वक लभ् धातु का प्रयोग देखते ही पशुबलि (हत्या) की कल्पना करने लगते हैं, जबकि वाल्मीकि रामायण आदि ग्रन्थों एवं सूत्र ग्रन्थों में अनेकत्र इसका अर्थ स्पर्श करना है। रामायण में "सत्येनायुधमालभे"—आङ्पूर्वक लभ का स्पर्श अर्थ हो, सूत्रग्रन्थों में वही शब्द हत्यार्थ में कैसे प्रयुक्त किया जा सकता है? विद्वज्जन विचार करें।

२. उत्तरी भारत के ग्रामों में अभी तक एक परम्परा है कि—व्यक्ति गौ के स्वस्थ बछड़े को दाग लगाकर चिह्नित कर (वह भी प्रायः त्रिशूल अथवा ओम्) सांड के रूप में जंगल में छोड़ देते हैं। इस प्रकार स्पर्श कर छोड़े गये अर्थात् चिह्न लगा कर छोड़े गए सांड को ग्राम में बांधकर पाल्य पशुओं की तरह नहीं रखते हैं। वह गोवंश की वृद्धि करता हुआ जंगल में—खेतों में यथेच्छ विचरण करता है। इस प्रकार निर्बाध रूप से विचरण करते हुए पशुवंश की वृद्धि का हेतु होने से यह कर्म पशव्यः-पशुहितसाधक होता है। रुद्र को पशुओं का अधिपति कहा गया है। अतः यहाँ रुद्र का स्मरण कर्म की रूपसमृद्धि ही है।

इति तृतीयकाण्डे अष्टमी कण्डिका ✪

नवमी कण्डिका

वृषोत्सर्गः

अथ वृषोत्सर्गः॥१॥ गोयज्ञेन व्याख्यातः॥ २॥ कार्तिक्यां पौर्णमास्याᳪ रेवत्यां वाश्वयुजस्य॥३॥ मध्येगवाᳪसुसमिद्धमग्निं कृत्वाज्यᳯ संस्कृत्येह-रतिरिति षट् जुहोति प्रतिमन्त्रम्॥४॥ पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाजᳯ सनोतु नः स्वाहा, इति पौष्णस्य जुहोति॥५॥ रुद्रान् जपित्वैकवर्णे द्विवर्णे वा यो वा यूथं छादययि यं वा यूथं छादयेद्रोहितो वैव स्यात्सर्वाङ्गैरुपेतो जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्रो यूथे च रूपस्वित्तमः स्यात्तमलंकृत्य यूथे मुख्याश्चतस्रो वत्सतर्यस्ताश्चालंकृत्य एतं युवानं पतिं वो ददामि तेन क्रीडन्ती-श्चरथ प्रियेण॥ मा नः साप्तजनुषाऽसुभगा रायस्पोषेण समिषा मदेमेत्येतयैवो-त्सृजेरन्॥६॥ नभ्यस्थमभिमन्त्रयते मयोभूरित्यनुवाकशेषेण॥७॥ सर्वासां पयसि पायसᳪश्रपयित्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्॥८॥ पशुमप्येके कुर्वन्ति॥९॥ तस्य शूलगवेन कल्पो व्याख्यातः॥१०॥ ॥९॥

(कर्कः)—'अथ वृषोत्सर्गः' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। 'गोय........ख्यातः' एतदुक्तं भवति पायसेन शूलगवदेवताभ्यो होमः॥ कार्तिक्यां पौर्णमास्यां रेवत्यां वाश्वयुज्यां पौर्णमास्यामेव कर्त्तव्यः। वा शब्दो विकल्पार्थः। 'मध्ये........न्त्रम्' आज्यं संस्कृत्येतिग्रहणं प्रागाघारहोमादप्याहुतयो यथा स्युरिति। तत आघारादि, पुनः पायसेन शूलगवदेवताभ्यो होमः। 'पूषा......होति' तस्य च श्रवणानुपदेशात्तद्भूतस्योपादानम्। तत उभयोः सकाशात्स्विष्टकृत् व्याहृत्यादि च। ततो 'रुद्रान्.....र्णे वा' वृषमुत्सृजेत्। 'यो वा......येत्' यो नाम महत्त्वेन गोयूथं छादयति यो वा तेनैव छाद्यते। लघुरित्यर्थः। 'रोहि.....स्यात्' रोहित एव वा भवति। यथोक्तो वेति विकल्पः। 'सर्वाङ्गैरुपेतः' अन्यूनाङ्ग इत्यर्थः। जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्रो भवेत्। 'यूथे.......कृत्य' स्रङ्मालादिभिः पतिं वो ददामीत्येतमुत्सृजेत्। 'नभ्य........शेषेण' वत्सतरीणां मध्यस्थो नभ्यस्थ इत्युच्यते। इदमन्यत्कर्मान्तरमधुनोच्यते। 'सर्वा......ख्यातः' शूलगववत्सर्वे कर्तव्यमित्यर्थः॥

१. अथ = शूलगव विधान के पश्चात् वृषोत्सर्गः = वृषोत्सर्ग विधि का कथन करते हैं।

२. गोयज्ञेन व्याख्यातः = वृषोत्सर्ग का फल गोयज्ञ (शूलगव कण्डिका सूत्र २ द्रष्टव्य है) के तुल्य ही है।

३. कार्तिक्यां पौर्णमास्यां = वृषोत्सर्ग का काल कार्तिक पूर्णिमा, आश्वयुजस्य रेवत्यां वा = अथवा आश्विन मास का रेवती नक्षत्र है।

४. मध्येगवां = गायों के मध्य में अर्थात्—गोष्ठ-गायों के बाडे में, सुसमिद्धम् अग्निं कृत्वा = पञ्चभू संस्कारपूर्वक स्थापित आवसथ्याग्नि को सम्यक् प्रकार से प्रज्वलित करके, आज्यं संस्कृत्य = आज्य को संस्कृत करके, इहरतिरिति षट् जुहोति प्रतिमन्त्रम् = 'इह रति' इत्यादि छः मन्त्रों से छः आहुतियां दें—

(१) इहरतिः स्वाहा, इदमग्नये न मम

(२) इह रमध्वं स्वाहा, इदमग्नये न मम

(३) इह धृतिः स्वाहा इद०

(४) इह स्वधृतिः स्वाहा, इद०

(५) उपसृजं धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् स्वाहा, इद०

(६) रायस्पोषमस्मासु दीधरत्स्वाहा, इद०

५. पूषा........स्वाहा, इति पौष्णस्य जुहोति = पूषा गा० मन्त्रपूर्वक पिष्ट चरु की एक आहुति पूषा के निमित्त देनी चाहिए। मन्त्र—

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः।
पूषा वाजं सनोतु नः स्वाहा॥ इदं पूष्णे न मम

६. रुद्रान् जपित्वा = यजुर्वेदीय रुद्राध्याय के मन्त्रों का जप करके, एक वर्ण द्विवर्ण वा = एक वर्ण-रंग (श्वेत आदि) का हो अथवा दो वर्ण-रंग (यथा-श्वेत कृष्ण मिश्रित) वाला हो, रोहितो वा एव स्यात् = अथवा रोहित—लाल रंग (गौर वर्ण) का ही हो, यो वा यूथं छादययि = जो अपने झुण्ड को अपने शरीर या बल से आच्छादित कर रहा हो अर्थात् महत्तम परिमाण युक्त हो, यं वा यूथं छादयेत् = अथवा जो अपने झुण्ड में अल्प परिमाण युक्त (अल्पवय के कारण) हो, सर्वाङ्गैः उपेतः = सभी अङ्गों से युक्त अर्थात् न तो न्यूनाङ्ग हो और न ही अधिक अङ्गयुक्त हो, जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्रः = जीववत्सा (जिसका बछड़ा जीवित हो) एवं पयस्विनी—दुधारू गौ का पुत्र हो, यूथे च रूपस्वितमः स्यात् = और अपने झुण्ड में सर्वाधिक सुन्दर हो, तम् अलंकृत्य = ऐसे बछड़े को माला =

= घण्टी आदि से अलंकृत करके, यूथे मुख्याश्चतस्रो वत्सतर्यः = यूथ की चार मुख्य बछिया ले, ताः च अलंकृत्य = और उन बछियाओं को भी अलंकृत करके, एतं युवानं.......मदेम इति एतया एव उत्सृजेरन् = एतं युवानम्—मन्त्रपूर्वक जंगल में छोड़ दे। मन्त्र—

एतं युवानं पतिं वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्चरथ प्रियेण।

मा नः साप्त जनुषाऽसुभगा रायस्पोषेण समिषा मदेम।।

७. नभ्यस्थम् = बछियों के मध्य में स्थित उस बछड़े (वृषभ) को मयोभूरित्यनुवाकशेषेण = 'मयोभूः अभि मा वाहि स्वाहा' इत्यादि अनुवाक शेष (यजु० १८.४५–४९) से, अभिमन्त्रयते = अभिमन्त्रित करे।

८. सर्वासां पयसि = जिसके घर जितनी गाएं हों उन सबके दूध में, पायसं श्रपयित्वा = खीर पका कर, ब्राह्मणान् भोजयेत् = ब्राह्मणों (कम से कम तीन) को भोजन करावे।

९. एके = कतिपय आचार्य, पशुम् अपि = एक पशु को भी, पायस—प्राशन का विधान कुर्वन्ति = करते हैं।

१०. तस्य कल्पः = उसका विधान, शूलगवेन व्याख्यातः = शूलगव के सदृश ही है।

इति तृतीयकाण्डे नवमी कण्डिका ✪

दशमी कण्डिका

उदककर्म–दाहविधिः

अथोदककर्म।।१।। अद्विवर्षे प्रेते मातापित्रोराशौचम्।।२।। शौचमेवेत-रेषाम्।।३।। एकरात्रं त्रिरात्रं वा।।४।। शरीरमदग्ध्वा निखनन्ति।।५।। अन्तःसूतके चेदोत्थानादाशौचर्ठ. सूतकवत्।।६।। नात्रोदककर्म।।७।। द्विवर्षप्रभृति प्रेतमाश्म-शानात्सर्वेऽनुगच्छेयुः।।८।। यमगाथां गायन्तो यमसूक्तं च जपन्त इत्येके।।९।। यद्युपेतो भूमिजोषणादिसमानमाहिताग्नेरोदकान्तस्य गमनात्।।१०।। शालाग्निना दहन्त्येनमाहितश्चेत्।।११।। तूष्णीं ग्रामाग्निनेतरम्।।१२।। संयुक्तं मैथुनं वोदकं

याचेरन्नुदकं करिष्यामह इति।।१३।। कुरुध्वं मा चैवं पुनरित्यशतवर्षे प्रेते।।१४।। कुरुध्वमित्येवेतरस्मिन्।।१५।। सर्वे ज्ञातयोऽपोभ्यवयन्त्यासप्तमात्पुरुषाद्दश-माद्वा।।१६।। समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनुस्मरेयुः।।१७।। एकवस्त्राः प्राचीना-वीतिनः।।१८।। सव्यस्यानामिकयाऽपनोद्यापनः शोशुचदघमिति।।१९।। दक्षिणमु-खानिमज्जन्ति।।२०।। प्रेतायोदकठ. सकृतप्रसिञ्चन्त्यञ्जलिनाऽसावेतत्त उदक-मिति।।२१।। उत्तीर्णाञ्छुचौ देशे शाड्वलवत्युपविष्टांस्तत्रैतानपवदेयुः।।२२।। अनवेक्षमाणा ग्राममायान्ति रीतीभूताः कनिष्ठपूर्वाः।।२३।। निवेशनद्वारे पिचुमन्द पत्राणि विदश्याचम्योदकमग्निं गोमयं गौरसर्षपांस्तैलमालभ्याश्मानमाक्रम्य प्रविशन्ति।।२४।। त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणोऽधःशायिनो न किञ्चन कर्म कु (र्युः?र्वन्ति) र्न प्रकु (र्वीरन्?र्वन्ति)।।२५।। क्रीत्वा लब्ध्वा वा दिवैवान्नमश्नीयु-रमाꣳसम्।।२६।। प्रेताय पिण्डं दत्त्वाऽवनेजनदानप्रत्यवनेजनेषु नामग्राहम्।।२७।। मृन्मये ताꣳरात्रीं क्षीरोदके विहायसि निदध्युः प्रेतात्रस्नाहीति।।२८।। त्रिरात्रं शावमाशौचम्।।२९।। दशरात्रमित्येके।।३०।। स्वाध्यायमधीयीरन्।।३१।। नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्जम्।।३२।। शालाग्नौ चैके।।३३।। अन्ये एतानि कुर्युः।।३४।। प्रेतस्पर्शिनो ग्रामं न प्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनात्।।३५।। रात्रौ चेदादित्यस्य।।३६।। प्रवेशनादि समानमितरैः।।३७।। पक्षं द्वौ वाऽऽशौचम्।।३८।। आचार्ये चैवम्।।३९।। मातामहयोश्च।।४०।। स्त्रीणां चाप्रत्तानाम्।।४१।। प्रत्तानामितरे कुर्वीरन्।।४२।। ताश्च तेषाम्।।४३।। प्रोषितश्चेत्प्रेयाच्छ्रवणप्रभृति कृतोदकाः कालशेषमा-सीरन्।।४४।। अतीतश्चेदेकरात्रं त्रिरात्रं वा।।४५।। अथ कामोदकान्यृत्विक्श्व-शुरसखिसंबन्धिमातुलभागिनेयानाम्।।४६।। प्रत्तानां च।।४७।। एकादश्यामयुग्मा-न्ब्राह्मणान्भोजयित्वा माꣳसवत्।।४८।। प्रेतायोद्दिश्य गामप्येके घ्नन्ति।।४९।। पिण्डकरणे प्रथमः पितृणां प्रेतः स्यात्पुत्रवांश्चेत्।।५०।। निवर्तेत चतुर्थः।।५१।। संवत्सरं पृथगेके।।५२।। न्यायस्तु न चतुर्थः पिण्डो भवतीति श्रुतेः।।५३।। अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात्।।५४।। पिण्डमप्येके निपृणन्ति।।५५।। ।।१०।।

(कर्कः)—'अथोदककर्म' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। उदककर्मग्रहणेन च आशौचादियमनियमयोरुपलक्षणम्। सर्वमेतदत्र व्याख्यास्यत इति।' अद्भि......रात्रं वा' नेतरेषां सपिण्डानामिति गृह्यकारमतमेतत्। स्मृत्यन्तरे तु सर्वसपिण्डविषयत्वेनैव

तदभिहितम्। ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः। अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसञ्चयनादृते। नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो नापि कार्योदकक्रिया। अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा-क्षपेयुस्त्र्यहमेव तु। एतत्तु सर्वसपिण्डविषयत्वेनाभिहितम्। ते ह्याशौचार्हा इति। अस्तिसञ्चयनाभावानुवाद एव, नहि निखनने सति तत्संभवति, अपिच संचयनं वैतानिकस्यैव विहितम्, तेनेतरस्य उपदेशातिदेशयोरभावादप्राप्तिरेव। तत्रैकरात्रविधान-मपि। नृणामकृतचूडानामशुद्धिर्नैशिकी स्मृता। निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। वयोवस्थाविशेषेण चैतद् व्यवस्थानं द्रष्टव्यम्। तथा चाह दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते। अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते। दन्तजननमवधित्वेन धर्म सूत्रकार आह। एवञ्च सति प्राक् दन्तजातान्नैशिक्यशुद्धि उर्ध्वं तु त्रिरात्रमिति। अन्यदपि सद्यः शौचमाम्नातम्। बाले प्रेते च संन्यासे सद्यः शौचं विधीयत इति। एतच्च प्राङ्नामकरणाद् द्रष्टव्यम्। नामकरणं ह्यवधित्वेन दर्शयति। नात्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बांधवैरुदकक्रिया। जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वाऽपि कृते सतीति नामकरणमवधित्वेनाभिहितम्। अतस्ततः प्राक् सद्यः शौचम्। दन्तजननात्प्राक् नैशिक्य-शुद्धिः ऊर्ध्वं तु त्रिरात्रमिति। कृतचूडस्यापि प्रागुपनयनात् त्रिरात्रम्। तत्किमर्थं द्वित्रिरात्रग्रहणं? कृतचूडस्य ऊनद्विवार्षिकस्य च। यदूनद्विवार्षिकस्य त्रिरात्रग्रहणं तदग्निदाहोदकदानयोर्विकल्पेन। ऊर्ध्वं तु नियम इति। कुत एतदिति चेत्। येनैवमाह। द्विवर्षप्रभृतिप्रेतमाश्मशानात्सर्वेऽनुगच्छेयुरिति। एतच्च पुंविषयम्। येनस्त्रीविषयमन्यद्व-चनान्तरम्। स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः। यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभय इति। तथा। अप्रौढायां सद्यः तु कन्यायां शौचं विधीयते। अप्रौढा चाकृतचूडोच्यते। तथा अहस्त्वदत्तकन्यास्विति वयोवस्थाविशेषेण च सर्ववर्णविषय-माशौचम्। नह्यत्र वर्णविशेषोऽवस्थातुं शक्यते इति। 'शरी.........नन्ति' ऊनद्विवार्षिकं प्रेतम्। गृह्यकारमतमेतत्। मानवे तु विकल्पेन दाहोऽपि भवतीत्युक्तमेव। 'अन्तः........ वत्' अन्तःसूतके चेदिति। अन्तः सूतके चेत्पुनः सूतकमापद्यते। आ उत्थानादशुद्धिः पूर्वस्यैव सूतकाशौचस्य उत्थानेनोत्तरस्य शुद्धिः। अन्तःशावाशौचं च सूतकवद् द्रष्टव्यम्। यदुक्तं भवति—अन्तःशावाशौचे चेत् शावाशौचान्तरमापतति तस्यापि पूर्वेणैव शुद्धिः। तथा च गौतमाचार्यः। तच्चेदन्तः पुनरापतेत शेषेण शुध्येरन्निति। तच्छब्देन च समानजातीयं-ग्रहणात्सूतकोपनिपाते, नतु विजातीये। तच्छब्दोपादान-सामर्थ्यात्। शङ्खोऽपि चाह अथ चेदन्तरा म्रियेत जायेत वा शिष्टैरेव दिवसैः शुद्धयेत्। अहः शेषे सति द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिरिति वर्णयन्ति। मरणस्योपक्रान्तत्वात्

अन्तः सूतके चेद्बालस्य मरणमापद्येत। आ उत्थानादाशौचं सूतकवद्भवति माभूद्बालत्वात्सद्यः शौचमिति। 'नात्रोदककर्म' अत्रशब्देन ऊनद्विवार्षिकस्य ग्रहणम्। तस्योदककर्म न भवति। उदकदानप्रतिषेधाच्च दाहोऽपि न भवति। संनियोगो ह्यनयोः स्मृत्यन्तरेऽपि। नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो नापि कार्योदकक्रियेति। 'द्विव.......च्छेयुः' सर्वशब्दः सपिण्डविषयः सर्वेऽनुगच्छेयुरिति। 'यम.......त्येके' गाथा छन्दोविशेषः। यमसूक्तं तु प्रसिद्धमेव। 'यद्यु.........नात्' यद्युपनीतः प्रेतो भवति ततो भूमिजोषणाद्याहिताग्निविधानेन तुल्यमा उदकान्तस्य गमनात्। 'शाला........श्चेत्' एवं प्रेतं शालाग्निनाऽऽवसथ्येन दहन्ति यद्यसावाहितः। 'तूष्णीं......रम्' इतरमकृतावसथ्यं ग्रामाग्निना तूष्णीं दहन्ति। तूष्णीमिति च मन्त्रनिवृत्त्यर्थम्। 'संयु.......मह इति' संयुक्तः प्रसिद्ध एव। मैथुनस्यैकदेशे श्यालके प्रसिद्धः तमुदकं याचन्ते उदकं करिष्यामह इत्यनेन मन्त्रेण। 'कुरु......प्रेते' पृष्टः प्रतिवचनं कुरुध्वं मा चैवं पुनरित्यशतवर्षे प्रेते। कुरुध्वमेवेतरस्मिन्। शतवर्षप्रभृति कुरुध्वमिति प्रतिवचनम्। 'सर्वे.....माद्वा' ज्ञातयः। सपिण्डाः समानोदकाश्च सर्व एवापोऽभ्यवयन्ति। 'समा......रेयुः' समानग्रामवासे तु यावदपि संबन्धः स्मर्यते अमुष्मिन्नन्वये संबध्यामह इति तावन्तोऽभ्यवेयुः। 'एक.....ज्जन्ति' तूष्णीमेव, अपनोदने मन्त्रः। 'प्रेता......कमिति' असावेतत्त इत्यनेन मन्त्रेण। 'उत्ती......देयुः' उदकादुत्तीर्णान्सतः शाड्वलवति प्रदशे उपविष्टानपवदेयुरन्ये लोकयात्रिकाः। प्रेतगुणव्याख्यानेनापवादः। 'अन.....पूर्वाः' पश्चादनवलोकयन्तः पङ्क्तिव्यवस्थानेन कनिष्ठमग्रतः कृत्वा ग्राममागच्छन्ति। 'निवे.......शान्ति' निवेशनस्य गृहफलिकस्य द्वारे पिचुमन्दस्य निम्बस्य पत्राणि विदश्य दन्तैः खण्डयित्वा तत आचम्य उदकादीन्यालभ्याश्मानमाक्रम्य प्रविशन्ति। 'त्रिरा.....र्वन्ति' न कारयन्तीत्यर्थः। 'क्रीत्वा........ग्राहम्' दिवाग्रहणं रात्रिप्रेतिषेधार्थम्, त्रिरात्रमयं धर्मः, अवनेजनदानप्रत्यवनेजनेषु नामग्राहं गृहीत्वा नामेत्यर्थः। अमांसं पिण्डं दत्त्वा ततो भोजनम्। 'मृन्म.....स्नाहीति' मृन्मये पात्रे तामेवैकां रात्रीं क्षीरोदके कृत्वा विहायसि आकाशे निदध्युः प्रेतात्र स्नाहीत्यनेन मन्त्रेण। 'त्रिरात्रꣳ......मेके' एके च दशरात्रमेके च त्रिरात्रमेके च एकरात्रं शावाशौचमिच्छन्ति। एवं हि स्मृत्यन्तरे। दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते। अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव वा। एतच्चोपनयनप्रभृतिषु द्रष्टव्यम्। पूर्वं हि वयोवस्था विशेषेणाभिहितम्। व्यवस्थया च विकल्पोऽयं वृत्तस्वाध्यायापेक्षया। वृत्तनिमित्तानि चाध्यापनतदर्थज्ञानानुष्ठानानि। तत्रैकगुणसंयोगेऽर्वाक् संचयनादाशौचम्। गुणद्वययोगात्त्र्यहः। गुणत्रययोगे एकाह इति। अपरे एकीयशब्दात्सद्यः शौचमिच्छन्ति,

यदा गुणत्रययोगो भवति वृत्तिसंकोश्च त्र्यहैकाहिको वेति तदा सद्यः शौचं भवति स्मृत्यन्तरात्। 'न स्वा....रन्' येषां यावदाशौचम्। प्रातिस्विकाश्चैतेऽशौचकल्पाः न सूतकाशौचवत्सर्वेषां सहेति। तत्र हि—जननेऽप्येवमेव स्यान्मातापित्रोस्तु सूतकम्। सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिरिति। अपरे दशाहस्यैवातिदेशो न चतुरहत्र्यहैकाहानाम्। कुत एतत्। संचयनकल्पेन व्यवधानात्, अपिच सर्वकल्पातिदेशे सति मातुरप्येकाहेन शुद्धिः प्राप्नोति। तच्च नेष्यते। येन पितुस्त्र्यहमाशौचविधानं बैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहमित्यनेन पितुस्त्र्यहेन शुद्धिर्मातुश्चैकाहेनेति विरोधः। कथं—रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यत इति। तस्मादपि दशाहस्यैवातिदेशः। शावं चानपेक्ष्यैवमेव स्यादिति, एवं सति जननेऽप्येवमेव स्यादिति सपिण्डानां दशाहः।

मातापित्रोश्च सूतकमित्यनेन मातापित्रोर्दशाहः। सूतकं मातुरेव स्यादित्यनेन मातुरेव दशाहः। अत्र पक्षत्रितये व्यवस्था युक्तरूपा भवति। सपिण्डानां निर्गुणत्वेन दशाहः वृत्तवत्त्वे पुनः सति मातापित्रोरेव दशाहः। वृत्तवत्त्वे मातुरेव दशाहो भवति। अस्मिंश्च पक्षे बैजिकादभिसंबन्धादित्यनेन पितुस्त्र्यहनियम इति व्यवस्था न्याय्या। शावाशौचेऽपि दशाहादीनां व्यवस्थैव न्याय्येति। यत्पुनरुक्तम्। उपस्पृश्य पिता शुचिरिति तत्प्रचेतसो वचनादग्निहोत्रार्थमेव न संव्यवहारार्थम्। तेन सूतकाशौचे पक्षत्रयश्रवणात्तत्र नैवं व्यवस्था युक्तेति। शावे पुनर्वृत्तापेक्षया प्रातिस्विकैव शुद्धिरिति। 'नित्या.......वर्जम्' नित्यानि कर्माणि निवर्तन्ते वैतानिकानि वर्जयित्वा। वैतानिकानि अग्निहोत्रादीनि। 'शालाग्नौ चैक' एके आचार्याः शालाग्निकानां निवृत्तिमिच्छन्ति। एके नेति। यदा चानिवृत्तिस्तदान्य एतानि कुर्युर्न स्वयमिति। 'प्रेत.....नात्' प्रेतस्पर्शिनः सपिण्डाः ग्रामं न प्रविशन्ति नक्षत्रदर्शनादर्वाक्। 'रात्रौ.....त्यस्य' रात्रौ चेत्प्रेतः स्यात् आदित्यदर्श-नादर्वाक् न प्रविशेयुः। 'प्रवे......मितरैः' सपिण्डैः प्रवेशनादि तुल्यं भवति। 'पक्षं......चम्' प्रेतस्पर्शिनामिति केचित्। तत्पुनरनुपपन्नम् नहि प्रेतस्पर्शनमात्रेणेयन्तं कालमाशौचं युक्तम्। तस्माद्वर्णान्तरविषयमेवैतत्। पक्षं वैश्यस्य द्वौ शूद्रस्य वाशब्दाद् द्वादशाहानि क्षत्रियस्य। तथाच स्मृत्यन्तरम्—शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन क्षत्रियः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति। 'आचार्ये चैवम्' आचार्ये प्रेते एवमेवोदकदानादि कर्त्तव्यम्। 'मातामहयोश्च' च शब्दादेवमेवेति। द्विवचनं मातामह्यपेक्षया। 'स्त्रीणां...नाम्' एषैवेतिकर्त्तव्यता कार्या।' प्रत्ता.....षामिति' इतरशब्देन येभ्यः प्रत्तास्ते उच्यन्ते ता अपि

च तेषां कुर्वन्ति। 'प्रोषि....मिसीरन्' अथ यदि प्रोषितश्चेत्प्रेयात् श्रवणकालप्रभृति कृतोदकाः सन्तः आशौचकालशेषमासीरन्। 'अती....त्रं वा' आशौचकालातिक्रमेण सति एकरात्रं त्रिरात्रं वा। तथाच स्मृत्यन्तरम्—अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति। एकरात्रं तु स्मृत्यन्तरात् अन्यापि स्मृतिः—संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापोविशुध्यति। 'अथ का....यानाम्' एषामिच्छयोदकदानम् 'प्रत्तानां च' स्त्रीणामिच्छयेति। 'एका....घ्नन्ति' एकादशेऽहनि अयुग्मान् ब्राह्मणान् भोजयित्वेति श्राद्धमभिधीयते। तच्च मांसवत् कार्यम्। मांसं च प्रेतायोद्दि श्य। गामप्येके घ्नन्ति। एके आचार्याः प्रेतोद्देशेन गां मारयन्ति। प्रेतोद्देशवचनात् शाखापशुरयम्। तमालभ्य तन्मांसेन श्राद्धं कुर्वन्ति। तच्चोपरिष्टाद्वक्ष्यति। नद्यन्तरे नावं कारयेन्नवेति। 'पिण्डः श्चेत्' एतदेव पिण्डकरणमापतितम्। अत्रच पितृणां प्रथमः प्रेतो भवति तत्प्रभृति तद्दानमित्यर्थः। स यदि पुत्रवान्भवति ततस्तत्प्रभृति दानमधिकृतविषयमिति। अधिकृतपुत्रेण च पुत्रवत्त्वं, एतदधिकारश्चाग्निमत्त्वे सति, तेनाग्निमतः पुत्रस्य पार्वणमेव भवति। तच्च सपिण्डीकरणान्तरम्। एकोद्दिष्टं त्वनधिकृतविषयमिति। सपिण्डीकरणे च पितृप्रभृतित्रिभ्यो दानम्। 'निव......तुर्थः' चतुर्थस्य निवृत्तिः। त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते इति श्रुतेः। 'संव....गेके' एके आचार्याः संवत्सरं पृथगेकस्यैव पिण्डदानमिच्छन्ति। किंकारणम्? येन संवत्सरे सपिण्डीकरणमिति स्मर्यते। न चासपिण्डीकृतस्येतरैः सह दानं युज्यते। अन्वर्थसंज्ञा ह्येषा सपिण्डीकरणमिति। सहपिण्डक्रिया सपिण्डीकरणम्। तेन संवत्सरं यावत्पितुः प्रेतस्य पृथक् पिण्डदानमिच्छन्त्येके। एवं च संवत्सरे सपिण्डीकरण-स्मृतिरनुगृहीता भवति। एवं प्राप्त आह 'न्यायस्तु' तु शब्दः पक्षव्यावृत्तौ, नैतदेवम्। संवत्सरं यावत्पृथग्दानमिति, येन संवत्सरस्मृत्यनुग्रहन्यायेनैतत्परिकल्प्यते तत्र विरोधः। न च श्रुतिविरोधे न्यायो युक्तः। 'न चतुः.......ति' हि श्रुतिविरोधः। पृथक्त्वे क्रियमाणे चतुर्णां पिण्डनिर्वपणाधिकारो भवति पृथक् प्रेतस्यामावास्यायां चाधिकृतस्य पार्वणमिति श्रुतिविरोधः। तेनाधिकृतपुत्रस्यैकोद्दिष्टं न भवत्येव। अनधिकृतस्य तु संवत्सरादूर्ध्वमेकोद्दिष्टम्। 'अह.....द्यात्' संवत्सरं द्विजे। एतदेव च तस्य भवति। न पिण्ड-निर्वपणमिति। त्रिभ्यो दान प्रसंगात्। यच्च प्रेतस्य स्मर्यते—मृतेऽहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि। एतच्च सपिण्डीकरणात्प्रागेकोद्दिष्टम्। ऊर्ध्वञ्च पार्वणमिति। यथा च मनुः—असपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु। अदैवं भोज्येच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेदिति। यावत्सपिण्डता न क्रियते तावदेव तत्कर्म। तथा चाह—

सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः। अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैरिति। सपिण्डक्रियोत्तरकालमनयैव सहपिण्डक्रियया कार्यम् पिण्डनिर्वपणं सुतैः। केचित्त्व-धस्तनश्लोकोपात्तमावृतमनयैवावृतेति अनेनानुवर्तयन्ति। तत्पुनरनुपपन्नार्थमुपरितन-श्लोकारम्भसामर्थ्यात्। अनारब्धेऽपि हि तस्मिन्नेकोद्दिष्टं लभ्यत एव द्विजातेः संस्थितस्य अदैवंभोजयेच्छ्राद्धमित्यनेन। अधस्तनश्लोके च विशेषणार्थं वाक्यप्रसङ्गः। असपिण्डक्रियाकर्मेति। द्विजातेः संस्थितस्येत्येवमादिनैव पादत्रयेणार्थस्य सिद्धत्वात्। यत्पुनरुच्यते अत ऊर्ध्वं वर्षे वर्षे प्रेतायान्नं दद्यात्. यस्मिन्नहनि प्रेतः स्यादित्येकत्वविशिष्टस्याभिधानादेकत्वविशिष्टस्यैव दानमिति। तन्न। नह्यत्रैकत्वमुपा-दीयमानविशेषणं येन विवक्षितप्रेतोद्देशेन दानविधानम्। तस्मादविवक्षैकत्वस्य, यथा स्मृत्यन्तरेऽभिहितं तथैव देयमिति। प्रेतायोद्दिश्य गामप्येके घ्नन्तीति शाखापश्वभिधानम्। तेन प्रसङ्गेन यावन्तोऽर्घ्या पश्वादयस्तत्कर्मव्याचिख्यासया इदमभिधीयते।।१०।।

१. अथ उदककर्म = सम्प्रति मृत व्यक्ति के निमित्त उदक कर्म—अञ्जलिदान की विधि वर्णन की जाती है। यह उदककर्म आशौचादि यमनियम का उपलक्षण है। प्रस्तुत कण्डिका में औध्र्वदेहिक कृत्य सविस्तार वर्णित हैं।

२. अद्विवर्षे = द्वे वर्षे वयो यस्य स द्विवर्षः, न द्विवर्षः अद्विवर्षः तस्मिन्—दो वर्ष से कम आयु वाले बालक की, प्रेते = प्रकर्षेण इतो गतः प्रेतः तस्मिन्—मृत्यु होने पर, मातापित्रोः = माता और पिता का, आशौचम् = आशौच—अशुद्धि (वर्णाश्रम विहित कर्मानुष्ठान की निषेधावस्था जितने समय रहती है—वह काल आशौच कहलाता है।) होता है।

३. इतरेषाम् = माता-पिता के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति, शौचम् एव = स्नान मात्र से शुद्ध होते हैं।

४. माता-पिता का आशौचकाल कितना है? इसका समाधान है—एकरात्रं त्रिरात्रं वा = एक रात्रि (दिन-रात) अथवा तीन रात्रि (दिन-रात) पर्यन्त यह आशौच रहता है। यदि मृत बालक का चूडाकर्म नहीं हुआ (अर्थात्—उसकी आयु एक वर्ष से कम हो) हो, तब एक अहोरात्र और यदि चूडाकर्म हो चुका हो तब तीन अहोरात्र आशौच काल है। इसके पश्चात् माता-पिता की शुद्धि होती है।

५. दो वर्ष से कम आयु के मृत बालक के—शरीरम् अदग्ध्वा = शरीर का दाह कर्म—अग्निसंस्कार न करके, निखनन्ति = नवीन वस्त्र—सकृद्धौत से

आच्छादित कर उस मृतशरीर को गर्तशायी (भूमि में गड्ढा कर दबा देते हैं) कर देते हैं।

६. अन्तः सूतके चेत् = यदि सूतक-प्रसवजन्य आशौच के मध्य में अन्य (मरणाशौच आदि) आशौच आ जाये, तब—आ उत्थानाद् आशौचं = वह अन्य मध्यापतित आशौच की शुद्धि, सूतकवत् = सूतक के समान अर्थात् उसकी समाप्ति पर होगी।

७. अत्र = दो वर्ष से कम आयु बालक की मृत्यु पर, उदक कर्म न = उदक कर्म—जलाञ्जलि नहीं दी जाती है।

८. द्विवर्षप्रभृति = दो वर्ष से लेकर अधिक आयु वाले की मृत्यु होने पर उसे श्मशान—दाहभूमि ले जाएं तथा सर्वे आश्मशानात् अनुगच्छेयुः = सभी सम्बन्धी जन श्मशान तक उसके पीछे-पीछे जाएं।

९. एके = कतिपय आचार्यों का मत है कि—यमगाथां गायन्तः = यमगाथा—यमदेवताक साम का गान करते हुए, यमसूक्तं च जपन्त इति = और यम सूक्त का जप करते हुए श्मशान जाना चाहिए।

यमगाथा— **अहरहर्नीयमानो गामश्वे पुरुषं व्रजम्।**
वैवस्वतो न तृप्यति सुरापा इव दुर्मतिः॥

यमसूक्त—अपेतो यन्तु पणयः०—यजुर्वेद अ० ३५—यमसूक्त कहलाता है।

१०. यदि—उपेतः = यदि प्रेत व्यक्ति उपवीती (जिसका उपनयन संस्कार हो चुका हो) हो, तब उसका भूमिजोषणादि = श्मशानभूमि का चयन तथा उषण—दाह आदि से, आ उदकान्तस्य गमनात् = उदकाञ्जलि दान पर्यन्त कर्म, आहिताग्नेः समानम् = अहिताग्नि के तुल्य अर्थात् जैसे आहिताग्नि व्यक्ति के होते हैं, उसी प्रकार करने चाहिएं।

११. अहिताग्निश्चेत् = यदि वह उपवीती प्रेत अहिताग्नि हो तब, एनम् = इसका, शालाग्निना दहन्ति = दाहकर्म शालाग्नि—आवसथ्य से करना चाहिए।

१२. इतरम् = इतर अर्थात् जो आहिताग्नि नहीं है उसका दाह कर्म, तूष्णीं = चुपचाप (अमन्त्रक), ग्रामाग्निना = ग्रामाग्नि—साधारण अग्नि से करे।

१३. संयुक्तं = यौन सम्बन्ध से सम्बन्धी, मैथुनं वा = अथवा मैथुनार्थ प्राप्त पत्नी का भाई (साला) हो उससे, उदकं करिष्यामह इति = 'उदकं करिष्यामहे' इस प्रकार, उदकं याचेरन् = जल दान की अनुमति मांगें।

१४. अशतवर्षे प्रेते = प्रेत—मृत व्यक्ति यदि सौ वर्ष से कम आयुवाला हो, तब अनुमति देते समय सम्बन्धी अथवा साला—'कुरुध्वं मा चैवं पुन:' = करो, किन्तु यह कर्म आपको पुन: न करना पड़े—ऐसा कह कर अनुमति दे।

१५. इतरस्मिन् = इतर अर्थात् मृतक यदि शतायु अथवा इससे अधिक आयु भोग कर मरा हो तब, कुरुध्वमित्येव = अनुमति दाता कहे कि—जलदान करो।

१६. सर्वे ज्ञातय: = दाह कर्म के अनन्तर सभी सम्बन्धी, अप: अभ्यवयन्ति = स्नान के लिए नदी या जलाशय में प्रविष्ट हो, आ सप्तमात् पुरुषात् = सातवीं पीढ़ी तक, दशमाद्वा = अथवा दशवीं पीढ़ी तक के जो भी व्यक्ति हों सभी स्नान करें।

१७. समानग्रामवासे = एक ग्राम में निवास करने वाले, यावत् सम्बन्धम् अनुस्मरेयु: = जिन्हें अपने सम्बन्ध का स्मरण हो अर्थात् मृतक से जो अपना सम्बन्ध मानते हों वह भी स्नान करें।

१८. एकवस्त्रा: = एकं वस्त्रं परिधानीयं येषां ते एकवस्त्रा:—स्नान करते समय एक वस्त्र—अधोवस्त्र पहने हों तथा प्राचीन वीतिन: = प्राचीनावीति (पितृकर्मों में यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर धारण कर बाएं हाथ के नीचे की ओर धारण करना—प्राचीनावीति कहलाता है।) हों।

१९. सव्यस्य = बाएं हाथ की, अनामिकया = अनामिका अंगुलि से, अपनोद्य: = जल को हटा कर—अप न: शोशुचदघमिति = 'अप न: शोशुचदघम्' –यजु० ३५.६ इस मन्त्रांश को पढ़ते हुए।

२०. दक्षिणामुखा = दक्षिणाभिमुख हो, निमज्जन्ति = जल में गोता—डुबकी लगाएं या स्नान करें।

२१. प्रेताय = प्रेत-मृत व्यक्ति के लिए स्नानानन्तर, अञ्जलिना = अञ्जलि से, सकृत् = एक बार, उदकं प्रसञ्चिन्ति = जल दान करें तथा असावेतत्त उदकमिति = असौ–के स्थान पर प्रेत का नाम लेकर कहें कि—हे अमुक प्रेत तेरे लिए यह जल अर्पित है।

२२. उत्तीर्णन् = स्नान के पश्चात्, शड्वलवति शुचौदेशे = हरित तृणदूर्वा-युक्त पवित्र भूमि पर, उपविष्टान् = बैठे हुए सम्बन्धियों को, तत्रैतान् अपवदेयु: = वहीं पर इनके मित्र-परिचित जन मृतक के गुण वर्णन तथा संसार की अनित्यता-नश्वरता का उपदेश कर इनके शोक को दूर करें। तदनन्तर—

२३. अनवेक्षमाणा: = अवेक्षण न करते हुए अर्थात् पीछे की ओर मुड़कर न देखते हुए, रीतीभूता: = पंक्तिबद्ध होकर तथा, कनिष्ठपूर्वा: = छोटी आयुवालों को आगे कर बड़ी आयु वाले पीछे चलते हुए, ग्रामम् आयान्ति = ग्राम को आ जावें। तत्पश्चात्—

२४. निवेशनद्वारे = निवेशन—गृह (मृतक के) के द्वार पर, पिचुमन्द पत्राणि विदश्य = नीम के पत्ते चबा, आचम्य = आचमन करके, उदकं = जल, अग्निं = अग्नि, गोमयं = गोबर, गौरसर्षपान् = पीली सरसों के दानों तथा तैलम् आलभ्य = तिल का तैल—इनका स्पर्श करके, अश्मानम् आक्रम्य = पत्थर पर पैर रखकर, प्रविशन्ति = घर में प्रवेश करें।

२५. त्रिरात्रं ब्रह्मचारिण: = तीन दिन तक ब्रह्मचर्य धारण करें, अध: शायिन: = भूमि पर शयन करें तथा—न किञ्चन कर्म कर्यु?र्वन्ति = कोई लौकिक काम न तो स्वयं करें और—न प्रकु (र्वीरन्?र्वन्ति) = न ही किसी अन्य से करवावें।

२६. क्रीत्वा = खरीदकर, लब्ध्वा वा = अथवा बिना मांगे प्राप्त, अन्नम् = अन्न—भोजन, दिवा एव अश्नीयु: = दिन में ही खावें (यहां एव शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि—रात्रि भोजन पूर्णत: निषिद्ध है।) अमांसम् = मांस भोजन कदापि न करें।

मांस का अर्थ—मनोऽस्मिन् सीदति इति के अनुसार—यदि रुचिकर स्वादिष्ट भोजन लें तब अर्थ होगा कि—आशौच काल में पूर्णत: सादा-साधारण भोजन ही करें, पक्वान्न आदि नहीं।

२७. प्रेताय = प्रेत के लिए, पिण्डं दत्त्वा = पिण्ड देकर, अवनेजनदान = हाथ धोने का जल दे—अर्थात् जल के छीटें दें। प्रत्यवनेजनेषु नामग्राहम् = जितनीबार पिण्ड दान और जल छिड़कने का कार्य होगा उतनी ही बार प्रेत का नाम लेना चाहिए।

२८. तां रात्रीं = जिस दिन मृत्यु हुई हो उस रात्रि को, मृन्मये = मिट्टी के पात्र में, क्षीरोदके = दुग्ध एवं जल मिश्रित कर, विहायसि = आकाश में अर्थात् किसी लकड़ी आदि पर, निदध्यु: = टांग दें और कहे—प्रेतात्रस्नाहीति—हे प्रेत! इससे स्नान करो।

२९. त्रिरात्रं = तीन रात अर्थात् तीन अहोरात्र, शावम् आशौचम् = मरणाशौच रहता है।

३०. एके = कतिपय आचार्यों का मत है कि—मरणाशौच—दशरात्रम् इति = दश दिन तक रहता है।

३१. आशौच काल में—न स्वाध्यायम् अधीयीरन् = स्वाध्याय—वेद का पठन-पाठन न करे।

३२. वैतानवर्जम् = वैतानिक—अग्निहोत्रादि को छोड़कर, नित्यानि = नित्य कर्त्तव्य स्मार्त कर्म—आवसथ्याग्नि साध्य—नित्य—सायं प्रातर्होम, स्थालीपाकादि निवर्तेरन् = आशौच काल में नहीं होते हैं।

३३. एके = कतिपय आचार्य, शालाग्नौ च = शालाग्नि साध्य कर्मों की निवृत्ति मानते हैं, जबकि—

३४. अन्ये = अन्य आचार्यों का मत है कि—एतानि कुर्युः = इन—शालाग्नि साध्य—औपासन होम आदि कर्म करने चाहिए।

३५. प्रेतस्पर्शिनः = प्रेतस्पर्शी अर्थात् प्रेतवाही पुरुष, आनक्षत्रदर्शनात् = नक्षत्र दर्शन से पूर्व, ग्रामं न प्रविशेयुः = ग्राम में प्रवेश न करें।

३६. रात्रौ चेत् = यदि प्रेत स्पर्श—प्रेतवहन अर्थात्—मृतक को रात्रि में श्मशान लेकर गए हों, तब प्रेतवाही पुरुष, आ आदित्यस्य = सूर्य दर्शन से पूर्व ग्राम में प्रवेश न करें।

३७. प्रवेशनादि = प्रवेश के नियम (नीम के पत्ते चबाना आदि) समानम् इतरैः = सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य के लिए भी समान है।

३८. पक्षं = एक पक्ष—पखवाड़ा—१५ दिन, द्वौ वा = अथवा दो पक्ष—एक मास का, आशौचम् = आशौच काल है।

पूर्व सूत्र ३५—३७ प्रेतवाही पुरुषों के सन्दर्भ में निर्देश है। यदि प्रस्तुत सूत्र को उक्त सूत्रों के अनुक्रम में रखे तब एक पक्ष अथवा दो पक्ष—एक मास का आशौच प्रेतवाहियों के लिए प्रतीत होता है, किन्तु वह युक्त नहीं है। अतः प्रकृत सूत्र को पूर्व सूत्र २९—३० के सन्दर्भ में स्मृति वर्णित आशौच को दृष्टिगत कर वर्णान्तर के आशौच के विकल्प रूप में समझना चाहिए। तब अर्थ हो जाएगा

कि—वैश्य का आशौच काल एक पक्ष या शूद्र का दो पक्ष—एक मास है। स्मृति में क्षत्रिय का १२ दिन कहा है—तद्यथा—

शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन क्षत्रियः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति॥-कर्कभाष्ये

३९. आचार्ये चैवम् = आचार्य—उपनयनपूर्वक वेदोपदेष्टा की मृत्यु होने पर पूर्वोक्त प्रकार से ही उदक—दान आदि करना चाहिए।

४०. मातामह्योः च = और माता मही—नानी तथा मातामह–नाना की मृत्यु होने पर पूर्वोक्त प्रकार से ही उदक-दान आदि करना चाहिए।

४१. अप्रत्तानाम् = अविवाहिता किन्तु विवाह योग्य, स्त्रीणां च = कन्याओं की मृत्यु पर भी पूर्ववत् ही उदक दान आदि करने चाहिएं।

४२. प्रत्तानाम् = विवाहिता कन्या के दाह आदि कर्म, इतरे = अन्य—उसके पति आदि, कुर्वीरन् = करें।

४३. ताः च = और वे विवाहिता स्त्रियाँ पुत्रादि के अभाव में, तेषाम् = उन पति आदि का दाह कर्म करें।

४४. प्रोषितः चेतः प्रेयात् =यदि प्रवास (विदेश) गये प्रियजन की मृत्यु हो जाए तो, आ श्रवण प्रभृति = जब सुन लें तब से, कालशेषम् = अवशिष्ट दिनों का आशौच तथा कृतोदकाः आसीरन् = उदक दान आदि करे।

४५. अतीतः चेत् = यदि आशौच काल बीत चुका हो, तब—एकरात्रं त्रिरात्रं वा = एक दिन या तीन दिन का आशौच काल रखें।

यहाँ तक सामान्य नियमों का कथन हुआ है। अब स्वैच्छिक कर्म का कथन किया जा रहा है—

४६. अथ काम उदकानि = उक्त सामान्य नियम के अनन्तर काम—ऐच्छिक, उदकानि = उदकदान आदि का वर्णन करते हैं—ऋत्विक्...... भागिनेयानाम् = ऋत्विक्, श्वशुर, मित्र सम्बन्धी, मामा, भानजा आदि का उदक दानादि कर्म इच्छा हो तो करें, यदि न चाहे तो न करे।

४७. प्रत्तानां च = और विवाहिता भगिनी एवं पुत्री आदि के लिए उदक दान दाता की इच्छा पर निर्भर है।

४८. एकादश्याम् = ग्यारहवें दिन, अयुग्मान् ब्राह्मणान् = अयुग्म अर्थात् ३, ५ आदि विषम संख्याक ब्रह्माणों को, भोजयित्वा = भोजन करावे, यह भोजन अमांसवत्—वह भोजन मांसरहित होना चाहिए।

४९. एके = कतिपय आचार्य, प्रेताय, उद्दिश्य = प्रेत को उद्दिष्ट कर गाम् अपि घ्नन्ति = गो दान कराते हैं। घ्नन्ति—हन् हिंसागत्योः से निष्पन्न रूप है—इसका यहाँ अर्थ हुआ—गौ को ब्राह्मण के घर पहुंचाने का कथन करते हैं।

५०. पिण्डकरणे = पिण्डदान के समय, प्रथमः पितृणां प्रेतः स्यात् = पितरों में जो प्रथम प्रेत हो उसे प्रथम पिण्ड दे, पुत्रवान् चेत् = यदि वह पितर आहिताग्नि पुत्र वाला हो तो उसे बड़ी उम्र वाले से भी प्रथम पिण्ड दें।

५१. निवर्तेत चतुर्थः = मात्र तीन पूर्व पुरुषों (तीन पीढ़ी) तक ही पिण्डदान करे, चतुर्थ को पिण्डदान न करे।

५२. एके = कतिपय आचार्य, संवत्सरं पृथक् = एक वर्ष तक केवल पिता को ही पिण्डदान का विधान करते हैं तीन ही पीढ़ी के लिए नहीं, क्योंकि सपिण्डीकरण से पूर्व उसे अन्यों (सपिण्डीकृत) के साथ पिण्डदान, उचित नहीं हैं और सपिण्डीकरण एक वर्ष पश्चात् होता है। अतः एक वर्ष तक उसे अकेले को ही पिण्ड देना चाहिए।

५३. तुः = पूर्व पक्ष सूत्र ५२ के निराकरणार्थ है, न्यायः न = संवत्सर पर्यन्त पृथक् पिण्डदान उचित नहीं है, क्योंकि—चतुर्थः पिण्डो भवति इति श्रुतेः = चतुर्थ पिण्ड नहीं होता—ऐसा शास्त्र वचन है।

यहाँ देहली दीपक न्यायानुसार सूत्रस्थ 'न' न्याय एवं चतुर्थ दोनों के साथ संयुक्त होता है।

५४. अस्मै = इस मृतक के निमित्त, ब्राह्मणाय = ब्राह्मण को, अहः अहः अन्नम् = प्रतिदिन एक वर्ष तक अन्न, उदकुंभं च = और जलपूर्ण घट, दद्यात् = देना चाहिए।

५५. एके = कतिपय आचार्य प्रेत के उद्देश्य से संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन, पिण्डम् अपि निपृणन्ति = पिण्डदान करना चाहिए—ऐसा मानते हैं।

टिप्पणी—१. बौधायनीय पितृमेधसूत्र प्रथम प्रश्न खं० १—२२; प्र० २ खं० १—२ में आहिताग्नि व्यक्ति के दाह संस्कार का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अन्त्येष्टि के पश्चात् मृतक से सम्बद्ध किसी भी अन्य कर्म—एकादशाह, सपिण्डीकरण, मासिक—वार्षिक श्राद्ध आदि को अमान्य प्रतिपादित किया है।

महर्षि ने दाह कर्म में १२१ मन्त्रों से आहुति देने का विधान किया है। तदनन्तर स्नान, वस्त्र प्रक्षालन कर घर में मार्जन आदि से शुद्धि कर स्वस्तिवाचन एवं शान्ति प्रकरण के मन्त्रों से गृह शुद्ध्यर्थ होम विधान कर, तीसरे दिन, अस्थिचयन कर उन्हें श्मशान भूमि में ही रख देने को ही अन्तिम कृत्य प्रतिपादित किया है। इससे स्पष्ट है कि महर्षि इसके पश्चात् किसी भी अन्य कृत्य को मान्य नहीं करते हैं।

३. सूत्र ४—में प्रतिपादित एक दिन अथवा तीन दिन के आशौच विषय में गृह्यसूत्रों में मतवैभिन्न्य है। तद्यथा—(१) वैखानस—'दन्तजननादूर्ध्वं त्र्यहं, नामकरणादूर्ध्वमेकाहं जननादूर्ध्वं सद्यः शौचम् ७.५ के अनुसार नामकरण से पूर्व मृत्यु होने पर शुद्धि शीघ्र हो जाती है। नामकरण के पश्चात् किन्तु दांत निकलने से पूर्व मृत्यु होने पर तीन दिन का अशौच है।'

(२) आश्वलायन गृह्यसूत्र ४.४.१७—२७ में आशौच का शब्दोपात्त वर्णन न होकर दानाध्ययन का निषेध है। वृत्तिकार गार्ग्य नारायण के अनुसार—'नात्राशौचं विधीयते। अपितु दानाध्ययन वर्जनमात्रम्। अशौचन्तु स्मृत्युक्तन्द्रष्टव्यन्दशाहं शावमाशौचमित्यादि' सूत्र १७ यहाँ—माता-पिता एवं आचार्य के लिए बारह दिन, सपिण्ड के लिए दश दिन, अविवाहिता के लिए भी दश दिन तथा विवाहिता कन्याओं, अदन्त जात और असम्पूर्ण गर्भ के लिए भी दश दिन तथा विवाहिता कन्याओं, अदन्त जात और असम्पूर्ण गर्भ के लिए तीन दिन तथा सहाध्यायी के लिए एक दिन दानाध्ययन वर्जित है।

४. सूत्र ५ (१) बौधायनीय पितृमेध सूत्र—'न प्राक् चौलात्प्रमीतानां दहनं विद्यते' २.३.१० के अनुसार चूड़ाकर्म से पूर्व (पारस्कर के समान ही) दहन का निषेध है। दहन निषेध से स्पष्ट है कि—बौधायन भी चूड़ाकर्म से पूर्व मृत्यु होने पर बालक के भूमि में दबा देने को मान्य करते हैं।

(२) 'अजातदन्तं भूम्यामवटेऽदधाति'—वैखानस गृ० ७.२ भी दांत निकलने से पूर्व मृत बालक के गड्ढे में दबाने का ही विधान करता है।

(३) आश्वलायन एवं कौषीतक गृह्यसूत्र में भूखात (गड्ढे में दबाना) करने का उल्लेख नहीं है।

'मानवे तु विकल्पेन दाहोऽपि भवतीत्युक्तमेव'—कर्कभाष्य—इस कर्क वचन से स्पष्ट है कि मानव सूत्रकार को दाह एवं भूखात करना—दोनों पक्ष स्वीकार हैं।

५. सूत्र २९—३० सूत्र २९ के अनुसार पारस्कर को तीन दिन का आशौच स्वीकार्य है। सूत्र ३० में अन्य आचार्यों का मत (दश दिन) है।

बौधायनीय पितृमेध—'दशरात्रमाशौचम्' दशरात्रे शौचं कृत्वा शान्ति' २.३.२-३ के अनुसार बौधायन को दश दिन का आशौच काल मान्य है।

'अध: शय्या हविष्यभक्षता प्रत्यूहनं च कर्मणामेकरात्रं त्रिरात्रं नवरात्रं वा' कौषी० गृ० ५.८.९—कौषीतक ने एक, तीन और नौ दिन का विकल्प प्रस्तुत कर—'नाघाहानि वर्धयेयुरिति ह स्माह कौषीतक:'—१० अघ-दु:खकारी दिनों को न बढ़ाने की बात कही है। इससे प्रतीत होता है कि—कौषीतकि को न्यूनातिन्यून समय का आशौच काल मान्य है।

६. **अस्थिचयन**—पारस्कर में एतद्विषयक कोई संकेत उपलब्ध नहीं है। "पुराणे कुम्भे शरीराण्योप्य' उपसर्प मातरम्' इति तिसृभिररण्ये निखनन्ति"—कौषीतक०गृ०५.६.१ तथा—"अलक्षणे कुम्भे पुमांसमलक्षणायां स्त्रियमयुजोऽमिथुना: प्रवयस:" + "सुसञ्चितं सञ्चित्य पक्वनेन सम्पूय यत्र सर्वत आपो नाभि: स्यन्देरन्नन्या वर्षाभ्यस्तत्र गर्तेऽवद्ध्युरुपसर्प मातरं भूमिमेतामिति" आश्व०गृ० ४.५.२, ५ से स्पष्ट है कि—कौषीतकि एवम् आश्वलायन अस्थिसंचयन कर श्मशान में दबा देने का वर्णन करते हैं।

"तथैवापिधानात्कृत्वाऽस्थिकुम्भमादाय नदीतीर्थ समुद्रेषु वाऽभ्यवहरन्त्यपि वा पुरुषसंमितं गर्तं खात्वा तस्मिन् कुम्भमवधाय पुनरभ्यर्चपुरीषेण प्रच्छादयेत् एतद्या-वद्वसति तावत्स्वर्गे महीयते"—बौधा०पितृ० ३.१०.३ से सुव्यक्त है कि— बौधायन को अस्थियाँ भूमि में दबाना एवं जल प्रवाहित करना दोनों पक्ष स्वीकार्य हैं।

"सप्तमेऽहनि नवे मृत्पात्रे चितास्थीन्यादाय पुण्यनद्यां समुद्रे वा प्रक्षिपति"—वैखा: गृ० ७.६ वचन से ज्ञात होता है कि—वैखानस गृह्यसूत्र जल प्रवाह पक्ष का पोषक है।

इति तृतीयकाण्डे दशमी कण्डिका ✪

एकादशी कण्डिका

शाखापशुविधिः

पशुश्चेदाप्लाव्यागामग्रेणाग्नीन्परीत्य पलाशशाखां निहन्ति॥१॥ परिव्ययणोपाकरणनियोजनप्रोक्षणान्यावृता कुर्याद्यच्चान्यत्॥२॥ परिपशव्ये हुत्वा तूष्णीमपराः पञ्च॥३॥ वपोद्धरणं चाभिघारयेद्देवतां चादिशेत्॥४॥ उपाकरणनियोजनप्रोक्षणेषु स्थालीपाके चैवम्॥५॥ वपा हुत्वाऽवदानान्यवद्यति॥६॥ सर्वाणि त्रीणि पञ्च वा॥७॥ स्थालीपाकमिश्राण्यवदानानि जुहोति॥८॥ पश्वङ्गदक्षिणा॥९॥ यद्देवते तद्दैवतं यजेत्तस्मै च भागं कुर्यात्तं च ब्रूयादिममनुप्रापयेति॥१०॥ नद्यन्तरे नावं कारयेन्नवा॥११॥ ॥११॥

(कर्कः)—'पशु......व्यागां' पशुश्चेत् क्रियते गोपशुवर्जमाप्लाव्य स्नापयित्वा नियुज्यते। 'अग्रे......हन्ति' निखनन्ति। असौ यूपकार्ये निखन्यते। अतश्चाज्यासादनोत्तरकालं निखननम्। 'परि......न्यत्'। किमन्यदिति, पशुसंस्कारकं नियोजनप्रोक्षणपशुसमञ्जनपर्यग्निकरणादिकं तच्च कर्त्तव्यम्। आवृच्छदः क्रियामात्रवाची अतश्च तन्मन्त्रो निवर्तते। 'परिपशव्ये हुत्वा तूष्णीमपराः पञ्च' जुहोतीति सूत्रशेषः 'वपो........येत्' उद्धृत्य वपां 'देवतां चातिदिशेदुपाकरणनियोजनप्रोक्षेणेषु' उपाकरणादिषु। 'स्थाली.....वम्' देवतामादिशेत्। 'वपा.......ञ्च वा' वपां हुत्वा अवदानग्रहणे उच्यमाने पशुपुरोडाशो निरस्तो भवति। अत आह-वपां हुत्वाऽवदानान्यवद्यति। असर्वपक्षे तत एव स्विष्टकृत्। क्षताभ्यङ्गश्च देयः। 'स्थाली.......होति' तस्य चाज्येनैव सहश्रपणम्। 'घश्व....क्षिणा' पूर्णपात्रं वरो वेति निवर्तते। 'यद्दे......जेत्' यद्दैवत्य ऋत्विग्विशेषस्तद्दैवत्य एव पशुरालभ्यतेऽर्घपशुषु। 'तस्मै.......येति' तस्मै ऋत्विग्विशेषाय भागं कुर्यात्। 'नद्य........न्न वा' यदुक्तं प्रेतायोद्दिश्य गामप्येके घ्नन्तीति तस्यैव तत्प्रदेशविधानम्। नवश्राद्धं नावमुच्यते। नद्यन्तरे नावं कारयेदित्यनेन नवश्राद्धार्थः पशुरुपक्रान्तः। नवश्राद्धशब्देन प्रथमैकादशाहिकं श्राद्धमुच्यते॥११॥

१. पशुः चेत् = यदि शाखापशुविधि करना चाहे, तब अगाम् आप्लाव्य = गौ से इतर पशु होने पर उसे आप्लावित कर—स्नान करा कर, अग्नीन् परीत्य = गार्हपत्य आदि अग्नियों के प्रदक्षिण क्रम से जाकर, अग्रेण (अग्नीन्) = अग्नियों के पूर्व की ओर (अग्नीन् पद देहली दीपक न्याय से अग्रेण एवं परीत्य दोनों के

साथ संयोज्य है) उस पशु को ले जाकर, पलाशशाखां निहन्ति = यूप के स्थान पर पलाश की शाखा (खूंटा) गाड़ दे। यदि गौ पशु होगा तब वह यूप से बांधा जाएगा तथा उसे स्नान कराना भी अपेक्षित नहीं है।

२. परिव्ययण = तिगुनी-तिहरी-तीन लडयुक्तरस्सी से शाखा का आवेष्टन, उपाकरण = तिनके से पशु का स्पर्श, नियोजन = दोहरी रस्सी से सींगों के मध्य से बंधे पशु को पलाश शाखा—खूंटे से बांध दे। प्रोक्षणानि आवृता कुर्यात् = प्रोक्षणी के जल से पशु को प्रोक्षण (परिव्ययण से प्रोक्षण पर्यन्त कर्म अमन्त्रक करे, यत् च अन्यत् = उक्त कर्म तथा इनके अतिरिक्त जो पशुसमञ्जन-पशु के चारों ओर अग्नि की लकड़ी को घुमाना आदि कर्म भी अमन्त्रक ही करने चाहिएं।

आवृत् शब्द क्रिया मात्र का वाचक है। अत: पशु प्रकरणोक्त मन्त्रों की निवृत्ति हो जाती है।

३. परिपशव्ये हुत्वा = परिपशव्य नामक दो—(१) स्वाहा देवेभ्य:, (२) देवेभ्य: स्वाहा–आज्याहुतियां देकर, अपरा: पञ्च तूष्णीं = अन्य पांच आज्याहुतियां (१) प्रजापति, (२) सोम, (३) इन्द्र, (४) भू: (५) भुव: नाम से—मौन दे।

४. वपोद्धरणं च = और चमस में पुरोडाश ले, अभिघारयेत् = उस पर घृत डालकर, देवतां च आदिशेत् = पुन: जिसे वह पशु दान देना हो उस देवता के निमित्त घृताक्त पुरोडाश की आहुति दे। जैसे—यदि आचार्य को गौ देना चाहे तब आचार्य के अर्घ देवता बृहस्पति के निमित्त चतुर्थ्यन्त रूप (बृहस्पतये) प्रयुक्त कर आहुति देनी चाहिए। इसी प्रकार—ब्रह्मा का देवता चन्द्रमा, उद्गाता का पर्जन्य, होता का अग्नि, अध्वर्यु के अश्विनौ, राजा का इन्द्र, स्नातक के विश्वेदेवा और इन्द्राग्नी, प्रिय का मित्र एवं विवाहित का प्रजापति इत्यादि हैं।

५. उपाकरण-प्रोक्षणेषु = उपाकरण, नियोजन और प्रोक्षण के समय, स्थालीपाके च = तथा स्थालीपाक-चरु प्रदान करते समय भी एवम् = पूर्वोक्त प्रकार से देवता का नाम लेना चाहिए।

६. वपां हुत्वा = घृताभिघारित पुरोडाश की आहुति देकर, अवदानानि–अवद्यति = पशु के अङ्ग स्पर्श कर आहुति दे।

७. अङ्गस्पर्श की ये आहुतियां—सर्वाणि = सभी, त्रीणि = तीन, पञ्चवा = अथवा पांच अङ्ग का उद्दिष्ट कर दे।

८. स्थालीपाकमिश्राण्यवदानानि = स्थालीपाक—चरु मिश्रित पुरोडाश की, जुहोति = आहुति (अङ्गस्पर्शपूर्वक दी जाने वाली) दे।

९. पशवङ्गदक्षिणा = इस विधि की दक्षिणा पशु और उसके उपकरण हैं।

१०. यद्देवते = जिस आचार्य आदि के जो देवता हैं, उनके लिए, तद्दैवतं यजेत् = तद्देवताक पशु से (उससे प्राप्त हव्य द्वारा) यज्ञ करे, तस्मै च भागं कुर्यात् = और उस हव्य का कुछ भाग आचार्य आदि अर्घ्य के लिए भी रखे, तं च = और उस देवता को ब्रूयात् = कहे अर्थात् उससे प्रार्थना करे कि—इमम् अनुप्रापय इति = इस पशु को अर्घ्य—आचार्य आदि को सकुशल प्राप्त कराइये—अर्थात् यह पशु सकुशल अर्घ्य को प्राप्त हो।

११. नावं = नवश्राद्ध—प्रथम एकादशाहिक श्राद्ध, नद्यन्तरे = नदियों के मध्य द्वीप या टापू पर, कारयेत् = सम्पन्न कराये, न वा = अथवा द्वीप पार न कराना चाहे तो न करावे।

टिप्पणी—१. पूर्व कण्डिका में—'प्रेतायोद्दिश्य गामप्येके घ्नन्ति'—४९ मृत व्यक्ति को उद्दिष्ट कर आचार्य आदि को गौ देने का वर्णन किया था, उसी गौ के विकल्परूप में अ—गौ पशु दान की विधि यहाँ वर्णित है।

पारस्कर ने दश दिन के शौच काल विषयक अन्यों के मत को उद्धृत कर स्वयं तीन दिन का पक्ष पूर्व कण्डिका सूत्र २९—३० स्वीकार किया है। यहाँ एकादशाहिक श्राद्ध का वर्णन उसके विपरीत है। वस्तुतः यह प्रसङ्ग ही अवैदिक होने से अमन्तव्य है।

२. कर्क आदि भाष्यकार—पशु की चर्बी आदि (पशु के अङ्ग भी) द्वारा आहुति देने का वर्णन करते हैं और दक्षिणारूप में भी पशु के अङ्ग (कटे टुकड़े) ही देय मानते हैं। समग्र वर्णन अवैदिक ही नहीं जुगुप्सित भी है।

३. यद्यपि यह कण्डिका पूर्व कण्डिका से अनुषक्त है, किन्तु प्रकृत कण्डिकास्थ विषय का मृतक से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः इसे प्रक्षिप्त कहना अनुचित नहीं होगा।

✪

इति तृतीयकाण्डे एकादशी कण्डिका

द्वादशी कण्डिका

अवकीर्णिप्रायश्चित्तम्

अथातोऽवकीर्णिप्रायश्चित्तम्॥१॥ अमावास्यायां चतुष्पथे गर्दभं पशुमालभते॥२॥ निर्ऋतिं पाकयज्ञेन यजेत॥३॥ अप्स्ववदानहोमः॥४॥ भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम्॥५॥ तां छविं परिदधीत॥६॥ ऊर्ध्वबालामित्येके ॥७॥ संवत्सरं भिक्षाचर्यं चरेत्स्वकर्म परिकीर्तयन्॥८॥ अथापरमाज्याहुती जुहोति॥ कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा। कामाभिद्रुग्धोऽस्म्यभिद्रुग्धोस्मि-कामकामाय स्वाहेति॥९॥ अथोपतिष्ठते, सं मा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः संबृहस्पतिः। सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन चेति॥१०॥ एतदेव प्रायश्चित्तम्॥१२॥२॥

(कर्कः)—तेन प्रसङ्गेन नैमित्तिकं पश्वन्तरमभिधातुमिदमाह 'अथा........श्चित्तम्' व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। अवकीर्णी ब्रह्मचारी यः स्त्रियमुपैति सोऽनेनाधिक्रियते। 'अमा.....जेत' अन्योऽपि हविर्यज्ञरूपोऽवकीर्णिपशुरस्ति अतः पाकयज्ञेनेत्युक्तम्। 'अप्स्व......होमः' अग्न्यपवादोऽयमवदानमात्रस्य। आघारादि त्वग्नावेव। भूमौ.....णम्' शाखापशौ पुरोडाशाभावादिह विधानम्। तस्य चाज्येन सह संस्कारानुष्ठानम् 'तां छविं......त्येके' तामेव गर्दभच्छविं परिधत्ते। ऊर्ध्वबालामित्येके। बालशब्देन पुंच्छमभिधीयते। ऊर्ध्वबालां तिर्यग्वालां वेति विकल्पः। 'संव........र्तयन्' निरुक्तं वा एनः कनीयो भवीति श्रुतेः। 'अथापरम्' प्रायश्चित्तानन्तरं व्याख्यास्यत इति सूत्रशेषः। 'आज्या हु......स्वाहा' इत्यागन्तुत्वादाहुतिद्वयं चतुर्दशाहुतिकान्ते भवति। 'अथोप.....नेन च' इत्यनेन॥१२॥

१. अथातः = अब, अवकीर्णि = स्खलित ब्रह्मचर्य (जिसका ब्रह्मचर्यव्रत भंग हो गया हो) का, प्रायश्चित्तम् = प्रायश्चित्त विधान किया गया है।

२. अमावास्यायां = अवकीर्णि पुरुष अमावस्या के दिन, चतुष्पथे = चतुष्पथ चौराहे पर, गर्दभं पशुम् = गर्दभ पशु का, आलभते = स्पर्श करे।

३. निर्ऋतिं = निर्ऋति देवता के निमित्त अवकीर्णि पुरुष, पाकयज्ञेन = पाकयज्ञ विधि के द्वारा, यजेत = यज्ञ करे।

पाकयज्ञेन—कथन का अभिप्राय है कि—ब्रह्मचर्यव्रत के स्त्रीसंग के द्वारा भंग करने वाला पुरुष श्रौतविधि से यज्ञ नहीं करे।

४. अवदानहोमः = प्रायश्चित्तार्थ पुरोडाश का त्याग-प्रक्षेप, अप्सु = जल में करना चाहिए।

पूर्वसूत्र द्वारा पाकयज्ञेन यजेत कहा है, जिससे ज्ञात होता है कि—पाकयज्ञ विधि से यज्ञ करना चाहिए। अतः महाव्याहृत्यादि स्विष्टकृदन्त चतुर्दश आहुतियाँ अग्नि में ही दी जाएंगी। तथा प्रायश्चित्तार्थ पुरोडाश त्याग अग्नि में न करके जल में करना होगा।

५. पशुपुरोडाशश्रपणम् = पशु सम्बन्धी पुरोडाश का श्रपण, भूमौ = भूमि पर करे।

सामान्यतः पुरोडाश का श्रपण = पकाना कपाल पर होता है। यह कपाल अग्नि पर रखे जाते हैं। यहाँ भूमि पर पुरोडाश पकाने का तात्पर्य है कि—पुरोडाश सीधे पृथिवीस्थ अग्नि पर तैयार किया जावे।

६. तां छविं = उस पशु (गर्दभ) की जैसी छवि—आचरण—व्यवहार Image को, परिदधीत = धारण करे।

७. एके = कतिपय आचार्यों का मत है कि—ऊर्ध्वबालाम् इति = वह छवि ऐसी हो जिससे अवकीर्णि का ऊपरि परिधान भी गर्दभत्वक् के ऊपरी भाग की तरह धूल-धूसरित हो।

लोक में देखा जाता है कि—गधा कहीं भी धूल में लेट जाता है और प्रायः उसकी त्वक् एवं बाल मिट्टी से सम्पृक्त ही रहते हैं। यद्यपि ब्रह्मचारी को निर्मल वस्त्र धारण करने चाहिएं, किन्तु प्रायश्चित्त के समय वह अपनी छवि ही सादगी Innocent की नहीं, अपितु परिधान—पहनावा भी उसी प्रकार रखे। भाव यह है कि अपने शरीर की देखभाल (साज-संवार) अथवा परिष्कार की पूर्णतः उपेक्षा करे।

८. संवत्सरं = वर्ष भर तक, स्वकर्म परिकीर्तयन् = अपने ब्रह्मचर्य भंग रूपी कर्म ख्यापन करता हुआ, भिक्षाचर्यं चरेत् = भिक्षा का अन्न खावे।

९. अथ अपरम् = स्वकर्म ख्यापन प्रायश्चित्त के अतिरिक्त अन्य प्रायश्चित्त का विधान करते हैं कि वह, आज्याहुती जुहोति = निम्न दो आज्याहुतियां भी देवे।

(१) कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा

(२) कामाभिद्रु (दु) ग्धोऽस्म्यभिद्रु (दु) ग्धोऽस्मि कामकायाय स्वाहा।

उक्त दो आहुतियों से पूर्व चतुर्दश आहुतियां देनी ही होंगी। इस प्रकार १४ + २ = १६ आहुतियां वर्ष भर तक प्रतिदिन दें तथा आहुतिदान के पश्चात्—

१०. अथोपतिष्ठते = आहुतियों के अनन्तर (१६ आहुतियों के पश्चात्) अग्नि के समीप निम्न मन्त्र का जप करे—

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः।

सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च॥

११. एतदेव = अवकीर्णि के लिये यही, प्रायश्चित्तम् = प्रायश्चित्त है।

टिप्पणी—१. प्रायश्चित्तम्—

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।

तपोनिश्चययुग्वृत्तं प्रायश्चित्तमितीरितम्॥

२. कर्क आदि भाष्यकार ब्रह्मचर्यव्रत भङ्ग के प्रायश्चित्तार्थ चौराहे पर गधे का संज्ञपन (हत्या) कर उसके अङ्ग के टुकड़ों का जल में प्रक्षेप करना मानते हैं। व्रतभङ्गी गधे की खाल भी ओढ़े तथा विश्वनाथ ने प्राशित्रावदान गर्दभशिश्न का देय है–ऐसा कहा है। तद्यथा–**'तत्र प्राशित्रावदानं गर्दभशिश्नात् (प्रजनना)दवदेयम्'**

३. कात्यायन श्रौतसूत्र १.१.१३—१७ में अवकीर्णि के लिए गर्दभेज्या विहित है। इसके सूत्र १५ एवं १६ गृह्यसूत्र में शब्दशः सूत्र ५ एवं ४ हैं। श्रौत का प्रथम सूत्र—

१३. 'वाऽवकीर्णिनो गर्दभेज्या' अधिकार सूत्र है। सूत्र १४–'लौकिके'— लौकिक अग्नि में कर्म की कर्त्तव्यता का बोधक है। १५—१६ पुरोडाश श्रपण एवं अवदान के जल में प्रक्षेप के विधायक है। अन्तिम सूत्र १७—'शिश्नात्प्राशित्रा-वदानम्' है।

प्राशित्र—एक यज्ञपात्र है, इसकी लम्बाई पाँच अंगुल और चौड़ाई चार अंगुल होती है। इस पात्र पर रखकर हव्य ब्रह्मा को प्रदान करते हैं और ब्रह्मा उस हव्य का भक्षण करता है।

कर्क आदि के भाष्य एवं श्रौत के उक्त सूत्र विशेषतः सत्रहवां सूत्र पूर्णतः अवैदिक ही नहीं शिष्टजन गर्ह्य भी हैं। ब्रह्मा को हव्य—भक्षणार्थ भेंट करने वाला

पात्र कैसा है? यह ऊपर बताया ही जा चुका है और हव्य भी गधे के अंग हैं। इसे विकृत मानसिकता के परिपाक के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता है।

पूर्वापर प्रसङ्ग की दृष्टि से विचार करें तब श्रौत के पांचों सूत्र प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि—यह प्रथम अध्याय परिभाषा प्रकरण है। प्रथम १२ सूत्रों में श्रौत कर्म के अधिकारी कौन हैं? यह प्रसङ्ग है तथा इन पांच सूत्रों के पश्चात् १८ वें सूत्र से पुन: यह श्रौत कर्म किस अग्नि से साध्य है—यह है। इससे स्पष्ट है कि उक्त दोनों प्रसङ्गों की परस्पर संगति है। और यह सूत्र मध्य में प्रक्षिप्त जानने चाहिएं। इसके अतिरिक्त भी अन्य हेतु निम्न है—

कात्यायन श्रौतसूत्र का पच्चीसवां 'अध्याय' 'प्रायश्चित्त निरूपणम्' है। इसमें श्रौतकर्म में हुई भूल-चूक-त्रुटि आदि के प्रायश्चित्त वर्णित हैं। इससे भी स्पष्ट है कि—वह प्रायश्चित्त यदि सूत्रकार को अभीष्ट होता तब वह इसे परिभाषा प्रकरण में न रखकर प्रायश्चित्त प्रकरण में ही सन्निविष्ट करते।

४. प्रकृत कण्डिका की संगति जैसी हिन्दी व्याख्या लगाई गई है उसके आधार हैं—(१) संसार के सामान्य विधान-व्यवस्था में दण्ड अपराधी (उत्प्रेरक आदि) को दिया जाता है। यहाँ दोष ब्रह्मचारी अथवा उत्प्रेरिका स्त्री का ही सम्भव हो सकता है। अत: प्रायश्चित्त इन्हीं दो के लिए होना युक्तियुक्त है। गधे का यहाँ प्रसङ्ग ही कहाँ है?

(२) गधे को यहाँ उपलक्षण मानना—रूखा-सूखा खाना और वह भी बिना स्वच्छ किए—नीचे भूमि से प्राप्त तथा शृंगार आदि से दूर रहना और कठोर श्रम करना—थकने पर भूमि पर लेट जाना अर्थात् ब्रह्मचारी द्वारा आसन तक का त्याग करना।

अत: ब्रह्मचारी के व्रतभङ्ग का दण्ड—प्रायश्चित्त रूप में उसे ही सादा रहकर, कन्दमूल खाकर, आसन आदि का त्यागकर तथा इतना कठोर शारीरिक श्रम करते हुए करना चाहिए कि—थककर चूर-चूर होने पर कोई अनुचित विचार तक मन में न आ सके—ऐसी अनुचित शारीरिक चेष्टा तो दूर। गधे को दण्ड दिया जाना (संज्ञपन एवं उसके अङ्गों से होम) अन्यायपूर्ण ही नहीं, अपितु अनैतिक एवं मूर्खतापूर्ण कार्य है।

विशेष पाकयज्ञ—चरु—पुरोडाश आदि से सम्पाद्य कर्मों का कथन—विधान पूर्ण हुआ। यहाँ तक आवसथ्याग्नि साध्य कर्मों का विधानपूर्ण हुआ। अग्रिम तीनकण्डिकाओं में साधारण कर्म—सभाप्रवेशन, रथारोहण एवं हस्त्यारोहण का वर्णन है।

इति तृतीयकाण्डे द्वादशी कण्डिका ✪

त्रयोदशी कण्डिका

सभाप्रवेशनम्

अथातः सभाप्रवेशनम्॥१॥ सभामभ्येति सभाङ्गिरसि नादिर्नामासि त्विषिर्नामासि तस्यै ते नम इति॥२॥ अथ प्रविशति सभा च मा समितिश्चोभे प्रजापतेर्दुहितरौ सचेतसौ। यो मा न विद्यादुप मा स तिष्ठेत्स चेतनो भवतु शर्ठ. सथे जन इति॥३॥ पर्षदमेत्य जपेदभिभूरहमागमविराडप्रतिवाश्याः। अस्याः पर्षद ईशानः सहसा सुदुष्टरो जन इति॥४॥ स यदि मन्येत क्रुद्धोऽयमिति तमभि-मन्त्रयते, या त एषा रराट्यातनूर्मन्योः क्रोधस्य नाशनी। तान्देवा ब्रह्मचारिणो विनयन्तु सुमेधसः॥ द्यौरहं पृथिवी चाहं तौ ते क्रोधं नयामसि गर्भमश्वतर्य-सहासाविति॥५॥ अथ यदि मन्येत द्रुग्धोऽयमिति तमभिमन्त्रयते तां ते वाचमास्य आदत्ते हृदय आदधे यत्र यत्र निहिता वाक्तां ततस्तत आददे यदहं ब्रवीमि तत्सत्यमधरो मत्तांद्यस्वेति॥६॥ एतदेव वशीकरणम्॥७॥ ॥१३॥

(कर्कः)—अथातः सभाप्रवेशनमित्येवमादि यत्तत्सर्वं निगदव्याख्यातमेव।

इति श्री कर्कोपाध्यायकृतौ गृह्यसूत्रभाष्ये तृतीयकाण्डविवरणं संपूर्णम्॥

१. अथातः = आवसथ्य—शालाग्नि साध्य कर्मों के विधान के अनन्तर अब प्रसङ्ग प्राप्त साधारण कर्म, सभाप्रवेशनम् = सभा प्रवेश आदि का कथन करते हैं।

२. सभाम् अभि-एति = सभा में जाते समय सामने की ओर (मुख्य द्वार) से जाना चाहिए तथा जाते समय, सभाङ्गिरसि०........नम इति = सभाङ्गिरसि आदि मन्त्र का पाठ करे। मन्त्र—

सभाङ्गिरसि नादिर्नामासि त्विषिर्नामासि तस्यै ते नमः॥

३. अथ = सभा के सामने की ओर मुख्य द्वार पर पहुंच कर, सभा च०..... जन इति = सभा च इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए, प्रवशिति = प्रवेश करना चाहिए। मन्त्र—

सभा च मा समितिश्चोभे प्रजापतेर्दुहितरौ सचेतसौ।

यो मा न विद्यादुप मा स तिष्ठेत्स चेतनो भवतु शंसथे जनः।।

४. पर्षदम् एत्य = परिषद्—सभा में प्रवेश करके, अभिभूः.........जन इति = अभिभूः इत्यादि मन्त्र का, जपेत् = जप करे। जप मन्त्र—

अभिभूरहमागमविराडप्रति वाश्याः।

अस्याः पर्षद ईशानः सहसा सुदुष्टरो जनः।।

अविराट्—विरुद्धतया राजते स विराट् न विराट् अविराट्

अप्रतिवाशी—प्रतिवाशी—प्रतिवादी, न प्रतिवाशी अप्रतिवाशी-प्रतिवादीशून्यः।

आः—अव्यय, सम्बोधन।

५. स यदि मन्येत = सभा में प्रवेशकर्त्ता यदि यह समझे—जाने कि—क्रुद्धः अयम् इति = सभाध्यक्ष कुपित है, तब—तम् अभिमन्त्रयते = उस सभाध्यक्ष को निम्न दो मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे—

(१) या त एषा रराट्या तनूर्मन्योः क्रोधस्य नाशनी।

तान्देवा ब्रह्मचारिणो विनयन्तुः सुमेधसः।।

(२) द्यौरहं पृथिवी चाहं तौ ते क्रोधं नयामसि।

गर्भमश्वतर्य सहासौ।। असौ के स्थान पर क्रुद्ध व्यक्ति का नाम ले।

६. अथ यदि मन्येत = यदि यह समझे कि—द्रुग्धोऽयमिति = यह सभाध्यक्ष मुझ से द्रोह करता है, तब—तम् अभिमन्त्रयते = उस सभाध्यक्ष का निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रण करे—

तां ते वाचमास्य आदत्ते हृदय आदधे, यत्र यत्र निहिता वात्तां ततस्तत आददे, यदहं ब्रवीमि तत्सत्यमधरो मत्तांद्यस्व।।

अधरो—अधर उ—यहाँ उ दृढ़ीकरणार्थ है।

द्यस्व—द्य = अद्य—अ—वर्ण का लोप है। अथवा—द्यस्व—अवखण्डय।

७. एतदेव = यह ही क्रुद्ध एवं द्रोही सभापति के लिए, वशीकरणम् = वशीकरण का विधान है अर्थात् वह इस कर्म से वशीभूत होता है। अथवा सभाप्रवेशन से लेकर 'ह्रस्व' तक वशीकरण विधान है।

इति तृतीयकाण्डे त्रयोदशी कण्डिका

चतुर्दशी कण्डिका

रथारोहणम्

अथातो रथारोहणम्॥१॥ युङ्क्तेति रथं संप्रेष्य युक्त इति प्रोक्ते साविराडित्येत्य चक्रे अभिमृशति॥२॥ रथन्तरमसीति दक्षिणम्॥३॥ बृहदसीत्युत्तरम्॥४॥ वामदेव्यमसीति कूबरीम्॥५॥ हस्तेनोपस्थमभिमृशति अङ्कौ न्यङ्कावभितो रथं यौ ध्वान्तं वाताग्रमनुसंचरन्तम्। दूरेहेतिरिन्द्रियवान्पतत्रि ते नोऽग्नयः पप्रयः पारयन्त्विति॥६॥ नमो मणिचरायेति दक्षिणं धुर्यं प्राजति॥७॥ अप्राप्य देवताः प्रत्यवरोहेत्संप्रति ब्राह्मणान्मध्ये गा अभिक्रम्य पितॄन्॥८॥ न स्त्रीब्रह्मचारिणौ सारथी स्याताम्॥९॥ मुहूर्तमतीयाय जपेदिहरतिरिहरमध्वम्॥१०॥ एके मास्त्विहरतिरिति च॥११॥ सा यदि दुर्बलो रथः स्यात्तमास्थाय जपेदयं वामश्विना रथे मा दुर्गे मास्तरोरिषदिति॥१२॥ स यदि भ्रम्यात्स्तम्भमुपस्पृश्य भूमिं वा जपेदेष वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषदिति॥१३॥ तस्य न काचनार्त्तिर्न रिष्टिर्भवति॥१४॥ यात्वाऽध्वानं विमुच्य रथं यवसोदके दापयेदेष उ ह वाहनस्यापन्हव इति श्रुतेः॥१५॥ ॥१४॥

१. अथातः = सभाप्रवेश विधि के अनन्तर प्रसङ्गप्राप्त, रथारोहणम् = रथयान आरोहण विधि का वर्णन किया जा रहा है। यतः सभा आदि में जाने के लिए रथयान, वाहन की अपेक्षा होती है, उस वाहन पर आरोहण कैसे किया जाए यह प्रसङ्गानुकूल वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।

२. रथं युङ्क्त इति सम्प्रेष्य = रथ जोतो—इस प्रकार सारथि से कहे, युक्त इति प्रोक्ते = रथ जुत गया अर्थात् तैयार है—ऐसा सारथि द्वारा सूचित करने पर, साविराडित्येत्य = साविराट्—ऐसा कह रथ के समीप आकर, चक्रे अभिमृशति = रथ के चक्र—पहियों का अभिमर्शन—स्पर्श करे।

३. रथन्तरमसीति दक्षिणम् = रथन्तरम् इत्यादि मन्त्र पढ़कर दक्षिण चक्र का स्पर्श करे।

४. बृहदसीत्युत्तरम् = बृहदसि—मन्त्रपूर्वक बाएं (उत्तर के) चक्र का स्पर्श करना चाहिए।

५. वामदेव्यमसीति = वामदेव्यम् असि—मन्त्रपूर्वक, कूबरीम्—कूबरी—युगंधर = जिस पर जुआ रखा जाता है उस ईषादण्ड का अग्रभाग (बैलगाड़ी में प्रायः चालक यहीं बैठता है तथा रथ में पीछे बैठता है) का अभिमर्शन करे।

६. हस्तेन उपस्थम् = हाथ से रथ के मध्यवर्ती भाग (जहाँ बैठते हैं) का स्पर्श निम्न मन्त्र से करे—

अंकौ न्यङ्कावभितो रथं यौ ध्वान्तं वाग्रमनुसंचरन्तम्।

दूरे हेतिरिन्द्रियवान्पतत्रि ते नोऽग्नयः पप्रयः पारयन्तु॥

७. नमो मणिचरायेति = नमो मणिचराय—इस मन्त्रपूर्वक, दक्षिणं धुर्यं = रथ में दक्षिण की ओर युक्त अश्व अथवा बैल को, प्राजति = प्रेरित करे—हांके। बायें अश्व अथवा बैल को अमन्त्रक ही प्रेरित करे।

८. अप्राप्य देवताः = देवता (विद्वानों) को दूर से देखकर (अप्राप्य) ही प्रत्यवरोहेत् = रथ से उतर जावे तथा—सम्प्रति ब्राह्मणान् = ब्राह्मणों के समीप, मध्ये गाः = गौ के मध्य में आने (अर्थात् गौओं के झुण्ड में घिरने) पर—एवं—पितॄन् अभिक्रम्य = पिता आदि के सम्मुख आने पर रथ से उतर जाना चाहिए।

९. स्त्रीब्रह्मचारिणौ = स्त्री एवं ब्रह्मचारी (नैष्ठिक एवं उपकुर्वाण दोनों ही) को, सारथी न स्याताम् = सारथि नहीं बनाना चाहिए।

१०. मुहूर्तमतीयाय = उक्त मान्यजनों के आने पर रथ से उतरने के पश्चात् मुहूर्त भर समय बिताकर, इहरति.....ध्वम् = इहरति इत्यादि मन्त्र का, जपेत् = जप करें। जप मन्त्र—

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा।
उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्।
रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा॥ यजु० ८.५१

११. एके = कतिपय आचार्यों का मत है कि—मास्त्विहरतिरिति च = मास्तु और इहरति (पूर्वत्रोक्त) इन दो मन्त्रों का जप करे।

प्रस्तुत कण्डिका के भाष्यकार—जयराम, हरिहर एवं विश्वनाथ ने प्रस्तुत सूत्र का भाष्य नहीं किया है।

१२. स यदि = वह रथी यदि मार्ग में जाते समय, दुर्बलो रथः स्यात् = दुर्बल क्षीण रथ वाला हो जाये अर्थात् मार्ग में वह रथ टूट जाए अथवा खराब हो जाए तब रथी, तम् आस्थाय = उस रथ पर आरूढ़ होकर, अयं वाम०....... रिषदिति = अयं वाम् इत्यादि मन्त्र का, जपेत् = जप करे। जप मन्त्र—

अयं वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरो रिषद्॥

१३. स यदि भ्राम्यत् = यदि वह रथ फिर भी हिले अथवा टेढ़ा हो रहा हो, तो—स्तम्भं भूमिं वा = रथ के स्तम्भ—ध्वज दण्ड अथवा भूमि का, उपस्पृश्य = स्पर्श कर, एष वाम्.......रिषदिति = एष वाम् इत्यादिमन्त्र का जपेत् = जप करे। मन्त्र—

एष वामश्विना रथो दुर्गे मास्तरो रिषद्॥

१४. तस्य = इस प्रकार जप करने से उस रथी को, न काचन आर्त्ति = न कोई पीड़ा, न रिष्टिर्भवति = और न ही कोई विघ्न होता है।

१५. यात्वा = अपने गन्तव्य पर पहुँचकर, अध्वानं विमुच्य = मार्ग को छोड़कर अर्थात् अपने रथ आदि वाहन को मार्ग से हटकर एक ओर खड़ा करके, रथं = रथ में युक्त वाह-यवसोदके=यवसं च उदकं च ते यवसोदके (घासपानीये) -घास-चारा और पानी, दापयेत् = देवे—खिलावे, क्योंकि-एष उ ह वाहनस्यापन्हव इति श्रुतेः = शास्त्र का कथन है कि यह ही (घास—पानी देना) अपन्हव = बदला अथवा अपराधमार्जन है।

यहाँ 'उ' निश्चयार्थक निपात है।

टिप्पणी-१. अथ रथारोहणं यदि रथं लभत आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे योजयित्वास्थास्यन्०—भारद्वाज गृ० २.२९ इस भारद्वाज वचन से ज्ञात होता है कि—रथारोहण शुक्ल पक्ष में करना चाहिए। वस्तुतः यह प्रथम आरोहण अर्थात् पहली बार रथ आदि (कार, मोटर आदि अन्य वाहन) के निर्माण—क्रयण कर उस पर पहली यात्रा के समय कर्त्तव्य कर्म है।

इति तृतीयकाण्डे चतुर्दशी कण्डिका ✪

पञ्चदशी कण्डिका

हस्त्यारोहणम्

अथातो हस्त्यारोहणम्॥१॥ एत्य हस्तिनमभिमृशति हस्तियशसमसि हस्ति-वर्चसमसीति॥२॥ अथारोहतीन्द्रस्य त्वा वज्रेणाभि तिष्ठामि स्वस्ति मा संपार-येति॥३॥ एतेनैवाश्वारोहणं व्याख्यातम्॥४॥ उष्ट्रमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्ट्र दैवत्यः स्वस्ति मा संपारयेति॥५॥ रासभमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोऽसि शूद्रजन्माग्नेयो वै द्विरेताः स्वस्ति मा संपारयेति॥६॥ चतुष्पथमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय पथिषदे स्वस्ति मा संपारयेति॥७॥ नदीमुत्तरिष्यन्नभिमन्त्रयते सुनाव-मिति॥९॥ उत्तरिष्यन्नभिमन्त्रयते सुत्रामाणमिति॥१०॥ वनमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय वनसदे स्वस्ति मा संपारयेति॥११॥ गिरिमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय गिरिषदेस्वस्ति मा संपारयेति॥१२॥ श्मशानमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय पितृषदे स्वस्ति मा संपारयेति॥१३॥ गोष्ठमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय शकृत्पिण्डसदे स्वस्ति मा संपारयेति॥१४॥ यत्र चान्यत्रापि नमो रुद्रायेत्येव ब्रूयाद्रुद्रो ह्येवेदꣳ सर्वमिति श्रुतेः॥१५॥ सिचाऽवधूतोऽभिमन्त्रयते सिगसि न वज्रोऽसि नमस्तेऽअस्तु मा माहिꣳसीरिति॥१६॥ स्तनयित्नुमभिमन्त्रयते शिवा नो वर्षाः सन्तु शिवा नः सन्तु हेतयः। शिवा नस्ताः सन्तु यास्त्वꣳ सृजसि वृत्रहन्निति॥१७॥ शिवां वाश्यमा-नामभिमन्त्रयते शिवो नामेति॥१८॥ शकुनिं वाश्यमानमभिमन्त्रयते हिरण्यपर्ण शकुने देवानां प्रहितंगम यमदूत नमस्तेऽस्तु किंत्वाकार्क्कारिणो ब्रवीदिति॥१९॥ लक्षण्यं वृक्षमभिमन्त्रयते मा त्वाऽशनिर्मा परशुर्मा वातो मा राजप्रेषितो दण्डः। अङ्कुरास्ते प्ररोहन्तु निवाते त्वाऽभिवर्षतु। अग्निष्टेमूलं माहिꣳ सीत्स्वस्ति तेऽस्तु वनस्पते स्वस्तिमेऽस्तु वनस्पत इति॥२०॥ स यदि किंचिल्लभेत तत्प्रतिगृह्णाति द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णात्विति साऽस्य न ददतः क्षीयते भूयसी च प्रतिगृहीता भवति। अथ यद्योदनं लभेत तत्प्रतिगृह्य द्यौस्त्वेति तस्य द्विः प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नात्विति॥२१॥ अथ यदि मन्थं लभेत तं प्रतिगृह्य द्यौस्त्वेति तस्य त्रिः प्राशनाति ब्रह्मा त्वाऽशनातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नातु ब्रह्मा त्वा पिबत्विति॥२२॥ अथातोऽधीत्या धीत्यानिराकरणं प्रतीकं मे विचक्षणं जिह्वा मे मधु यद्वचः। कर्णाभ्यां भूमिशुश्रुवे मा त्वꣳ हार्षीः श्रुतं मयि।

ब्रह्मणः प्रवचनमसि ब्रह्मणः प्रतिष्ठानमसि ब्रह्मकोशोसि सनिरसि शान्तिरस्य-निराकरणमसि ब्रह्मकोशं मे विश। वाचा त्वा पिदधामि वाचा त्वा पिदधामीति (तिष्ठ प्रतिष्ठ) स्वरकरणकण्ठ्यौरसदन्त्यौष्ठ्यग्रहणधारणोच्चारणशक्तिर्मयि भवतु आप्यायन्तु मेऽङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं यशो बलम्।। यन्मे श्रुतमधीतं तन्मे मनसि तिष्ठतु तिष्ठतु॥२३॥१५॥

१. अथातः = रथारोहण विधि के अनन्तर, हस्त्यारोहणम् = हाथी पर आरोहण—सवारी की विधि वर्णित है।

२. एत्य हस्तिनम् अभिमृशति = हाथी के समीप आकर निम्न मन्त्र से हाथी का अभिमर्शन—स्पर्श करे—

हस्तियशसमसि हस्तिवर्चसमसि।

३. अथ आरोहति = हस्ति स्पर्श के पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़ कर हाथी पर चढ़े—

इन्द्रस्य त्वा वज्रेणाभितिष्ठामि स्वस्ति मा संपारय।

४. एतेन एव = इसी हस्त्यारोहण विधि द्वारा ही, अश्वारोहणं = अश्वारोहण विधि भी, व्याख्यातम् = कथन की जा चुकी है।

अश्वारोहण के समय मन्त्र में हस्ति के स्थान पर अश्व पद प्रयुक्त करे।

५. उष्ट्रम् आरोक्ष्यन् अभिमन्त्रयते = ऊंट पर सवारी करने (आरोहण) की इच्छा होने पर निम्नमन्त्र से अभिमन्त्रण करना चाहिए—

त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्टृदैवत्यः स्वस्ति मा संपारय।

६. रासभम् आरोक्ष्यन् अभिमन्त्रयते = गधे पर आरोहण की इच्छा होने पर निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिए—

शूद्रोऽसि शूद्रजन्माग्नेयो वै द्विरेताः स्वस्ति मा संपारय।

मन्त्रस्थ द्विरेताः पद से खच्चर प्रतीत होता है। जयराम ने 'अश्वाद् गर्दभ्यामुद् भूतत्वाद् द्विरेतः' अश्व द्वारा गर्दभी में उत्पन्न को द्विरेता कहा है, किन्तु लोक में इसके विपरीत गर्दभ पिता एवं घोड़ी 'अश्वी' माता की सन्तान खच्चर है।

७. चतुष्पथम् अभिमन्त्रयते = अधोलिखित मन्त्र से चतुष्पथ—चौराहे का अभिमन्त्रण करे—

नमो रुद्राय पथिषदे स्वस्ति मा संपारय।

९. नावम् आरोक्ष्यन् = नौका पर आरोहण करते समय, सुनावमिति = सुनावम्—इस मन्त्र से, अभिमन्त्रयते = नौका का अभिमन्त्रण करे—

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राꣳस्वस्तये॥ यजु० २१.७

१०. उत्तरिष्यन् = नदी पार कर नौका से उतरते समय अथवा बिना नौका के नदी को तैर कर पार करते समय, सुत्रामाणमिति = सुत्रामाणम्० इत्यादि मन्त्र से, अभिमन्त्रयते = अभिमन्त्रण करना चाहिए।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳसुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ यजु० २१.६

११. वनम् अभिमन्त्रयते = वन में प्रवेश अथवा पार करते समय निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रण करे—

नमो रुद्राय वनसदे स्वस्ति मा संपारय।

१२. गिरिम् अभिमन्त्रयते = पर्वतारोहण के समय निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रण करे—

नमो रुद्राय गिरिषदे स्वस्ति मा संपारय।

१३. श्मशानम् अभिमन्त्रयते = यदि किसी कारणवश शमशान जाना पड़े, तब श्मशान—दाहभूमि का अभिमन्त्रण निम्न मन्त्र से करे—

नमो रुद्राय पितृषदे स्वस्ति मा सम्पारय।

१४. गोष्ठम् अभिमन्त्रयते = गोष्ठ—गोशाला का अभिमन्त्रण निम्न मन्त्र से करे—

नमो रुद्राय शकृत्पिण्डसदे स्वस्ति मा संपारय।

१५. यत्र च अन्यत्रापि = और जहां कहीं भी जाना पड़े वहीं—नमो रुद्रायेत्ये व ब्रूयाद् = नमो रुद्राय—ऐसा कहे, क्योंकि—रुद्रो ह्येवदं सर्वमिति श्रुतेः = सभी पदार्थ रुद्र स्वरूप ही हैं—ऐसा शास्त्र का वचन है।

१६. सिचा अवधूतः = वस्त्र के प्रांत—छोर से हवा लगने पर अर्थात् हवा के झोंके से वस्त्र के उड़ने-हवा लगने पर—अभिमन्त्रयते = निम्न मन्त्र से उस वस्त्र प्रान्त (छोर) को अभिमन्त्रित करें—

सिगसि न वज्रोऽसि नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीः।

पहने हुए वस्त्र का हवा से उड़ना—अमङ्गल सूचक माना जाता है।

१७. स्तनयित्नुम् अभिमन्त्रयते = मेघ गर्जन को सुनकर निम्न मन्त्र से मेघ का अभिमन्त्रण करे—

शिवा नो वर्षाः सन्तु शिवा नः सन्तु हेतयः।

शिवा नस्ताः सन्तु यास्त्वं सृजसि वृत्रहन्॥

१८. शिवां वाश्यमानाम् = शब्द-चीत्कार करती हुई श्रृगाली—स्यारिन (गीदड़ी) को, अभिमन्त्रयते = निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करे—

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु मा मा हिँसीः।

निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥

यजु० ३.६३

१९. शकुनिं वाश्यमानम् = शब्द करते हुए कृष्ण काक अर्थात् कांव-कांव करते हुए कौए को निम्न मन्त्र से, अभिमन्त्रयते = अभिमन्त्रित करे—

हिरण्यपर्ण शकुने देवानां प्रहितंगम।

यमदूत नमस्तेऽस्तु किंत्वा कार्क्कारिणो ब्रवीद्॥

२०. लक्षण्यं = माङ्गलिक (आम्र आदि अथवा जिसकी प्रसिद्धि से उस स्थान या ग्राम आदि की भी प्रसिद्धि हो।) वृक्षम् = वृक्ष को, अभिमन्त्रयते = निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करे—

मा त्वाऽशनिर्मा परशुर्मा वातो मा राजप्रेषितो दण्डः।

अङ्कुरास्ते प्ररोहन्तु निवाते त्वाऽभिवर्षतु।

अग्निष्टेमूलं मा हिँसीत्स्वस्ति तेऽस्तु वनस्पते।

स्वस्ति मेऽस्तु वनस्पते॥

२१. स = वह स्नातक—द्विज, यदि = यदि दक्षिणा—दानादि रूप में किञ्चिल्लभेत = कुछ वस्तु—गौ, भूमि स्वर्ण आदि प्राप्त करे तब, तत् = उसे—द्यौस्त्वा.......गृह्णात्विति = द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु'—ऐसा कहकर,

प्रतिगृह्णाति = ग्रहण करे, सा= वह दक्षिणादि रूप में दी गई वस्तु, ददतः न क्षीयते = दाता द्वारा देने पर क्षीण नहीं होती, भूयसी च प्रतिगृहीता = और प्रतिगृहीता के लिए कल्याणकारिणी होती है।

अथ यद्योदनं लभेत = यदि कभी उसे ओदन—पका हुआ चावल (भात) प्राप्त हो तब, द्यौस्त्वेति तत्प्रतिगृह्य = 'द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु' ऐसा कह (इस प्रकार मन्त्र पाठ द्वारा उस वस्तु पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।) उस ओदन को प्राप्त कर, तस्य द्विः प्राश्नाति = उस भात का दो बार भक्षण करे, प्रथम बार—'ब्रह्मा त्वाऽश्नातु'—इस प्रकार और दूसरी बार—'ब्रह्मा त्वा प्राश्नातु'—से इति—ऐसा कहकर।

२२. अथ यदि मन्थं लभेत = यदि कभी उसे मन्थ—दधिमन्थ—मट्ठा—तक्र प्राप्त हो तब पूर्ववत्—द्यौस्त्वेति तं प्रतिगृह्य = उस तक्र को द्यौस्त्वा आदि मन्त्रपूर्वक प्रतिगृहीत कर, तस्य त्रिः प्राश्नाति = निम्न प्रकार तीन बार उसका प्राशन करे—

(१) **ब्रह्मा त्वाऽश्नातु**—इस प्रकार प्रथम बार

(२) **ब्रह्मा त्वा प्राश्नातु**—इस प्रकार दूसरी बार

(३) **ब्रह्मा त्वा पिबतु**—इस प्रकार तीसरी बार

२३. अथातः अधीतीआधीत्य अनिराकरणं = अध्ययन के अनन्तर वह अधीती—अध्ययन करने वाला प्रतिदिन, आधीत्य—पढ़े हुए की आवृत्ति करके, उसका अनिराकरण—परित्याग न करे अर्थात् पठित पाठ (वेदादि) की प्रतिदिन आवृत्ति करनी चाहिए जिससे कि उसका परित्याग—निराकरण या विस्मृति न हो सके। एतदर्थ निम्न मन्त्र का पाठ करना चाहिए—

प्रतीकं मे विचक्षण जिह्वा मे मधु यद्वचः।

कर्णाभ्यां भूरिशुश्रुवे मा त्वं हार्षीः श्रुतं मयि।

ब्रह्मणः प्रवचनमसि ब्रह्मणः प्रतिष्ठानमसि ब्रह्मकोशोसि

सनिरसि शान्तिरस्यनिराकरणमसि ब्रह्मकोशं मे विश।

वाचा त्वा पिदधामि वाचा त्वा पिदधामीति (तिष्ठ प्रतिष्ठ)

स्वरकरणकण्ठ्यौरसदन्त्यौष्ठ्य ग्रहण धारणोच्चारणशक्तिर्मयि भवतु। आप्यायन्तु मेऽङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं यशोबलम्॥ यन्मे श्रुतमधीतं तन्मे मनसि तिष्ठतु तिष्ठतु॥

यहाँ 'तिष्ठतु' पद की द्विरुक्ति काण्डसमाप्ति की द्योतक है।

इति तृतीयकाण्डे पञ्चदशी कण्डिका

समाप्तञ्चेदं तृतीयं काण्डम्

इतिभगवतः पारस्कर (कात्यायन) विरचित

पारस्करगृह्यसूत्रस्य

विद्याभास्कराद्यनेक उपाधिविभूषित–वेदपालाचार्यप्रणीतम्

आर्यभाषाव्याख्यानं पूर्तिमगमत्।

परिशिष्ट-१

पारस्करगृह्यसूत्र विनियुक्त मन्त्रसूची

मन्त्र प्रतीक	काण्ड	कण्डिका
अ		
अक्षण्वन् परिवप.	२	१
अग्निर्भूतानामधिपतिः	१	५
अग्निरैतु प्रथमो देवतानाम्.	१	५
अग्निः प्रथमः प्राश्नातु.	३	१
अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिम्	३	४
अग्नये स्वाहा.	१	९
अग्ने प्रायश्चित्ते,	१	११
अग्ने सुश्रवः सुश्रवसम्.	२	४
अग्नये समिधमहार्षम्	२	४
अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि.	१	४
अङ्क्तौ न्यङ्क्ावभितो रथम्	३	१४
अङ्गादङ्गात्संभवसि.	१	१८
अच्युताय भौमाय	३	४
अथ पश्चात्.	२	१७
अथ दक्षिणतः.	२	१७
अथोत्तरतः	२	१७
अद्भ्यः संभृतः.	१	१४
अद्भ्यः नमः	२	९
अन्नाद्याय.	२	६
अन्तरिक्षाय नमः	२	९
अन्नपतेऽन्नस्य नो.	३	१
अनानुजामनुजाम्.	३	३
अन्नं च त्वा ब्राह्मणाश्च.	३	४
अपश्वेतपदा जहि.	२	१४
अप नः शोशुचदघम्.	३	१०
अभून्मम सुमतौ	३	३
अभिभूरहमागमवि.	३	१३

इ

उ

ऊ

ऋ

ह

□□□

गृह्यसूत्रों का महत्त्व साहित्य की दृष्टि से भले ही नगण्य हो, समाज शास्त्र के विद्यार्थी के लिए वे सचमुच अद्भुत निधि हैं। ऐतिहासिक जानते हैं कि यूरोपीय जातियों के पुराने रीति-रिवाजों को इतिहास में संगत बिठाने के लिए उन्हें किन-किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है और भारत में- इन छोटी-छोटी पुस्तकों में (जिनका महत्त्व हमें शुरु में कुछ भी प्रतीत नहीं होता) प्राचीन भारतीयों का जीवन अपनी पूर्णता में अंकित है। ऐसा लगता है जैसे हम उस युग का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हों। ये गृह्यसूत्र तथा कल्पसूत्र प्राचीन भारत के **वैयक्तिक तथा सामाजिक लोकजीवन का एक सच्चा चित्र** उपस्थित करते हैं।

– विण्टर निट्ज

सत्यार्थ प्रकाशन न्यास
1425, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)